॥ श्री वर्द्धमानाय नमः ॥



श्री महावीर पुराण

(आचार्य सकलकीर्तिजी कृत)

सम्पादक :

नन्दलाल जैन "विशारद"

प्रकाशक :

जिनवाणी प्रचारक कार्यालय

१६१/१, महात्मा गान्धी रोड, कलकत्ता-७

मूल्य ५)

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः। कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥१॥ अविरलशब्दघनौघा प्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का। मुनिभिरुपासिततीर्थां सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥ २ ॥

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मूलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

परमगुरवे नमः परम्पराचार्य्य श्रीगुरवे नमः।

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म्मसंबंधकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं "श्रीमहावीर पुराण चरित्र" नामधेयं, एतन्मूलग्रन्थकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारमासाद्य श्री सकलकीर्त्ति आचार्येण विरचितम्।

मंगलं भगवान् वीरो लंगमं गौतमो गणी। मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मंगलम् ॥

सर्वे श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ॥

मुद्रक :
सुरेशचंद्र जैन
जवाहिर प्रेस
१६१/१, महात्मा गान्धी रोड,
कलकत्ता-७

॥ श्री वर्धमानाय नमः ॥

श्री महावीर पुराण

प्रथम प्रकरण

सागर अतुलित गुणों के, सर्वमान्य अखिलेश।
धर्म-चक्र-धारी महा, बन्दों वीर जिनेश॥

जो अखिल विश्वके स्वामी, सर्वमान्य तथा अनन्त गुणों के समुद्र हैं, धर्मरूपी चक्रके धारक उन श्री महावीर भगवान की मैं वन्दना करता हूं।

जिनके अवतार धारण करनेके पूर्व छः मास तक एवं गर्भमें आनेके पश्चात् नव मास तक अर्थात् पन्द्रह मास तक कुवेरने रत्नों की वर्षा की, सुमेरु पर्वत पर जिनका जन्माभिषेक उत्सव देख कर इन्द्रके सहस्र नेत्र हो गये; जिन्होंने शैशवावस्था में ही राज्य-विभूति को तृणवत त्याग दिया तथा काम-रूपी शत्रुको पराजित कर कठिन तपस्याके लिये वनमें गमन किया; जिन्हें आहार-दान देनेके कारण चन्दना सती हुई एवं त्रैलोक्यमें प्रख्यात हुई; जो रुद्र के उपसर्गों को शान्तिपूर्वक सहन कर 'महावीर' नामसे प्रसिद्ध हुए; जिन्होंने घातिया-कर्म-रूपी शत्रुओं को परास्त कर केवलज्ञान प्राप्त किया; जिन भगवानने स्वर्ग-मोक्ष-रूपी लक्ष्मी प्रदान करनेवाला धर्म का प्रसार किया, जो कि आज पर्यन्त श्रावक-धर्म एवं मुनि-धर्मके रूपमें विद्यमान है और भविष्यमें भी रहेगा; जिनके कर्मको जीतनेसे 'वीर', धर्मोपदेश देने से 'सन्मति' और उपसर्गोंको सहन करनेसे 'महावीर' नाम हैं, उन अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण श्रीमहावीर प्रभुको मैं, उनके गुणों की प्राप्तिके लिये मन, वचन, कायसे सदा नमस्कार करता हूं। इनके साथ ही मैं श्रीऋषभदेव आदि तेईस तीर्थङ्करों को भी तीनों योग सहित बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

मैं ऐसे समस्त सिद्धों को नमस्कार करता हूँ जो सम्यक्त्वादि अष्ट-गुणों सहित लोक-शिखर पर विराजमान हैं।

श्री महावीर स्वामीके मोक्ष जानेके पश्चात् श्री गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य और अन्तमें श्री जम्बू स्वामी—ये तीन केवलज्ञानी हुए। ये तीनों, श्री महावीर स्वामीके निर्वाण प्राप्त होनेके ६२ वर्ष पश्चात् धर्मके प्रवर्त्तक हुए। उनके चरण-कमलोंमें भक्तिभाव रखता हुआ, मैं उनके गुणों की प्राप्ति की इच्छा रखता हूं। इनके सौ वर्ष बाद अङ्ग-पूर्वोंके जानकार नन्दी, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु स्वामी—ये पांच श्रुतकेवली हुए। मेरा उनके चरणोंमें शतशः नमस्कार है। इनके १८० वर्षके पश्चात् धर्म के प्रकाशक रत्नत्रय धारी विशाख, प्रोष्ठिलाचार्य, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, जिनसेन, विजय, बुद्धिल, गङ्ग और सुधर्माचार्य—ये ग्यारह आचार्य हुए हैं। उनके चरण-कमलोंमें मैं नमस्कार करता हूँ। इसके २२० वर्ष व्यतीत हो जानेके बाद धर्मके प्रवर्त्तक नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, द्रुमसेन, वाक्कंस—ये पांच ग्यारहों अङ्ग के जानकार हुए। मैं इनकी वन्दना करता हूँ। पुनः सौ वर्ष व्यतीत होने पर सुभद्र, यशोभद्र, जयबाहु, लोहाचार्य—ये अङ्ग के पाठी हुए। पुनः कुछ काल व्यतीत होने पर विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हदत्त—ये चार अङ्ग-पूर्वके कुछ अंशोंके जानकार हुए। पर इसके पश्चात् हुण्डाव-सर्पिणी-क्षय तथा उसके विशेषज्ञों की कमी होने पर श्री भुजबली और पुष्पदन्त नामक दो मुनियोंने श्रुत विनष्ट होनेके भयसे शास्त्रों की रचना की, जो धवल-महाधवल नामसे प्रख्यात हैं। इन्होंने अपने शास्त्रों को ज्येष्ट शुक्ला पञ्चमीके दिन पूर्ण किया था, इससे उस दिन का नाम श्रुत-पञ्चमी पड़ा। उस दिन सब संघों ने मिल कर जिनवाणी की पूजा की थी और आज भी करते हैं। तत्पश्चात् कुन्दादि अनेक आचार्य हुए हैं। मैं गुण-प्राप्ति की आशासे उनकी बार-बार बन्दना करता हूँ।

मेरा ऐसा विश्वास है कि, भगवानके मुख-कमलसे प्रकट हुई विश्वपूज्या सरस्वती (वाणी) मेरी बुद्धि को निर्मल बनाने में समर्थ होगी। इसी भांति सत्य एवं श्रेष्ठ गुणवाले देव तथा शास्त्र और

गुरुओं को नमस्कार करता हुआ श्रोता-वक्ता के लक्षणों का वर्णन करता हूँ, जिससे इस ग्रन्थ की उत्तम प्रतिष्ठा हो ॥

वक्ता का लक्षण

जो समग्र परिग्रहोंसे मुक्त हों, अपनी पूजा तथा प्रसिद्धिके उत्सुक न हों, अनेकान्त-वादके धारक हों, सर्व सिद्धान्तोंके पारदर्शी हों, जीवके हितकारी तथा भव्यजीवोंके हितमें सदा लीन हों, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप ही जिनके भूषण हों, शम आदि गुणों के सागर हों, निर्लोभी, निरभिमानी, गुणी एवं धर्मात्माओंसे विशेष प्रेम रखनेवाले हों; अत्यन्त बुद्धिशाली, उद्यमी तथा जैन-धर्मके माहात्म्य-प्रकाशनमें समर्थ हों, जिनका यश सर्वत्र विस्तृत हो, जिन्हें सब मान देते हों, वे ही सत्यवक्ता आदि गुणोंके धारक, आचार्य तथा उत्तम वक्ता कहे गये हैं। इन्हींके उपदेश श्रवण कर भव्य जीव धर्म और तप को धारण करते हैं—अन्य कुमार्गियों के वचनों की लोग उपेक्षा करते हैं। कारण कि, कुमार्गी जब धार्मिक उपदेश देता है, तो स्वयं वैसा आचरण क्यों नहीं करता ? अतएव शास्त्र के रचयिता और धर्मोपदेश देनेवाले में ज्ञान और आचरण दोनों ही गुण पूर्ण मात्रा में होने चाहिये।

श्रोता के लक्षण

जो सम्यग्दृष्टी, शीलव्रती, सिद्धान्त ग्रन्थोंके श्रवणमें उत्सुक और शास्त्रोपदेश को धारण करनेमें समर्थ हों, जिनेन्द्र देवके सिद्धान्तोंको माननेवाले, अर्हंतके भक्त, सदाचारी और पदार्थ-स्वरूपके विचारक और कसौटीके सदृश परीक्षक हों। जो आचार्यके कथनानुसार शास्त्रोंका अध्ययन कर, सार-असारका अन्वेषण कर सत्यग्रहण करनेवाले हों। यदि आचार्य की कहीं भूल भी हो जाय तो उस पर हंसनेवाले न हों, ऐसे श्रोता गुणोंके धारक और श्रेष्ठ कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक श्रेष्ठ गुणों को धारण करनेवाले श्रोताओं के लक्षण दूसरे शास्त्रों से जानना चाहिये।

जिस कथा तथा उपदेशमें जीवादि सप्ततत्त्वों का पूर्ण रूपसे विवेचन किया गया हो, जहां संसार देह-भोगों से अन्तमें वैराग्य बतलाया गया हो, जिसमें दान, पूजा, तप, शील, व्रतादि एवं उनके फल तथा बंध मोक्षका स्वरूप एवं कारण बताये गये हों। वस्तुतः धर्म की माता जीवदया है; उसके प्रसाद से भव्यजन समस्त परिग्रहों का परित्याग कर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं, ऐसी जीव-दयाका वर्णन जिस कथामें पूर्ण रूपसे किया गया हो; जिस उपदेश में महान पदवी को धारण करनेवाले मोक्षगामी त्रेसठ शलाका पुरुषोंके चरित्र एवं उनकी विभूतियों का विस्तृत वर्णन हो, साथ ही उन महापुरुषोंके पूर्व-जन्मों की कथायें तथा उनके पूर्व कर्मोंके फल आदि का वर्णन हो, वह श्रेष्ठ कथा कल्याणकारिणी 'धर्म-कथा' कही जाती है। वही सत्य कथा है; जिसका पूर्वापर विरोधी नहीं है और जो जिनसूत्र के आधार पर हो। इसके अतिरिक्त अन्य शृङ्गारादि रसों को प्रकट करनेवाली पापकारिणी कथा स्वप्न में भी शुभ करनेवाली नहीं हो सकती। इस प्रकार वक्ता-श्रोता और कथाके लक्षणोंका संक्षिप्तमें विवेचन कर अब मैं श्री महावीर भगवानके परम निर्मल चरित्र का वर्णन करता हूँ, जो सदा पुण्य का कारण और पापका नाशक है। केवल यही नहीं; यह कथा वक्ता तथा श्रोता दोनों का हित करनेवाली है। इस चरित्र को श्रवण कर भव्य जीव पुण्य का संग्रह करते हैं, उनके पाप का विनाश होता है और उन्हें दुःख-रूपी संसारसे मुक्ति प्राप्त होती है।

इस प्रकार अपने इष्टदेवोंके चरण-कमलों में नत होकर तथा वक्ताओंके स्वरूप का वर्णन कर जिनेन्द्रदेवके मुखसे उत्पन्न, धर्म-प्रवर्तक अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान श्री महावीर स्वामी की निर्मल कथा आरम्भ करता हूँ, जो कर्मरूपी शत्रुओं को पराजित करने में सहायक होगी। अतएव भव्यजनों को चाहिये कि वे सावधानतापूर्वक इस अमृत-रूपी कथा को श्रवण करें।

द्वितीय प्रकरण

कथा प्रारम्भ

असंख्य द्वीप-समुद्रसे घिरे हुए इसी मध्यलोक में जामुन के वृक्षोंसे चिन्हित जम्बू नाम का एक द्वीप है। उस जम्बूद्वीपके मध्यमें विस्तृत और उच्च सुमेरु नाम का पर्वत है। वह सुमेरु पर्वत देवोंमें श्रेष्ठ तीर्थंकरोंके सदृश पर्वतोंमें मुख्य है। उस पर्वत की पूर्व दिशा की ओर पूर्व-विदेह क्षेत्र है। वह क्षेत्र धर्मात्माओं से तथा जिनेन्द्र देवों के समोशरणों से सुशोभित है। वहां अनन्त मुनि तपस्यापूर्वक विदेह (मुक्त) हो गये हैं। इसी गुणके कारण इसका नाम 'विदेह' पड़ा है। इस क्षेत्र की सीता नदीके उत्तर भागमें पुष्कलावती नामका एक विस्तृत देश है। वहां तीर्थङ्करोंके चैत्यालय ऊँची-ऊँची ध्वजाओं से सुशोभित हो रहे हैं। इस स्थल पर चारों प्रकारके संघोंसे युक्त गणधरादि देव सत्य-धर्म की वृद्धि के लिये विचरण किया करते हैं। अतएव वहां किसी पाखण्डी वेषधारी का निवास नहीं है। वहां अर्हंत भगवान्के मुख-कमलसे प्रकट अहिंसा-प्रधान धर्म विस्तृत है। उसे यति (मुनि) और श्रावक सर्वदा धारण करते रहते हैं। अतएव उस नगरमें जीवोंको पीड़ा पहुँचानेवाला एक भी व्यक्ति नहीं है; अर्थात् सभी धर्मका पालन करते हैं। जिस स्थान पर ज्ञान प्राप्त करनेके उद्देश्यसे भव्यजन ग्यारह अङ्ग, चौदह श्रुतपूर्वका सदा अध्ययन और मनन करते हैं, जिससे अज्ञानका विनाश होता है; पर वे कुशास्त्रों का स्वप्नमें भी अध्ययन नहीं करते। इस देशमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये तीन वर्ण की प्रजा सदा सुखी रहती है। वे सदा धर्ममें तत्पर और अत्यन्त भाग्यशाली हैं। यह क्षेत्र असंख्य तीर्थंकरों, गणधरों, चक्रवर्तियों और वासुदेवों की जन्म-भूमि है और देवों द्वारा सर्वदासे पूज्य है; जहां मनुष्यों का शरीर ५०० धनुष अर्थात् दो हजार हाथ ऊँचा और परमायु एक करोड़ पूर्व की है। वहां सदा चतुर्थ कालका वातावरण रहता है। जिस स्थलमें उत्पन्न हुए महापुरुष तपश्चरणके द्वारा स्वर्गमें अहमिन्द्रपना एवं मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति करते हैं, अर्थात् वहां पर सभी कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं। उसी देशमें पुण्डरीकिनी

नाम की बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी एक नगरी है। वह एक हजार बड़े दरवाजोंसे युक्त तथा पांच सौ छोटे दरवाजोंसे वेष्टित है। यहां महान पुण्यवान ही जन्म लेते हैं। उस नगरीमें जिन-मन्दिरों की ध्वजायें ऐसी शोभित हैं, मानो वे स्वर्गवासियों को आह्वान कर रही हों। नगरके बाहर मधुक नाम का एक बड़ा-सा वन है, जो देखने में अत्यन्त रमणीक है। वहां ध्यानमें लीन हुए मुनिराज विराजमान हैं। इसलिए इस वन की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

किसी समय उस वनमें भीलों का एक राजा रहता था, जिसका नाम पुरुरवा था। वह अत्यन्त भद्र-परिणामी था। उसकी कालिका नामकी रानी थी। वह अत्यन्त कल्याणकारिणी थी। एक दिन उस वनमें जिनदेव की वन्दनाके लिये सागरसे एक मुनिका आगमन हुआ। पुरुरवाने मुनीश्वर को दूर से देख कर तथा उन्हें हरिण समझ कर मारने की इच्छा की। किन्तु उसके पुण्योदयसे उस भीलराज की रानीने उसे मुनीश्वर को मारनेसे मना किया और कहा—स्वामिन्! संसारके कल्याणके उद्देश्यसे यह वन-देवता भ्रमण कर रहे हैं। अतः इनकी हत्या कर पापके भागी मत बनो। अपनी प्यारी पत्नी की बातें सुन कर उस भील को ज्ञान हो आया। वह प्रसन्न चित्त हो मुनिके समीप गया और बड़ी भक्तिके साथ उनके चरणोंमें अपना मस्तक झुकाया। धर्मात्मा मुनीश्वरने भी उसे धर्मोपदेश देते हुए कहा—हे भद्र! श्रेष्ठ-धर्मको प्रकट करनेवाले मेरे वचनोंको श्रवण करो; जिस धर्मके पालनसे त्रैलोक्य की लक्ष्मी अनायास प्राप्त होती है। चक्रवर्ती तथा इन्द्रादि पदों की प्राप्ति भी उसी धर्म के प्रभाव से हुआ करती है। उस धर्मका प्रभाव ऐसा है कि मनोवांछित सारी सम्पदायें और लौकिक सुख प्रदान करनेवाले कुटुम्ब की प्राप्ति बड़ी सफलता से होती है। वह धर्म मद्य-मधु-मांसके त्याग करने से, पञ्च उदम्बरोंके ग्रहण न करने से तथा सम्यक्त्व के सहित अहिंसादि पञ्च अणुव्रतों के पालन करने से प्राप्त होता है। तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत अर्थात् १२ व्रत एकदेश गृहस्थों के लिए है। इसके समुचित पालनसे स्वर्गादिक सुखों की उपलब्धि हुआ करती है। इस प्रकार मुनीश्वरके अमूल्य धर्मोपदेश सुन

कर वह भीलोंका स्वामी मद्य-मांसादिका परित्याग कर उनके चरणोंमें नत हुआ तथा धर्म-प्राप्तिकी आशासे
उसने उसी समय बारह व्रतोंको धारण कर लिया। आचार्य महाराज का कथन है कि, इस धर्म की प्राप्तिसे
शास्त्राभ्यास, विद्वानों की संगति, निरोगता, सम्पन्नता—ये समस्त वैभव प्राप्त होते हैं। पश्चात् उस भीलने
मुनिको पथ दिखला दिया। भील अत्यन्त प्रसन्नताके साथ अपने घरको लौटा। उसने जीवन पर्यन्त उक्त
व्रतोंका पालन किया और अन्तमें समाधि-मरण करके व्रतसे उत्पन्न हुए पुण्योदयसे वह भील सौधर्म नामक
महाकल्प विमानमें महाऋद्धिधारी देव हुआ। उसकी आयु एक सागर की हुई। उसने अन्तर्मुहूर्त में
नवयौवन अवस्था को धारण किया। उसने अवधि-ज्ञानसे अपने पूर्व जन्म का समस्त वृत्तान्त जान
लिया। इससे जैन-धर्ममें उसकी निश्चल भक्ति हो गई। अतः वह धर्मकी सिद्धिके लिए जिन-चैत्यालयोंमें
जाकर सर्वदा भगवान की पूजा किया करता था। वह अपने परिवार-वर्गके साथ आठ प्रकारके द्रव्योंसे
चैत्य-वृक्षोंमें स्थित तीर्थङ्करों की पूजा कर नन्दीश्वरादि द्वीपोंमें जाकर केवलज्ञानी गणधरादि महात्माओं
की भक्तिके साथ पूजा करता था। गणधरों द्वारा दोनों प्रकारके धर्मोपदेश सुन कर उसने महान् पुण्य
का उपार्जन किया। इस प्रकार वह देव पुण्य उपार्जन कर अपने स्थान को लौटा। वह सदा महल,
सुमेरु पर्वत और वनोंमें जाकर किन्हीं स्थानों पर देवांगनाओंका नृत्य देखता, किन्हीं स्थलों पर मनोहर
गाने सुनता और कहीं क्रीड़ा करता रहता। इस भांति पूर्व पुण्यके प्रभावसे उसे समग्र भोगोंकी उपलब्धि
हुई। उसका शरीर सात हाथ ऊँचा और सप्त धातुसे रहित था। वह मति, श्रुति, अवधि—तीनों ज्ञानों
से विभूषित था। आठों ऋद्धियोंसे युक्त वह देव इन्द्रियजन्य सुखमें निमग्न रहने लगा।

भरत क्षेत्रमें कौशल नाम का एक देश आर्यखण्डके मध्य-भागमें है। उसे आर्य जनोंकी मुक्तिका
कारण बतलाया गया है। वहां उत्पन्न हुए भव्य जन व्रतादि धारण कर कोई तो मोक्ष प्राप्त करते हैं,
कोई नव ग्रैवेयक एवं सोलहवें स्वर्गमें जन्म लेते हैं; कोई जिनदेवके भक्त, सौधर्मादि स्वर्गके इन्द्रपद
वाच्य भी होते हैं। यही नहीं, यहांके लोग सुपात्रको दान देनेके कारण भोग-भूमिमें उत्पन्न होते हैं

और कोई-कोई तो पूर्व-विदेह में जन्म धारण कर राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करते हैं। इस स्थान पर संसार-पूज्य केवली मुनिगण धर्मोपदेश करते हुए चार प्रकार के संघोंके साथ विहार किया करते हैं। यह देश ग्राम, पत्तन, ऊँची नगरी तथा बड़े-बड़े ऊँचे भव्य जिन-मन्दिरोंसे शोभायमान था। यहां की वनस्थली ध्यानारूढ़ योगियोंसे सदा भरपूर रहती थी और नवीन फल-फूलोंसे सदा लदी रहती थी। उस देशके मध्य अयोध्या नाम की नगरी थी। वहां भव्य पुरुषों का निवास था। अतएव जैसा रमणीक उसका नाम था, वैसी ही गुण को धारण करनेवाली नगरी थी।

इस नगरी का निर्माण इन्द्रने श्रीआदिनाथ तीर्थङ्करके जन्मके लिये किया था। वह नगरी स्वर्ण, रत्नमय चैत्यालयोंसे शोभायमान थी। अयोध्यामें ऐसे ऊँचे-ऊँचे कोट और दरवाजे थे, जिसे शत्रु भी नहीं लांघ सकते थे। उस नगरी की लंबाई बारह और चौड़ाई नव योजन की थी; जो देवोंको बड़ी ही प्रिय थी। इस नगरी की सुन्दरता का वर्णन वचनों द्वारा नहीं किया जा सकता। यहांके विशाल भवनोंमें निवास करनेवाले दानी, धर्मात्मा पुण्य-उपार्जन करनेवाले तथा अत्यन्त धनाढ्य थे। उनके गुणोंकी प्रशंसा करना सूर्यको दीपक दिखाना मात्र है। वे सर्वगुण-सम्पन्न विमानोंमें देवोंके समान और वहां की नारियां देवियोंके समान सुखोपभोग करतीं थीं। जिस अयोध्यामें देवगण भी मोक्ष-प्राप्तिके उद्देश्यसे जन्म धारण करनेको ललचते हैं, भला ऐसी स्वर्ग-मोक्ष प्रदान करनेवाली नगरी की प्रशंसा यह तुच्छ लेखनी क्या कर सकती है? जिस नगरी का स्वामित्व आदि धर्म-प्रवर्त्तक श्री ऋषभदेवके पुत्र राजा भरतके अधिकृत था, जहां भरत चक्री के चरण-कमलोंकी अकंपनादि राजा, नमि आदि विद्याधर, मागध आदि देव सदा वंदना किया करते थे, ऐसे छः खण्डके स्वामी चरमशरीरी पुण्यवानको सुख प्रदान करनेवाली धारिणी नाम की पटरानी थी। वह सुन्दरी अपूर्व गुणवती थी। इन दोनोंके यहां वह देव (पुरुरवा भील का जीव) स्वर्गसे चय कर अनेक गुणोंसे सम्पन्न मरीचि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह क्रमसे बढ़ने लगा। जब उसकी अवस्था कुछ अधिक हुई तब अनेक शास्त्रोंका अध्ययन कर अपने योग्य सम्पत्तिकी उपलब्धि कर वनादिमें क्रीड़ा रत हुआ।

एक समय की घटना है कि श्रीऋषभदेवको देवांगनाओंके नृत्य देख कर भोगोंसे सर्वथा विरक्ति उत्पन्न हो गई। वे पालकीमें सवार होकर लौकान्तिक देवोंको साथ लेकर वनमें पहुँचे। उन्होंने वहां जाकर वाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग कर मोक्ष-मार्ग-प्रतिपादक तप धारण किया। ठीक उसी समय स्वामीभक्त कच्छ आदि चार सहस्र राजाओंने नग्न-भेष-रूपी द्रव्य-संयम को धारण किया, किन्तु इनके चित्त में चारित्र धारण करने की संयमपूर्ण भावना नहीं थी। परन्तु श्री ऋषभदेवने देह की ममता का परित्याग कर सुमेरु पर्वत जैसे निश्चल हो कर्म-रूपी शत्रुओं को परास्त करने के लिये छः मास की परम समाधि लगा ली।

पश्चात् कच्छ, मरीचि आदिने भूख-प्यास आदि कठिन परिषहों का कुछ दिनों तक स्वामीके साथ सहन किया। परन्तु आगे चल कर उन्होंने अपने को इस महान कार्यमें असमर्थ पाया। क्लेशके भार से दबे हुए वे परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप करने लगे—देखो, यह जगत् का स्वामी वज्रशरीरी न जाने कब तक इस प्रकार खड़ा रहेगा। हमें तो इसके साथ रहने में प्राण नष्ट होने का भय मालूम होता है। क्या हम इसकी बराबरी कर प्राण त्याग करेंगे? इस प्रकार वार्तालाप कर वे भगवान श्रीऋषभदेव को नमस्कार कर दूसरी ओर चले गये। क्योंकि उन्हें घर लौटनेमें राजा भरत का भय था; इसलिये उन्होंने पापोदयके प्रभावसे फल खाना आरम्भ कर दिया। उन राजाओं की देखा-देखी वह मरीचि भी वैसा ही करने लगा। किन्तु उन्हें इस प्रकार नीच कर्म करते हुए देख कर उस वनके देवने कहा—अरे धूर्तों! तुम मेरी बातोंको सुनो। इस पवित्र मुनि-वेषमें जो लोग निन्द्य कर्म करते हैं, वे पापके उदयसे नरक-रूपी समुद्रमें जा गिरते हैं। वस्तुतः गार्हस्थ्य अवस्थामें किये हुए पापोंकी जिन-लिंग अर्थात् मुनि अवस्थामें निवृत्ति हो जाती है। पर यदि मुनि-वेषमें पाप किया जाय तो उससे छुटकारा पा जाना अत्यन्त कठिन ही नहीं, वरन असम्भव है। अतएव तुम लोग इस वेषका परित्याग कर कोई दूसरा वेष ग्रहण करो; अन्यथा मुझे वाध्य हो तुम्हें दण्ड देना पड़ेगा। देवकी ऐसी फटकार सुन कर मुनि वेषधारी पाखंडियों

को बड़ा भय हुआ। वे मुनि-वेष को त्याग कर जटा-जूट आदिके वेष धारण कर लिये। भरत-पुत्र मरीचिने भी तीव्र मिथ्यात्व-कर्मके उदयसे मुनि-वेषका परित्याग कर सन्यासी का वेष धारण कर लिया। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि अब परिव्राजक मतोंके शास्त्रों की रचना करने में समर्थ हुई। ठीक ही है, जैसी होनी होती है, वह होकर ही रहती है। उसके लिए किसी प्रकार का प्रयत्न करना व्यर्थ सिद्ध होता है।

तीनों जगत्के पूज्य श्रीऋषभदेव पृथ्वी पर विहार करने लगे। वे उसी वनमें एक हजार वर्ष तक मौन साध कर सिंहके समान निश्चल रहे। तीर्थङ्कर राजाने अपने ध्यान-रूपी खड्गसे, संसार-हितकारी केवल-ज्ञान-रूपी राज्य को स्वीकार किया अर्थात् वे केवलज्ञानी हो गये। ठीक उसी समय यक्षादिगणोंने बारह कोठोंवाले सभा-मण्डप की रचना की, जिसमें संसार के सभी जीव आ जांय। साथ ही इन्द्रादिक देवोंने भी अपनी विभूति और देवांगनाओंके साथ आकर अष्ट द्रव्यसे भक्तिपूर्वक प्रभु की पूजा की। किन्तु संयोगवश वे भ्रष्ट हुए।

दूसरी तरफ, कच्छादि पाखण्डी राजा गण भगवान श्रीऋषभदेवसे बन्ध-मोक्ष का स्वरूप सुन कर वास्तवमें निर्ग्रन्थ भावलिंगी हो गये। किन्तु मरीचिने अपने मनमें ऐसा विचार किया कि, जैसे—तीर्थनाथने गृहादिका परित्याग कर तीनों जगत् को आश्चर्य में डालनेवाली अपूर्व शक्ति प्राप्ति की है, उसी प्रकार मैं भी अपने मतका प्रसार कर अपूर्व क्षमताशाली हो सकता हूं। वस्तुतः मैं भी जगद्गुरु हो सकता हूँ। मेरी यह इच्छा अवश्य पूर्ण होगी। इस प्रकार मान-कषायके उदयसे वह अपने स्थापित मिथ्या मतसे किंचित भी विरक्त नहीं हुआ। वह पापात्मा मूर्ख मरीचि त्रिदण्डी का वेष धारण कर कमण्डलु हाथमें लेकर अपने शरीर को कष्ट देनेमें तत्पर हुआ। वह प्रातःकाल ठण्ढे जलसे स्नान कर कन्द-मूलादि का भक्षण करता था। उसने वाह्य परिग्रहों के त्यागसे अपने को सर्वत्र प्रसिद्ध किया। उसने अपने शिष्योंको बताया कि सत्य-मत इन्द्रजालके समान है। किन्तु मिथ्या-मार्गका अग्रणी वह भरत-पुत्र मरीचि आयु पूर्ण होने पर मृत्यु को प्राप्त हुआ तथा अज्ञान तप के प्रभाव से ब्रह्म नाम के

पांचवें स्वर्गमें देव हुआ। वहां उसे दश सागर की आयु मिली; उसे भोग्य सम्पदायें भी प्राप्त हुईं। देखो, जब मिथ्या तपके प्रभावसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है; तब सत्य तपके फल का क्या कहना? अर्थात् उससे अपूर्व फल मिलेगा।

उसी अयोध्या नगरीमें ही कपिल नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम काली था। मरीचिका जीव स्वर्गसे चय कर उन दोनोंके घर जटिल नामका पुत्र हुआ। पूर्वके संस्कारोंके वश उसे वही मिथ्या-मार्ग सूझा। वह सन्यासी होकर उसी कल्पित मिथ्या-मार्ग का प्रचार करने लगा। उसे मूर्ख-जन नमस्कार भी करते थे। पर पुनः आयु क्षय होने पर मृत्यु प्राप्त कर काय-क्लेश तपके प्रभाव से वह सौधर्म नामक पहले स्वर्ग का देव हो गया। उसे यहां पर दो सागर की आयु प्राप्त हुई और थोड़ी-सी विभूति भी उसे मिली। अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि जब मिथ्या-दृष्टि पुरुषों का निकृष्ट तप भी निष्फल नहीं हो पाता, तब सु-तप की तो बात ही क्या!

अयोध्यापुरी में ही स्थूणागार नामक नगर में भारद्वाज नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पुष्पदन्ता नाम की अत्यन्त रूपवती पत्नी थी। उक्त देव सौधर्म-स्वर्गसे चय कर उन दोनोंके यहां पुष्प मित्र नामक पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुआ। यहां भी उसने पूर्व संस्कारके वश कुशास्त्रों का ही अध्ययन किया और पुनः मिथ्यात्व कर्मोंके उदयसे मिथ्या मतमें ही लीन हुआ। इसलिये वह पूर्व भेष को ग्रहण कर सांख्य मतके अनुसार प्रकृति आदि पच्चीस तत्वोंका उपदेश करने लगा। वह मिथ्यामती मन्द कषाय से देवायु को बांध मृत्यु को प्राप्त हुआ और उसी सौधर्म-स्वर्ग में पुनः देव हुआ। उसकी आयु एक सागर हुई तथा वह भोग्य सम्पदासे सम्पन्न हुआ।

भरतक्षेत्रमें ही श्वेतिक नामक नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जिसका नाम अग्निभूति था। उसकी पत्नीका नाम गौतमी था। सौधर्म स्वर्गका वह देव स्वर्गसे चय कर अग्निभूति ब्राह्मणके यहां अग्निसह नामक पुत्र हुआ। वह एकान्त मतके शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञाता हुआ। किन्तु पूर्व-कृत कर्मोदयके प्रभावसे

उसने पुनः परिव्राजक दीक्षा धारण की। पश्चात् आयु क्षय होने पर उसकी मृत्यु हो गयी। पूर्वके अज्ञान-तपके प्रभावसे वह सनत्कुमार नामक तृतीय स्वर्गमें देव हुआ और सुख सम्पदासे सम्पन्न उसे सात सागर की आयु प्राप्त हुई।

उक्त क्षेत्रमें ही मन्दिर नामक एक श्रेष्ठ नगर था। वहां गौतम नाम का एक ब्राह्मण रहता था। सनत्कुमार स्वर्गका वही देव वहांसे चय कर गौतमका पुत्र अग्निभूति हुआ। पूर्व-जन्मके संस्कारोंके वश उसने मिथ्या-शास्त्रों का ही अध्ययन किया। अन्तमें उसने त्रिदण्डी दीक्षा धारण की और आयु की समाप्ति पर मृत्यु प्राप्त कर अज्ञान तपके प्रभावसे माहेन्द्र नामक पांचवें स्वर्ग में देव हुआ एवं योग्य आयु-सम्पदा का उपभोग करने लगा।

उक्त मन्दिर नामक नगरमें ही सांकलायन नामका एक ब्राह्मण निवास करता था। उसकी पत्नीका नाम मन्दिरा था। उपरोक्त माहेन्द्र स्वर्गका देव वहांसे चय कर सांकलायनके यहां भारद्वाज नामक पुत्र हुआ। वह पूर्व-जन्मके संस्कारोंसे बंधा तो था ही। इस बार भी उसने मिथ्या-शास्त्रों का ही अभ्यास किया। कुछ समयके पश्चात् उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, किन्तु उसने पूर्वकी भांति त्रिदण्डी दीक्षा ही ग्रहण की और देवायु का बन्ध कर मृत्यु प्राप्त की। तपके प्रभावसे उसे पांचवें स्वर्गमें देव योनि की प्राप्ति हुई, किन्तु वहांसे चय कर उसे निम्न योनियोंमें आना पड़ा। वह असंख्य वर्षों तक निन्दनीय त्रस-स्थावर योनियोंमें भटकता हुआ दुःख पाता रहा। आचार्य लोगों का कथन है कि, मिथ्यात्वके फलसे प्राणि वर्ग को महान् क्लेशों का सामना करना पड़ता है।

वस्तुतः आगमें कूद पड़ना, हलाहल (विष) का सेवन करना, समुद्रमें डूब कर मृत्यु प्राप्त कर लेना उत्तम है, किन्तु मिथ्यात्व सहित जीवित रहना कदापि उचित नहीं। सिंह आदि हिंसक जीवों की संगति प्राप्त कर लेना कुछ अंश तक ठीक भी है, पर मिथ्यादृष्टि जीवोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करना तो बड़ा ही कष्टप्रद है। कारण, हिंसक जीव तो एक जन्ममें ही दुःख देते हैं। पर मिथ्यात्वका प्रभाव

जन्म-जन्मान्तर तक पीछा नहीं छोड़ता। बुद्धिमान पुरुषोंका कथन है कि मिथ्यात्व और हिंसादि पापों की तुलना की जावे तो मेरु और राईके अन्तर समान अन्तर मालूम होगा। अतएव यदि कहीं प्राण जानेका भी भय हो तो भव्य जीवोंको मिथ्यात्वका सेवन नहीं करना चाहिये। प्रत्यक्ष है कि मरीचिके जीवको मिथ्यात्वके प्रभावसे, केवल क्षणिक सुखकी आशासे, कठिनसे कठिन दुःख भोगने पड़े। अतः यदि तुम शास्वत सुखकी आकांक्षा रखते हो तो मिथ्यात्वका परित्याग कर सम्यक्त्व ग्रहण करो।

तृतीय प्रकरण

जिनके शुद्ध असीम गुण, तीन भुवन में व्याप्त।
उन प्रभुका वन्दन करूँ, हों गुण मुझको प्राप्त॥

जिनके अनन्त गुण सर्व प्रकार की बाधासे रहित होकर समग्र संसारमें विचरण कर रहे हैं, इन्द्रादि देवगण भी जिनकी आराधना करते हैं, उन वीतराग प्रभुके गुणों की प्राप्तिके लिये मैं वन्दना करता हूं।

मगध देशमें राजगृह नामका एक विख्यात नगर है। उस नगरमें शांडिल्य नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम पारासिरी था। उसके गर्भसे उसी मरीचिके जीवका पुनर्जन्म हुआ। उसका नामकरण स्थावर हुआ। वह वेद-वेदांग इत्यादि मिथ्या-शास्त्रों का पण्डित हुआ। उसी प्रकार पूर्वके मिथ्या संस्कारके वश उसने पारिव्राजक अर्थात् त्रिदण्डी दीक्षा ग्रहण की; उसने तप आदि भी किये। उसी कु-तपके फलसे मृत्यु होने पर वह माहेन्द्र स्वर्गमें देव हुआ, उसकी आयु सात सागर की हुई और वह थोड़ी सम्पदाका उपभोगी हुआ। उसी नगरमें विश्वभूति नामका राजा था, जिसकी रानीका नाम खोजन जैनी था। पुनः वही माहेन्द्र स्वर्गका देव खोजन रानीके गर्भसे विश्वनन्दी नामक पुत्र हुआ। वह बड़ा पुरुषार्थी और शुभ लक्षणोंवाला था। विशाखभूति राजाका छोटा भाई था। उसकी लक्ष्मण नामकी पत्नी थी। उसके विशाखनन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक समयको घटना है कि शरद् ऋ

के बादलों को देख कर राजा विश्वभूतिको एकाएक वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि, कैसी आश्चर्य की बात है कि, ये बादल क्षण भरमें ही विलीन हो गये। इसी प्रकारी मेरी आयु और यौवन आदि सारी सम्पदायें भी नष्ट हो जांयगी, इसमें सन्देह नहीं। अतएव, शरीर क्षीण होने के पूर्व ही मोक्ष प्राप्तिके लिये बराबर तप करना चाहिए। ऐसा विचार कर वह राजा सांसारिक विषयोंसे अत्यन्त विरक्त होकर दीक्षा धारण करने के लिये प्रस्तुत हो गया।

वैराग्य-भावनाके ऊग्र होते ही, एक दिन उसने अपना राज्य छोटे भाईको सौंप दिया तथा अपने पुत्रको युवराज पद दे दिया। इसके पश्चात् अपने गृहसे निकल कर वह विश्ववन्दनीय श्रीधर मुनिके समीप गया और उनसे दीक्षा ले ली। उसने वाह्य-आभ्यन्तर समग्र परिग्रहों का परित्याग कर अन्य तीन सौ राजाओंके साथ मन-वचन-कायकी शुद्धतासे मुनीश्वर पद प्राप्त किया। उस संयमीने ध्यानरूपी तलवारसे नाम और मोह-रूपी कर्म को परास्त कर अन्य कर्मनाशके उद्देश्यसे तप आरम्भ किया।

किसी सुखद ऋतुके समय राजा विश्वनन्दी अपनी रानियोंके साथ क्रीड़ा कर रहा था। इतने में ही विशाखनन्द वहां पहुँच गया। उसने लौट कर अपने पिता विशाखभूतिसे विश्वनन्दी की बात कह दी और यह कहा कि यदि विश्वनन्दी का बगीचा उसे नहीं मिला, तो वह घरसे निकल जायगा। पुत्रकी ऐसी बात सुन कर राजाने कहा—बेटा, धैर्य्य रख, मैं शीघ्र ही उस बगीचेको तुझे दिलवानेका प्रयत्न करूँगा। एक दिन राजाने विश्वनन्दीको बुला कर कहा—यह राज्य-भार मैं तुम्हें सौंपता हूँ। आजसे मैं अन्यान्य राजाओं द्वारा किये गये उपद्रवोंको शान्त करनेके प्रयत्नमें लगूंगा। मुझे उन पर आक्रमण करना पड़ेगा। किन्तु विश्वनन्दीने उत्तर दिया—पूज्य, आप शान्तिपूर्वक यहां निवास करें, मैं स्वयं उन उपद्रवियोंको परास्त करूँगा। इस प्रकार राजा की आज्ञा लेकर विश्वनन्दी अपनी पूरी सेना लेकर चल पड़ा। इधर राजा विशाखभूतिने अपने पुत्र को विश्वनन्दी का बगीचा सौंप दिया। आचार्य का कहना है कि, ऐसे मोह को धिक्कार है, जिसके लिए मनुष्य को अशुभसे अशुभ कार्य करने पड़ते हैं।

मिला तो उसे बड़ा दुःख हुआ।
जब बगीचेके रक्षक द्वारा भेजे गये दूतसे यह समाचार विश्वनन्दीको मिला तो उसे बड़ा दुःख हुआ।
उसने सोचा—आश्चर्य है, मेरे चाचाने मुझे दूसरी ओर भेज कर मेरे प्रति विश्वासघात किया है!
चाचा का यह कार्य प्रेम और सद्भाव में बाधा पहुँचानेवाला है।

वस्तुतः वह कौन-सा बुरा कार्य है, जिसे मोही पुरुष नहीं करते? इस प्रकार अपने चाचाके प्रति विश्वनन्दी की दुर्भावना बढ़ती ही गयी। वह विशाखनन्द को मारनेके लिए तत्पर हो गया और क्रोधसे तमतमाता हुआ अपने बगीचे की ओर गया। जब यह समाचार विशाखनन्दको मिला तो वह भयभीत होकर वृक्षों की आड़ में छिप गया। किन्तु वहां भी उसके प्राण संकट में पड़ गये। विश्वनन्दीने एक वृक्ष को उखाड़ लिया एवं उसे लेकर उसे मारने के लिये दौड़ा। विशाखनन्द भागता हुआ एक बड़े खम्भे की आड़में छिपा। आचार्यगण कहते हैं—अन्याय करनेवाले क्या कभी विजयी हो सकते हैं? उस बलवान विश्वनन्दीने उस स्तम्भको मुष्टिकाघातसे चूर्ण-विचूर्ण कर दिया एवं विशाखनन्दको परास्त कर दिया।

पर थोड़ी देर बाद जब पराजित विशाखनन्द को दीन की भांति देखा, तब विश्वनन्दीके मनमें दया का भाव उदय हो आया। उसने सोचा—धिक्कार है, इस जीवन को! जिसमें अपने भोगों के लिये भाई की भी हत्या करने के लिये मनुष्य तैयार हो जाता है! यदि इसे अगणित भोगों से तृप्ति नहीं मिली, तो भला इस नगण्य भोगके लिये अपने भाईका बध करनेसे क्या लाभ? ये भोग मान-भंग करनेवाले होते हैं। अतः स्वाभिमानी पुरुषको इनकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिये। ऐसा विचार कर विश्वनन्दी ने उस बाग को विशाखनन्दको दे दिया। उसे तो एक प्रकारसे वैराग्य हो गया था। वह सारी राज्य-सम्पदाको त्याग कर श्री संभूत गुरुके समीप गया। वहां पर उसने मुनिके चरण-कमलको नमस्कार कर समस्त परिग्रहों का त्याग किया एवं दीक्षा धारण कर ली। यहां विचारणीय यह है कि, किन्हीं विशेष स्थलों पर नीच पुरुषों द्वारा किया गया अपकार भी सज्जनों का महान उपकार कर देता है।

समय पाकर विशाखभूति राजाको भी अपने दुष्कृत्यों पर महान् पश्चात्ताप हुआ। वह सांसारिक

भोगोंसे विरक्त हो गया। उसने मन-वचन-कायसे परिग्रहोंका परित्याग कर जिन-दीक्षा धारण कर ली। वह निष्पाप होकर कठोर तप करने में संलग्न हो गया। अपनी शक्ति के अनुसार अधिक काल तक शुद्ध आचरण करते हुए, मृत्यु के समय उसने सन्यास धारण कर लिया तथा इसीके परिणाम स्वरूप वह महाशुक्र नामक स्वर्गमें विशाखभूति नामक महान ऋद्धिधारी देव हुआ।

इधर विश्वनन्दी मुनि होकर अनेक ग्राम वनादिकोंका भ्रमण करने लगे। पक्ष, मास आदिके अनशनोंसे उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो चुका था। उनके ओठ-मुख आदि अङ्ग सूख गये थे। एक दिन ऐसी अवस्थामें मुनि विश्वनन्दीने ईर्यापथ दृष्टिसे मथुरा नगरीमें प्रवेश किया। बुरे व्यसनोंके सेवनसे राज्य-भ्रष्ट हो विशाखनंद भी किसीका दूत बन कर इसी समय उसी नगरमें आया हुआ था। एक वेश्यासे उसका सम्पर्क हो गया था। एक दिन वह उस वेश्याकी हवेली पर बैठा हुआ था। नीचेसे जाते हुए विश्वनन्दी मुनि पर उसकी नजर पड़ी। इधर क्या हुआ कि एकाएक, एक बछड़ेने अपनी सींगसे उन्हें धक्का दे दिया, तो वे जमीन पर गिर पड़े। उन्हें गिरते हुए देख कर विशाखनन्द ठहाका मार कर हँसने लगा एवं बड़े ही कठोर शब्दोंमें कहा—मुनि! तेरा पूर्व का बल पराक्रम कहां चला गया? आज तो तू शक्तिहीन, दुर्बल शरीरवाला मुर्दे की भांति दिखाई देता है।

विशाखनन्दके ऐसे वचन सुर कर मुनिको क्रोध उत्पन्न हो गया। उन्होंने नेत्र लाल कर अन्तरङ्गमें ही कहा—रे दुष्ट! मेरे तपके प्रभावसे तुझे अवश्य ही इस हँसीका फल मिलेगा। यही नहीं, तेरे मूल का ही नाश निश्चित है। इस प्रकार उसके विनाश करने रूप बुद्धिमानों द्वारा निन्दा किया गया, ऐसा निदान बंध करके मुनिने समाधि-मरण द्वारा प्राण त्याग किया। इस तपके प्रभावसे दशवें स्वर्गमें उसी स्थान पर वह देव हुआ, जहां विशाखभूति देव हुआ था। यहां उसे सोलह सागरकी आयु प्राप्त हुई। उन दोनों देवोंने उत्तम सप्त धातु रहित शरीर को धारण किया। वे विमानों में बैठ कर सुमेरु पर्वत तथा नन्दीश्वरादि द्वीपोंमें जिनेन्द्रदेव की भक्तिभावसे पूजा करते थे तथा भगवानके गर्भ-कल्याणकमें भी जाते थे। अपने पूर्वार्जित तपके प्रभावसे अपनी देवियोंके साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

इसी जम्बू द्वीप के सुरम्य देश में पोदनपुर नाम का एक विशाल नगर है। वहां के प्रजापालक राजा का नाम प्रजापति था। उनकी रानी जयावती थी। जयावती रानीके गर्भसे विशाखभूति राजा का जीव स्वर्ग से चय कर विजय नाम का बलभद्र हुआ और उसी राजा की दूसरो रानी मृगावती के गर्भसे विश्वनन्दी का जीव स्वर्गसे चय कर त्रिपृष्ठ नाम का महाबलवान नारायण हुआ। वे दोनों ही भाई चन्द्रमाके वर्ण की भांति शुभ्र कान्तिवाले थे। वे शास्त्रज्ञ, अनेक कलाओं में निपुण न्याय-मार्गमें लीन थे तथा वे भूमि-गोचरी, विद्याधर एवं देवों द्वारा पूजनीय हुए। उनकी अवस्था चन्द्रकला की भांति क्रमसे बढ़ने लगी। वे दोनों भाई सूर्यके समान प्रतिभाशाली हुए।

भरतक्षेत्रके अन्तर्गत ही विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणीमें अलका नाम की पुरी है। वहां के राजा थे मयूरग्रीव तथा रानी थी नीलंजना। दुष्ट विशाखनन्द का जीव संसार-समुद्र में भटकता हुआ, पूर्वोपार्जित पुण्योदय से नीलंजना के गर्भ से अश्वग्रीव नाम का पुत्र हुआ। वह तीन खण्ड पृथ्वी का पति अर्द्धचक्री, देवों द्वारा सेव्य तथा प्रतापी होकर सांसारिक भोगोंमें लीन हुआ। विजयार्द्धके उत्तर में ही रथनूपुर देशमें चक्रवाक नाम की एक अत्यन्त रमणीक पुरी थी। उस नगरी का राजा ज्वलनजटी था। वह पुण्योदय के फलस्वरूप बड़ा ही तेजस्वी और अनेक विद्याओं का ज्ञाता हुआ।

उसी पर्वत के द्यु तिलक नाम के एक अत्यन्त मनोहर नगर में विद्याधरों का स्वामी चन्द्राभ था। उसकी पत्नी का नाम सुभद्रा था। उन दोनों के संयोग से वायुवेगा नाम की एक अत्यन्त रूपवती पुत्री उत्पन्न हुई। अवस्था प्राप्त होने पर वायुवेगा का विवाह ज्वलनजटीके साथ सम्पन्न हुआ। दोनों के संयोगसे सूर्यके समान तेजस्वी अर्ककीर्ति नाम का पुत्र और अत्यन्त शुभ परिणामोंवाली स्वयंप्रभा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन की घटना है कि विद्याधरोंके स्वामी ज्वलनजटीको अपनी कन्या को यौवन-सम्पन्ना तथा धार्मिक प्रवृत्तिवाली देख कर उसके पूर्वभव सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा हुई। उसने सम्भिन्नश्रोतृ नामक एक निमित्तज्ञानी को बुला कर पूछा—कृपा कर यह

इये कि हमारी विदुषी पुत्रीको कौन-सा पुण्यवान पति प्राप्त होगा ? राजाका प्रश्न सुन निमित्त-ज्ञानी ने कहा—महाराज, आपकी पुत्री बड़ी भाग्यशालिनी है। यह अर्द्धचक्री नारायण (त्रिपृष्ट) की पटरानी होगी। वह अर्द्धचक्री नारायण आपको विजयार्द्ध के दोनों ओर का राज्य दिलवाने में समर्थ होगा। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। विजयार्द्ध का राज्य प्राप्त हो जाने पर आप विद्याधरोंके स्वामी होंगे। निमित्तज्ञानी के कर्णप्रिय वचनों पर विश्वास कर राजा ने अपने मन्त्री इन्द्र को बुला कर उसे पत्र लिखने का आदेश दिया। पत्र लिखा कर मन्त्री ने स्वयं पोदनपुर के लिये प्रस्थान किया। वह मन्त्री-दूत आकाश-मार्गसे होकर शीघ्र ही पुष्पकरम्यक वन में जा पहुँचा।

इस ओर की घटना यह है कि त्रिपृष्ट ने भी किसी निमित्तज्ञानीके द्वारा सारी घटनायें जान ली थीं। दूतके आगमन की बात भी उसे ज्ञात थी। वह बड़े हर्षके साथ दूत की अगवानी करने के लिये आया। मन्त्री-दूत को उसी समय राजा प्रजापति के सामने लाया गया। दूत ने मस्तक झुका कर पोदनपुरेश्वरके समक्ष पत्र रख दिया और अपने योग्य स्थान पर बैठ गया। पत्र के भीतर मुहर छाप लगी थी, इसलिये उसे 'मुख्य-कार्य-सूचक' पत्र समझा गया। राजाने तत्काल पत्र पढ़ने की आज्ञा दी। पत्र खोल कर पढ़ा गया। उसमें लिखा था :—

पवित्र बुद्धि, न्यायी, महा चतुर नमि राजा के वंशमें सूर्य के सदृश विद्याधरों का पति ज्वलनजटी का रथनूपुर शहर से ऋषभदेव से उत्पन्न बाहुबलि वंशीय पोदनपुर के स्वामी महाराज प्रजापति को स्नेहपूर्वक नमस्कार। कुशल के पश्चात् सविनय निवेदन है कि, प्रजानाथ ! हमारा आपका सम्बन्ध पूर्व पीढ़ियोंसे चला आ रहा है—यह केवल आजका वैवाहिक सम्बन्ध ही नहीं है। अतएव मेरे पूज्य त्रिपृष्ट नारायणके साथ मेरी पुत्री स्वयंप्रभा लक्ष्मी की भांति प्रेम विस्तारित करे अर्थात् मेरी पुत्री के साथ आपके पुत्र का विवाह हो, तो अत्युत्तम है।

राजा प्रजापति पत्र सुन कर मुग्ध हो गये। उन्हें उक्त भावी सम्बन्ध से बड़ी ही प्रसन्नता हुई।

उन्होंने उत्तरमें कहा—तुम्हारे राजा की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। मन्त्री-दूत योग्य आदर और दानादि पाकर वहांसे शीघ्र ही लौटा। वह बड़ी द्रुत गतिसे रथनूपुर आ पहुँचा। उसने आते ही राजा ज्वलनजटी को सब सन्देशा सुनाया। ज्वलनजटीने बड़े उत्साहके साथ अपनी पुत्री का विवाह, वैवाहिक विधिके अनुसार त्रिपृष्टकुमार के साथ कर दिया। राज-कन्या का रूप अवर्णनीय था। अर्थात् वह साक्षात् लक्ष्मी ही थी। वस्तुतः पुण्योदय से दुर्लभ वस्तु भी अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

पुनः विद्याधर-पतिने अपने जामातृ को सिंहवाहिनी तथा गरुड़वाहिनी नाम की दो विद्यायें प्रदान कीं। पर इस विवाह की बात जब राजा अश्वग्रीव ने सुनी तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वह विद्याधर, अन्य राजाओं को साथ लेकर युद्ध के लिये रथनूपुर के पर्वत पर जा पहुँचा। इधर त्रिपृष्ट भी अपनी सेना सजा कर कुटुम्बियोंके साथ वहां पहुंच चुका था। दोनों ओरसे घमासान युद्ध हुआ। चक्री त्रिपृष्टने अपने बाहुबलके प्रतापसे अश्वग्रीव पर विजय प्राप्त कर ली। अश्वग्रीव भी कब माननेवाला था? उसने त्रिपृष्ट को मारने के उद्देश्यसे मारणास्त्र चक्ररत्न को चलाया, पर वह चक्र त्रिपृष्टके महान पुण्योदयके कारण उन्हें न मार कर उनकी प्रदक्षिणा दी तथा उनकी दाहिनी भुजापर आकर विराजमान हो गया। इसके पश्चात् त्रिपृष्टने तीन खण्ड की लक्ष्मी को अपने अधीन करनेवाले अपने चक्ररत्न को अश्वग्रीव पर चलाया। उस चक्र से अश्वग्रीव की मृत्यु हो गयी। वह रौद्र परिणाम तथा आरम्भ परिग्रह के फल-स्वरूप नरकायु बांध कर मरा, इसलिये वह दुर्बुद्धि महापाप के उदय से सातवें नरक में गया, जो समग्र दुःखों की खानि है। वहां सर्वथा दुःख ही दुःख है और वह स्थान घृणित है।

इस युद्धमें विजय प्राप्त कर लेने के कारण त्रिपृष्ट की सारे संसारमें ख्याति फैली। उसने चक्ररत्न से तीन खण्डवर्ती राजाओं को अपने अधीन कर लिया। विद्याधरोंके स्वामी मागधादि राजाओं तथा व्यन्तरादि देवोंने भयभीत होकर त्रिपृष्ट को अपनी कन्यायें समर्पित की तथा भेंट में बहुमूल्य वस्तुएँ प्रदान कीं। त्रिपृष्टने विजयार्द्धके दोनों ओरके राज्य और उसकी ऋद्धियां रथनूपुरके राजा ज्वलनजटी

को सौंप दी और स्वयं बड़ी विभूतिके साथ अपने नगर को प्रस्थान किया। पूर्वोपाजित पुण्योदय के प्रताप से चक्रादि सप्त रत्नों से शोभायमान तथा सोलह हजार विद्याधरों से नमस्कृत वह प्रथम केशव (नारायण) त्रिपृष्ट सोलह हजार राज-कन्याओं के साथ विभिन्न प्रकार के भोगों का उपभोग करने लगा। किन्तु उसकी भो-लिप्सा यहां तक बढ़ गयी, कि उसमें धार्मिक प्रवृत्ति नाम मात्र को नहीं रह गयी। वह धर्म-पूजा-दानादि का नाम भी नहीं लेता था। अतएव उसने आरम्भ, ममता, परिग्रह आदि विषयोंमें लीन रहने के कारण खोटी लेश्या और रौद्र-ध्यान से नरकायु बांध लिया और मृत्यु होने पर वह सातवें नरक में गया।

नरक तो घृणित होता ही है; वहां इसका जन्म औंधे मुख हुआ और दो घड़ी में ही पूर्ण शरीरधारी हो गया। इसके पश्चात् त्रिपृष्टका जीव उस स्थानसे नरक की भूमि पर गिरा। भूमिका स्पर्श होते ही उसने चिल्लाना आरम्भ किया। जिस भूमिके स्पर्शसे हजार बिच्छुओंके काटने जैसी पीड़ा होती है, ऐसी पृथ्वी के स्पर्श से दुःखी हुआ वह जीव १२० कोश ऊपर उछलता, पर पुनः पत्थर और कांटों से भरपूर पृथ्वी पर गिर जाता। तदनन्तर वह दीन अन्य नारकियों की दुर्दशा एवं पीड़ा देख कर तथा भावी महान कष्टों की कल्पना कर ऐसा विचार करने लगा।

"बड़े ही आश्चर्य की बात है कि, ऐसी यह घृणित भूमि कौन-सी है, जिसमें दुःख ही दुःख दृष्टिगोचर हो रहे हैं? वे नारकी कौन हैं जो कष्ट पहुँचानेमें बड़े प्रवीण हैं? मैं कौन हूं? जो यहां अकेला आ गया हूँ? वह कौन-सा बुरा कर्म है, जिसके कुफल-स्वरूप मुझे यहां तक आना पड़ा?" इस प्रकार विचार करता हुआ त्रिपृष्ट का नारकी जीव करुण क्रन्दन करने लगा। उसे विभंगा अवधि (खोटो अवधि) उत्पन्न हुई। उसने पश्चात्ताप किया—अहा! मैंने पूर्व जन्म में अनेक जीवों की हत्या की। कठोर तथा खोटे वचनों द्वारा दूसरों का निरादर किया। अपने स्वार्थ के लिये पराया धन तथा पराई स्त्रियों तक का अपहरण किया। इस प्रकार न जाने मैंने कितने धन एकत्रित किये। मैंने

इन्द्रिय-तृप्तिके लिये अखाद्य खाये असेवनीय पदार्थों का सेवन किया, अपेय पदार्थों का पान किया। वे ही सब कु-कार्य आज मुझे नष्ट कर रहे हैं। दुःख है, कि मैंने स्वर्ग-मोक्ष प्रदान करनेवाले परम-धर्म को धारण नहीं किया तथा कल्याणकारक अहिंसादि व्रतों का भी पालन नहीं किया। साथ ही न कोई तप किया, न पात्रदान दिया और न जिनेन्द्र देव की पूजा ही की। अर्थात् एक भी शुभ-कार्य करने के लिये मैं तत्पर नहीं हुआ। यही कारण है कि, पूर्व-कृत महान पापों के उदय से आज मेरे समक्ष सारी विपत्तियां आ खड़ी हुई हैं। मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। अब मैं किसकी शरण में जाऊं, जो इस स्थल पर मेरी रक्षा कर सकेगा?

इस प्रकार की चिन्ताओंसे युक्त त्रिपृष्ट का जीव अभी करुण क्रन्दन कर ही रहा था, कि उसके सामने प्राचीन नारकियों का एक बड़ा दल आ पहुँचा। वे अपने मध्य एक नवीन नारकी को देख कर उसे मुद्गर आदि तीक्ष्ण शस्त्रोंसे मारने लगे। कोई दुष्ट उसके नेत्र निकालने लगा, कोई अङ्ग फोड़ने लगा, तो कोई आंतें निकालने लगा। इस प्रकार वे निर्दयी उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर तप्त कढ़ाई में डालने लगे। गर्म कड़ाहीमें डाल देनेके बाद उसका शरीर जल गया, जिससे उसे बड़ी दाह-पीड़ा उत्पन्न हुई। उस दाह को शान्ति के लिये उसने वैरतणी नदीमें डुबकी लगायी। वहां जलके खारेपन और उसकी दुर्गन्धि से वह और भी व्याकुल हो उठा। पश्चात् वह विश्राम करने के लिये असि-पत्र वनमें गया। पर वह कौन-सा शान्तिमय स्थान था? वहां वृक्षोंके तलवार जैसे तीक्ष्ण पत्तों से उसका शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। इस स्थान की भयानक ज्वाला से दुःखी हो वह खण्डित शरीरवाला नारकी शान्ति प्राप्त करने के लिये पहाड़ की गुफाओं में घुसा। वहां भी क्रूर नारकियों ने विक्रिया के जोर से हिंसक जीवों का शरीर धारण कर उसे खाना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार दुःख-भोग, जो कि कवियों की कल्पनासे भी परे है तथा उपमा-रहित है, उसे भोगने पड़े। यद्यपि उसे ऐसी प्यास लगी थी, जो समुद्रके जलसे भी बुझनेवाली नहीं थी, पर उसे एक बूंद

भी जल नहीं मिलता था। संसार भरका अन्न खाकर भी तृप्त न होनेवाली भूखसे पीड़ित होने पर भी, उसे एक दाना भी खाने को प्राप्त नहीं था। उस स्थान पर इतनी शीत थी कि यदि लाख योजनके प्रमाण का एक गोला वहां डाल दिया जाय तो शीतसे उसके सैकड़ों टुकड़े-टुकड़े हो जांय। इस प्रकार के दुःखों को भोगता हुआ वह नारकी उस क्षेत्र में उत्पन्न हुआ जो पांच प्रकार का है। उसे कृष्ण लेश्या परिमाण दुःख देनेवाली तैंतीस सागर की आयु मिली।

इधर त्रिपृष्ट नारायण के वियोगसे दुःखी होकर अत्यन्त पुण्यवान बलभद्रने समस्त परिग्रहों का त्याग कर दिया तथा सांसारिक सुखोंसे विरक्त होकर जिन-दीक्षा धारण कर ली। वे मुनिराज जिनेन्द्र भगवान के मुख की पवित्र जिनवाणी का अध्ययन करने लगे। उनकी धर्म-निष्ठा बड़ी प्रबल हुई। उन्होंने अनेक भव्य पुरुषों को जिनेन्द्र भगवानका धार्मिक सन्देश सुनाया और मोक्ष-सुख प्रदान करने-वाला उपदेश दिया। वे मुनि-संघ के साथ वन, पर्वतों और सुरम्य देशों में विहार करने लगे।

चतुर्थ प्रकरण

ऐहिक और अनन्त सुख, करते सदा प्रदान।
करे सिद्ध शुभ कामना, वीरनाथ भगवान॥

जो ऐहिक और पारलौकिक सुख प्रदान करनेवाले हैं, जिनके पादपद्मों की सेवा इन्द्रादि देवगण किया करते हैं, उन जिनेन्द्र भगवान की मैं भक्ति-भाव से वन्दना करता हूं।

पश्चात् त्रिपृष्ट का जीव नरक की यातनायें भोग कर पुनः इसी भारतमें पशु योनिमें उत्पन्न हुआ। गङ्गा तट पर एक विकट वन था। वन के चारों ओर वन-सिंह, गिरि की विशाल पर्वत मालायें थीं। वह नारकी जीव इसी गिरि पर सिंहके रूपमें उत्पन्न हुआ। यहां इसकी आयु एक सागर पर्यन्त हुई और पशु-प्रवृत्तिके कारण हिंसा आदि कार्यों में रत हुआ। पर काल-लब्धि प्राप्त होने पर उस हिंसक सिंह का शरीरपात हो गया। उसने पुनः पशु योनि धारण की। इस बार भी सिन्धुकूट के पूर्व

हिमगिरि पर्वत पर वह सिंह रूपमें उत्पन्न हुआ तथा पूर्व संस्कारके कारण वह बड़ा ही क्रूर स्वभाव का हुआ। उसके नख और दांत बड़े ही तीक्ष्ण थे।

एक दिन की घटना है—वह सिंह वनसे एक मृग को मार कर लिये आ रहा था। वह बार-बार मृग के मांस को नोचता था और उसे भक्षण करता जाता था। उसी समय ज्येष्ठ और अमिततेज नामक दो चारणमुनि आकाश-मार्ग से कहीं जा रहे थे। उन्होंने उस क्रूर-स्वभावी को देखा। उन्हें तीर्थङ्कर भगवान के पूर्व वचनों का स्मरण हो आया। वे दोनों महामुनि पृथ्वी पर उतरे और एक सुरम्य शिला पर आकर बैठ गये।

उस समय उन मुनिराजों की शोभा देखते ही बनती थी। सिंह भी थोड़ी दूर पर खड़ा था। कुछ समय बाद अमिततेज नाम के मुनिराज ने खड़े होकर कहा—अरे मृगराज! तू मेरे वचनों को ध्यान देकर श्रवण कर। जिस समय तू त्रिपृष्ट नरेश के रूप में था, उस समय समस्त राजा तेरे आश्रय में थे। तूने राज्य-लाभ की आकांक्षा से हिंसाहि कार्यों को किया था और धर्म-दान आदि कार्यों की उपेक्षा की थी। केवल यही नहीं, तूने श्रेष्ठ-मार्ग को दोष लगा कर मिथ्या-मार्ग को बढ़ाने में सहायता पहुँचाई थी, ऋषभदेवके वचनों का भरपूर अनादर किया था। उसी मिथ्यात्व से उत्पन्न पापोदय से जन्म-मृत्यु से पीड़ित होकर तुझे अनेक दुःख भोगने पड़े। इष्ट-वियोग तथा अनिष्ट-संयोग से अनेक वेदनायें सहन करनी पड़ी हैं। पुनः उसी मिथ्यात्व-रूपी महान पाप से तू विभिन्न स्थावर और त्रस योनियों में भटकता रहा है।

किसी कारणवश तू पुनः किसी राजा के यहां उत्पन्न हुआ। वहां तेरा नाम विश्वनन्दी पड़ा। तूने पुनः संयम धारण किया और त्रिपृष्ट नाम का नारायण हुआ। आगे तू इसी भरतक्षेत्र में जन्म धारण कर संसार-हित करनेवाला चौबीसवां तीर्थङ्कर होगा, यह सर्वथा सत्य है। कारण जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहमें एक बार किसी ने श्रीधर नामक तीर्थङ्कर से पूछा था कि, हे भगवन्! जम्बूद्वीपके भरत-

क्षेत्र में जो चौबीसवां तीर्थङ्कर होगा; उसका जीव आजकल किस स्थान पर है ? इस प्रश्न के उत्तर
में भगवान ने जो कुछ कहा था, उसे मैंने तुम्हें सुना दिया। अतएव, अब तुम संसार-बंध के कारण
ऐसे मिथ्यात्व को हलाहल समझ कर त्याग दो और सम्यक्त्व को ग्रहण करो। सम्यक्त्व धर्म-रूपी
कल्पवृक्ष का बीज है। वह मोक्ष-मार्ग का प्रथम सोपान है। ऐसे शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करने से
तुम्हें तीनों संसार की विभूति, तीनों जगत में होनेवाले चक्रवर्ती आदि के सुख तथा अर्हंत पद जैसे
पद उपलब्ध होकर अनन्त सुख की प्राप्ति होगी।

वस्तुतः सम्यक्दर्शन के समान न तो कोई धर्म है, न होगा। वह सम्यक्त्व ही कल्याण-साधक
है। परन्तु मिथ्यात्वके समान तीनों लोकों में दूसरा पाप नहीं है। अतएव यह मिथ्यात्व ही सारे अनर्थों
की जड़ है। उस सम्यक्त्व की प्राप्ति जीवादि सप्त-तत्वों के श्रद्धान से तथा सर्वज्ञ देव, सद्ग्रन्थ और
निर्ग्रन्थ गुरुओंके श्रद्धान् से होती है, जिसकी प्राप्ति से ही ज्ञान-चारित्र को सत्य कहा जा सकता है।
यह कथन भगवान जिनेन्द्र देव का है। अतएव तुम्हें चाहिये कि सम्यक्त्वके साथ ही उत्कृष्ट श्रावक
के बारह व्रतों को धारण करो और अन्तिम कालमें सन्यास व्रत ग्रहण कर प्राण त्याग करो। तुम अन्य
सब प्रकारके हिंसादि पापों का परित्याग कर दो। अब तुम्हें संसार में भटकते रहने का बिलकुल डर
नहीं रहा, अतः बुरे-मार्ग का सर्वथा परित्याग कर शुभ-मार्ग ग्रहण करो।

सिद्ध योगीके मुख-कमल से प्रकट हुए धर्म-रूपी अमृत का पान कर सिंह (त्रिपृष्ट के जीव) ने
मिथ्यात्व-रूपी विष को उगल दिया। इस कारण वह अब शुद्धचित्त हो गया। पश्चात् उसने दोनों
मुनियों की परिक्रमा की तथा उनके चरणों में मस्तक झुका कर देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान-रूप-सम्यक्त्व
ग्रहण किया तथा समय पाकर उसने सन्यास व्रत के साथ-साथ समस्त व्रतों को ग्रहण किया। पूर्व में
इस सिंह का भोजन मांस के अतिरिक्त दूसरी वस्तु नहीं थी, इसलिये उसे व्रत धारण करने में बड़ी
कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। फिर भी उसने बड़े धैर्य के साथ व्रतों का पालन किया।

आचार्य का कथन है कि, वह कौन-सा कार्य है, जो होनहार होने पर नहीं होता ? अर्थात् सब ही कार्य अपने-आप हो जाता है।

दोनों मुनियोंके उपदेशसे प्रभावित हो उस सिंहका चित्त शान्त हो गया और वह अत्यन्त संयमी हो गया। उसे देख कर ऐसा प्रतीत होने लगा कि, वह वास्तविक सिंह नहीं, बल्कि चित्रित सिंह है। वह भूख, प्यास आदि सारी वेदनाओं को सहन करते हुए संसार की दुःखमयी स्थिति पर सर्वदा विचार किया करता था। धैर्यपूर्वक समस्त जीवों पर दया-भाव दिखलाता हुआ, वह आर्त-रौद्र ध्यानों को छोड़ने लगा। पुनः पापों को नष्ट करनेवाला धर्म-ध्यान और सम्यक्त्व आदि का चिन्तवन करने लगा।

इस प्रकार उस सिंहने जीवन पर्यन्त व्रतोंका पूर्ण रूपसे पालन किया। अन्तमें समाधि मरण द्वारा उसकी मृत्यु हुई। वह व्रतादिकोंके फलस्वरूप सौधर्म नामके प्रथम स्वर्गमें महान ऋद्धिधारी सिंहकेतु नामका देव हुआ। उसे दो घड़ी के अन्दर ही यौवनावस्था प्राप्त हो गयी। वहां पर उसे अवधिज्ञान के द्वारा व्रतोंके शुभ फल ज्ञात हो गये। अतः धर्मके माहात्म्य की प्रशंसा कर वह धर्म-धारण करने में संलग्न हो गया।

पश्चात् वह देव अकृत्रिम चैत्यालयमें जाकर अष्ट द्रव्यों सहित अर्हन्त देव की पूजा करने लगा। मनुष्यलोकमें अपने मनोरथों की सिद्धिके लिये नन्दीश्वरादि द्वीपों में उसने जिन प्रतिमाओं की पूजा की तथा गणधरादि मुनीन्द्रों को हर्ष सहित प्रणाम कर उनसे तत्वों का स्वरूप सुना एवं धर्म का उपार्जन कर अपने स्थान को लौट आया। उसने अपने पूर्वकृत पुण्योदय से देवियों की प्राप्ति की तथा विमानादि सम्पदाओं को प्राप्त किया।

इस तरह वह देव विभिन्न रूप से पुण्य का उपार्जन करता हुआ सात हस्त प्रमाण दिव्य शरीर धारण किया। उसकी आँखोंके पलक सदा खुले रहते थे। उसे पूर्वमें नारकी भूमि तकका अवधिज्ञान था और विक्रिया ऋद्धिका बल था। दो हजार वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त हृदयसे झरनेवाले अमृत

का पान करता था तथा तीस दिनके पश्चात् थोड़ी श्वास लेता था; देवांगनाओं का नृत्य देखा करता था, तथा वनों-पर्वतों पर अपनी देवियों के साथ क्रीड़ा-रत रहता था और अपनी इच्छा के अनुसार असंख्यात द्वीप-समुद्रोंमें विहार करता रहता था। इन्द्रिय-सुख-रूपी समुद्रमें मग्न उस देवने दो सागर की आयु प्राप्त की। उसका शरीर धातु, मल और पसीनासे सर्वथा रहित था। इस प्रकार श्रेष्ठ चारित्र पालन द्वारा उपार्जन किये हुए पुण्यके प्रबल प्रतापसे उसे भोगोपभोग की सारी सामग्रियां प्राप्त हुईं। इस प्रकार भोगोपभोग में उसने कितने समय बिताये, यह उसे ज्ञात न हो सका।

धातकीखण्डके पूर्व विदेहमें मङ्गलावती नामका एक देश है। उसके मध्य भागमें विजयार्द्ध पर्वत है। यह पर्वत दो सौ कोश ऊँचा है। उसकी उत्तर श्रेणीमें कनकप्रभ नामका एक बड़ा ही रमणीक नगर है। वहां विद्याधरों का राजा कनकपुंग राज्य करता था। उसकी रानी का नाम कनकमाला था। सिंहकेतु नामका देव स्वर्गसे चय कर कनकमाला रानीके गर्भसे सुवर्ण की कान्तिके समान कनकोज्वल नामका पुत्र हुआ। राजा कनकपुंगने पुत्र उत्पन्न होनेके आनन्दमें जैन-मन्दिरमें जाकर पञ्चकल्याणक की पूजा बड़ी भक्तिके साथ की। इसके पश्चात् दानादिसे बन्धु आदि सज्जनोंको तथा दीन दुःखियोंको सन्तुष्ट करके नृत्य, गीतसे जन्मोत्सव मनाया। वह रूपवान बालक द्वितीया के चन्द्रमा की भांति क्रम-क्रम से बढ़ने लगा। वह बालक दुग्धपान, वस्त्र अलङ्कारादि परिधान आदि बाल-सुलभ कार्योंसे सबको प्रसन्न किया करता था। वह थोड़े ही समय में अनेक शास्त्रों का पारंगत हो गया और सर्व गुणों से सम्पन्न हुआ।

पश्चात् जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तो उसका विवाह उसके मामा की पुत्री कनकावती के साथ सम्पन्न हुआ। एक दिन वह कुमार अपनी पत्नीके साथ महामेरु पर्वत पर आत्म-कल्याणके लिये चैत्यालयों की पूजा तथा क्रीड़ा करने गया था। उस स्थान पर आकाशगामिनी आदि ऋद्धियोंवाले अवधिज्ञानी मुनीश्वर को देख भक्तिपूर्वक उनकी तीन प्रदक्षिणा दे उन्हें नमस्कार किया; पश्चात् धर्म में अभिरुचि रखनेवाला वह कुमार धर्मके सम्बन्धमें मुनिराजसे प्रश्न करने लगा।

उसने पूछा—भगवान, मुझे निर्दोष धर्मका स्वरूप बतायें, जिससे मोक्ष-मार्गमें सहायता मिल सके। कुमारके वचनों को श्रवण कर मुनि ने कहा—बुद्धिमान ! तू एकाग्र मन से सुन, मैं तुझे धर्म का स्वरूप बतलाता हूं। जो संसार-समुद्रमें डूबते हुए जीवों का उद्धार कर मोक्ष-स्थान पर ले जाय अथवा उसे तीनों जगत का स्वामी बनावे, उसे धर्म कहते हैं। वस्तुतः धर्म वह है, जिससे इस भवमें सम्पदाओं की प्राप्ति और मनोकामनाओं की पूर्ति होती है, तथा दुःख आदि भयानक आपत्तियोंका सर्वथा नाश होता है। केवल यही नहीं, धर्मसे तीनों लोकोंमें प्रशंसा होती है और परभवमें राज्य आदिकी विभूति, सर्वार्थसिद्धि पद, तीर्थङ्कर पद, बलभद्र, चक्रवर्ती आदि पदों की प्राप्ति सुलभ होती है। जिसका उपदेश केवली ने दिया है, जो अहिंसा-स्वरूप और निष्पाप है, वही धर्म है—दूसरा कोई भी धर्म नहीं है।

वह धर्म अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह-त्याग, ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण, उत्सर्ग, मनो-गुप्ति, वचन-गुप्ति, काय-गुप्ति—इस भेद से तेरह प्रकार का है; इसे वीतरागी मुनि धारण करते हैं। अथवा उत्तम क्षमादि स्वरूप दश परम धर्मको मोहेन्द्रिय-रूपी चोरोंको परास्त करनेके लिये योगी धारण करते हैं। अतएव हे बुद्धिमान ! तू मुनि-धर्मको धारण कर और कुमार अवस्थामें ही शीघ्र कामादि शत्रुओंको तप-रूपी खड्गसे मार, सदा चित्तमें धर्मका ध्यान कर; धर्मसे अपनेको शोभायमान कर; तू धर्म के लिये गृह का त्याग कर, धर्म के अतिरिक्त और दूसरा आचरण न कर, सदा धर्म की शरण ग्रहण कर और धर्म में ही स्थिर रह। धर्म सदा तेरी रक्षा करेगा।

विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। अब तू शीघ्रसे शीघ्र मोहरूप महान शत्रुको परास्त कर मुक्ति के लिये धर्म अङ्गीकार कर। इस प्रकार धर्मोपदेश करनेवाले उन मुनिके वचनों को सुन कर उसे संसार, शरीर, स्त्री आदि भोगोंसे विरक्ति उत्पन्न हो गई। उसने मनमें विचार किया कि परोपकारी मुनि महाराज ने मेरे हितके लिये ही धर्मोपदेश किया है, अतः मुझे मोक्ष प्राप्ति के लिये शीघ्र ही श्रेष्ठ तप को ग्रहण करना चाहिये। कारण न जाने किस समय मृत्यु हो जाय; जो काल गर्भके बालक को मार डालता

है, उसका क्या ठिकाना? जब यमराज, अहमिन्द्र देवेन्द्र आदि महान पुण्यवानों तकको, नहीं छोड़ता तब हम जैसे पुण्यहीन व्यक्तियोंके जीवित रहने की क्या आशा? वृद्ध होने पर भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। जो मूर्ख धर्म-धारण नहीं करते, वे पापका बोझ लेकर यमराज का ग्रास हो नरकादि योनियोंमें परिभ्रमण किया करते हैं। अतएव भव्य जीवों को सर्वदा धर्म का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। जब कभी भी अपनी मृत्यु की आशंका कर समय को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये।

ऐसा विचार कर उस बुद्धिमानने बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहों का त्याग कर दिया एवं अपनी पत्नी को पिशाचिनी समझ त्याग कर मन-वचन-कर्म तीनों के द्वारा नमस्कृत जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली, जिससे स्वर्ग और मोक्षके मार्ग सरल हो जाते हैं। कनकोज्वल कुमारने आर्त-रौद्ररूप खोटे ध्यान तथा कृष्णादि खोटी लेश्याओंको छोड़ कर धर्म-ध्यानमें लीन हो शुद्ध लेश्या धारण की। वह चारों विकथा-रूप वचनों को त्याग कर धर्म-कथा में लीन हुआ। ध्यान की सिद्धि के लिये उसने वैराग्य उत्पन्न करनेवाले स्थान जैसे गुफा, वन, पर्वत, श्मशान और निर्जन स्थान आदि की शरण ली। धर्मोपदेश और शास्त्रों का वह बहुत बड़ा ज्ञाता हुआ।

मुनि-कुमारने वन, ग्राम, देश आदि स्थानोंमें विहार कर कर्मों को विनष्ट करनेवाला बारह प्रकार के तपों का आचरण किया। इस प्रकार उन मुनिने मूल-गुणों का तथा शास्त्रमें वर्णित संयम का पालन मृत्यु पर्यंत कर अन्त समय चारों प्रकारके आहारों का त्याग तथा शरीर का ममत्व छोड़ कर सन्यास धारण कर लिया। अन्तमें उन्होंने धैर्य्यपूर्वक भूख-प्यास आदि परिषहों को जीत कर समाधिके समय धर्म-ध्यानसे प्राणों का परित्याग किया। उक्त तपके प्रभावसे इन्हें लांतव नामके सातवें स्वर्गमें महान ऋद्धिधारी देव-पद प्राप्त हुआ और सुख प्रदान करनेवाली सारी सम्पदायें उपलब्ध हुईं।

इन्होंने स्वर्गमें भी पूर्वकृत तपोंके प्रभाव और उनके फलोंको अवधिज्ञान द्वारा जान कर दृढ़चित्त हो धर्म की सिद्धिके लिये त्रैलोक्यस्थित जिनालयों की वन्दना एवं मुनिगण आदि की पूजा करते हुए

महान पुण्यका उपार्जन किया। इस पुण्य-फल से उन्हें तेरह सागर की आयु तथा पांच हाथ का ऊँचा
शरीर प्राप्त हुआ। वे तेरह हजार वर्ष बाद हृदयमें से झरते हुए अमृतका सेवन करते थे और छः मास
के पश्चात् सुगन्धित श्वास लेते थे। उनका अवधिज्ञान तथा विक्रिया ऋद्धि नरक की तीसरी भूमि
तक थी। वह देव सप्त-धातु मल-पसीना-रहित दिव्य शरीरवाला हुआ। वह सम्यग्दृष्टि सदा शुभ-
ध्यानमें तथा जिन-पूजामें लीन रहता था। उसे देवियोंके नृत्य, गीत आदि सुख-सामग्रियां उपलब्ध थीं।
वह शुभ भावनाओं का चिन्तवन करनेवाला तथा देवों द्वारा पूज्य हुआ।

अथानन्तर—जम्बू द्वीप के कौशल नामक देश में अयोध्या नाम की एक नगरी है। वह नगरी
अत्यन्त रमणीक तथा भव्यजनोंसे भरी हुई है। वहांके राजा का नाम वज्रसेन था और उसकी रानी
का नाम शीलवती था। वह देव स्वर्गसे चय कर इन दोनोंके यहां हरिषेण नामक उनका पुत्र हुआ।
राजाने बड़े आनन्दके साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। हरिषेण कुमारावस्था में ही राजनीतिके साथ-
साथ जैन सिद्धान्तों का भी बड़ा जानकार हुआ। वह रूप, गुण, कान्ति आदि सभी गुणोंसे विभूषित
था। उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित हरिषेणकुमार देवके समान सुन्दर प्रतीत होता था।

पश्चात् यौवनावस्था में कुमार का विवाह अनेक सुन्दरी कन्याओंके साथ हुआ। राजाने पुत्र को
योग्य समझ कर राज्य-पद समर्पित कर दिया। वह बड़े आनन्दके साथ राज्य-लक्ष्मीका उपभोग करने
लगा। वह गृहस्थ-धर्मकी सिद्धिके उद्देश्यसे बड़ी शुद्धतापूर्वक सम्यक्त्वका पालन करने लगा। अष्टमी
और चौदशके दिन वह पाप कर्मोंको त्याग कर प्रोषध व्रतका आचरण करता था। सबेरे शय्या त्याग
करनेके साथ ही उसका सामायिक तथा स्तवन-पाठ आरम्भ हो जाता था। इसके बाद वह स्वच्छ वस्त्र
से युक्त होकर अर्थ-धर्म-काम आदि की सिद्धिके लिये जिनालयमें जाकर देव-पूजा करता था। मान-
कषाय आदि दुर्गुणों से मुक्त होकर सुपात्रों को विधिवत दान किया करता था। उसका आहार-दान
स्वादिष्ट और प्रासुक हुआ करता था।

वह जितेन्द्रिय सन्ध्या के समय कल्याणकारक सामायिक आदि उत्तम कार्य सम्पन्न किया करता था। केवल यही नहीं, बल्कि धर्म-तीर्थ की प्रवृत्तिके लिये वह अर्हंत, केवली, योगीन्द्र और मुनीश्वरों की संघ-यात्रामें भी सम्मिलित हुआ करता था। वह राजा सुख-समुद्र-रूप तत्व-चर्चा तथा श्रेष्ठ धर्मोंको श्रवण किया करता था। उसे साधर्मी भाइयोंसे बड़ी प्रीति थी। उनके गुणोंसे मुग्ध होकर वह उनका बड़ा सम्मान करता था। अनेक प्रकारके आचरणों का पालन करता हुआ, वह राजा धर्म के पालनके फलसे प्राप्त भोग्य सामग्रियों का उपभोग करने लगा। अतएव हे भव्य पुरुषो! यदि तुम श्रेष्ठ सुख की उपलब्धि चाहते हो तो कठोर प्रयत्न करके भी धर्म को धारण करो।

पञ्चम प्रकरण

सहन किये उपसर्ग बहु, करि विनष्ट निज-कर्म।
बन्दों जिनवर को सदा, जो है साधन-धर्म॥

कर्मोंको परास्त करनेवाले तथा रुद्र द्वारा किये गये उपसर्गों को सहन करनेवाले, वीरोंमें अग्रगण्य जिनेन्द्र भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

एक दिन की घटना है—हरिषेण महाराजने विवेकपूर्वक निर्मल चित्तसे इस प्रकार विचार करने लगे कि मैं कौन हूं, मेरा शरीर क्या है, और सम्बन्धमें इस कुटुम्बकी स्थिति क्या है? मुझे अविनश्वर सुखकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, मेरी तृष्णा किस प्रकारसे शान्त होगी और संसार में हित-अहित वस्तुएँ क्या हैं? इन विषयों पर पूर्ण विचार करनेके बाद हरिषेण महाराज को ज्ञान हुआ कि, यह आत्मा सम्यग्दर्शन और ज्ञान-चारित्र-स्वरूप है और ये शरीरादि अवयव दुर्गन्धयुक्त अचेतन पुद्गल मात्र हैं। जिस प्रकार इस लोकमें पक्षियों का समूह रात्रिके समय तो एक साथ निवास करता है और प्रातः होते ही सब अलग-अलग उड़ जाते हैं, उसी प्रकार ये स्त्री, कुटुम्ब आदि परिवारवर्ग भी हैं।

वस्तुतः मोक्षके अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा अविनश्वर सुख-स्थान नहीं दिखलाई देता। परन्तु उस सुखकी प्राप्ति इस क्षणभंगुर शरीरका ममत्व त्यागनेसे ही हो सकती है। तपकी प्राप्ति भी सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र से ही हो सकेगी। ये मोह और इन्द्रिय-विषय तो अत्यन्त अहित करनेवाले हैं। अतएव, आत्म-हित चाहनेवाले को बिना किसी प्रकार का विचार किये ही विषय-सुख को तिलांजलि दे देना चाहिये और रत्नत्रय तप को ग्रहण कर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर लेना चाहिये।

बुद्धिमान लोग उसी कार्य पर दृढ़ रहते हैं, जिससे लौकिक और पारलौकिक दोनों ही सुखों की प्राप्ति होती हो। मनुष्यको वे कार्य कदापि न करने चाहिये, जिनसे दूसरोंको कष्ट पहुँचे, उनकी बुराई हो। इस प्रकार मनमें विचार करते हुए हरिषेण महाराजको विनाशकी हुताग्निकी ओर प्रेरित करनेवाले भोगोंसे विरक्ति उत्पन्न हो गई। वह धर्म-बुद्धि होकर अपने हित-साधन में संलग्न हुआ। एक दिन उसने अपने समस्त साम्राज्यको मृत्तिकावत नगण्य समझ कर उसे परित्याग कर दिया और तप-ग्रहण करने के उद्देश्य से घरसे निकल पड़ा। वह सर्वप्रथम उस वनमें पहुँचा, जहां अङ्गपूर्व श्रुतके जानकार श्रुतसागर नामक मुनि विराजमान थे। उसने वहां पहुँच कर उन्हें नमस्कार किया।

मोक्षके इच्छुक उस राजाने मन-वचन-कायकी शुद्धतापूर्वक बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रहोंका परित्याग कर बड़ी प्रसन्नतासे जिन-दीक्षा धारण कर ली। उसने पुनः कर्म-रूपी पर्वतोंको ध्वस्त करने के उद्देश्य से तप-रूपी वज्रका आश्रय ग्रहण किया और इन्द्रिय-मन-रूपी वैरियोंको परास्त करनेके लिये प्रशंसनीय शुभ-धर्म को धारण किया। वे सिंहके सदृश मुनि-रूप में धर्म-ध्यान और शुक्ल-ध्यान की सिद्धि प्राप्त करने की आकांक्षासे पर्वतों, गुफाओं, वनों और श्मशान आदि स्थानों में निवास करने लगे। दिनके समय तो वनादि स्थानोंमें विहार करना और सूर्यके अस्त हो जाने पर रात्रिको ध्यानादि धारण करना ही उनकी दिनचर्या हो गयी थी। वे योगीराज सर्प आदि हिंसक जन्तुओंसे भरे हुए स्थानोंमें तूफान और अति भयङ्कर वर्षामें भी वृक्षके तले ध्यान लगा कर बैठते थे।

शीत-कालमें चौराहे पर तथा नदीके किनारे उनकी ध्यान-समाधि लगती थी। वे शीत-गर्मी की बाधाको रोकने में सर्वथा समर्थ हुए। ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य की किरणोंसे तप्त पर्वत की शिला पर अपने ज्ञान-रूपी शीतलजलसे भीषण आतापको शान्त कर वे आसन लगाते थे। केवल इतना ही नहीं, वे ध्यान की सिद्धिके लिये कठिन कायक्लेश बाह्य तपका पालन करने लगे। उन्होंने अन्तरङ्ग तप-रूप उत्तर मूल गुणों का पालन करते हुए मृत्युके समय आहार और शरीरसे ममता परित्याग कर अनशन तप ग्रहण कर लिया था। बादमें वे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप-रूप चारों आराधनाओं का सेवन कर समाधिमरणसे प्राणोंका परित्याग कर, उसके फल-स्वरूप महाशुक्र नामक दशवें स्वर्ग में महान ऋद्धिधारी देव हुए। वहां अन्तर्मुहूर्त में ही उन्हें यौवनावस्था की प्राप्ति हो गयी। वे धातु-मल-रहित दिव्य शरीरधारी देव हुए।

देव रूपमें उन्हें अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने पूर्वकृत धर्मके फलसे प्राप्त विभूतियों का ज्ञान अपने अवधिज्ञानसे प्राप्त कर लिया। धर्म की सिद्धिके लिये, वे जिन-मन्दिरोंमें जाकर सर्व जगत का कल्याण करनेवाली जिन भगवान की अष्ट द्रव्यों से पूजा किया करते थे। पुनः मध्यलोक के जिन-चैत्यालयों की पूजा कर और जिनवाणीका श्रवण कर उन्होंने श्रेष्ठ पुण्यका उपार्जन किया। धर्म-प्रेमी उन देवको सोलह सागरकी आयु प्राप्त हुई और उनका शरीर चार हाथ ऊँचा हुआ। उनके शुभ परिणामसे उन्हें चौथी नरक की भूमि तकका अवधिज्ञान था और वहीं तक उन्हें विक्रिया शक्ति प्राप्त थी। सोलह हजार वर्ष व्यतीत होने पर वे अमृत का पानाहार करते तथा सोलह पक्ष व्यतीत होने पर सुगन्धमयी श्वास लेते थे। इस प्रकार पूर्वके तपश्चरणके प्रभावसे उन्हें दिव्य भोगोंकी उपलब्धि हुई। देवियोंके साथ विभिन्न भोगों का उपभोग करते हुए वे सुख-समुद्रमें निमग्न रहने लगे।

पूर्व विदेहमें पुष्कलावती नामका एक देश है। वहां पुण्डरीकिणी नाम की नगरी है। वहां सदा ही चक्रवर्तियोंका निवास रहा है। वहांके राजाका नाम सुमित्र था और उसकी शीलव्रत-धारिणी रानी का नाम सुव्रता था। महाशुक्र स्वर्ग का उक्त देव स्वर्गसे चय कर उन दोनों के यहां प्रिय नामका पुत्र

पिताने पुत्र उत्पन्न होनेकी खुशीमें अर्हंत भगवानकी कल्याणकारिणी महान
हुआ । वह सबका प्यारा था । उसने चारों प्रकारके दान दिये और बाजे बजवाये । प्रिय मित्र कुमार क्रम-
पूजाका आयोजन किया । वह शोभा और भूषणोंसे सुशोभित देवों जैसा शोभायमान हुआ ।
क्रमसे बढ़ने लगा । धर्म और पुरुषार्थ की सिद्धिके उद्देश्य से जैन गुरु के पास जाकर विद्यारम्भ
पश्चात् उस कुमारने राज्य-विद्याका भी अध्ययन किया । अवस्था प्राप्त होने पर उसने
किया । शास्त्र अध्ययनके साथ उसने पिताके पदको प्राप्त किया । उसका जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा । उस समय कुमार
लक्ष्मीके साथ पिताके पदको प्राप्त किया । उसने उत्कृष्ट सम्पदा और छः अङ्गोंवाली सेनाओं को
के पुण्योदयसे उसे अपूर्व निधियां प्राप्त हुईं । विद्याधरों और मागधादि व्यन्तर देवोंके स्वामियोंको
प्राप्त किया । थोड़े ही समयमें कुमारने चक्र द्वारा विद्याधरों और मागधादि व्यन्तर देवोंके स्वामियोंको
अपने वशमें कर लिया एवं भेंट स्वरूप उनकी कन्यायें आदि लेकर इन्द्रके समान शोभायमान हुआ ।
युद्ध-यात्रा समाप्त कर चक्रवर्ती होकर वह राजकुमार अपनी पुरीमें लौटा । मनुष्य, विद्याधर तथा
व्यन्तर देवोंके स्वामियोंके साथ उसने इन्द्रपुरी जैसी नगरी में बड़े उत्साह पूर्वक प्रवेश किया । पुण्यके
फल-स्वरूप भूमिगोचरी और विद्याधरोंकी छ्यानवे हजार कन्याओंके साथ इस चक्रवर्तीने विवाह किया ।
बत्तीस हजार मुकुट-बद्ध राजा इस चक्रीके आदेश को सिर पर धारण कर उसका पालन करते थे ।
इस चक्रवर्तीके यहां चौरासी हजार पैदल सैन्य थे और हजार गणवाले देव थे । अठारह हजार म्लेच्छ
राजाओंका समूह इसके चरण-कमलों की पूजामें सदा लीन रहता था । सेनापति, रथपति, स्त्री, हर्म्यपति
पुरोहित, हाथी, घोड़ा, दण्ड, चक्र, चर्म, काकिणी, मणि, छत्र, असि—ये चौदह रत्न उसे प्राप्त थे, जिनकी
रक्षा देव लोग करते थे । पद्म, काल, महाकाल, सर्वरत्न, पाण्डुक, नैसर्प, माणव, शंख, पिंगल—ये नौ
निधियां भी उसे प्राप्त थीं, जो चक्रवर्तीके घरमें भोगोपभोग की सामग्रियां प्रस्तुत करती रहती थीं ।
चक्रवर्तीका पुण्य इतना प्रबल हुआ कि छ्यानवे करोड़ ग्राम तथा योग्य सम्पदायें इसे प्राप्त हुईं ।
मनुष्य तथा देवों द्वारा उसकी पूजा होने लगी और दशांग भोग की सामग्रियों का बड़े आनन्दपूर्वक

उपभोग करने लाग। आचार्यका कथन है कि, इस जीवके समग्र मनोरथों की सिद्धि धर्म-साधनसे ही हुआ करती है। अर्थ-धर्म-कामकी सम्पदायें और मोक्षकी प्राप्ति इसीसे होती है। यह समझ कर उस बुद्धिमानने मन-वचन-काय से धर्म की शरण ली। शङ्का आदि दोषोंसे सर्वथा दूर रह कर सम्यग्दृष्टि राजाने श्रावकोंके १२ व्रत धारण किये। चारों पर्व-दिनोंमें आरम्भ-रहित पाप-नाशक प्रोषधोपवासोंका पालन किया करता था।

ऊँचे और भव्य जैन-मन्दिरोंका निर्माण कर उसमें कितनी ही सुवर्ण की और रत्नमयी जिनेन्द्र-मूर्तियों की स्थापना उसने की। अपने घरके चैत्यालयोंमें तथा बाहरके अन्य जिन-मन्दिरोंमें भी पूजा करनेके उद्देश्यसे भक्ति-भावसे वह आया करता था। साथ ही वह राज्य-हितके लिये मुनियोंको प्रासुक आहार-दान भी दिया करता था। कभी-कभी तीर्थंकर, गणधर और योगियों की वन्दना-पूजाके लिये यात्रा भी किया करता था। वह चक्रवर्ती सर्वदा अङ्गपूर्वके ग्रन्थों का श्रवण करता तथा दोनों प्रकार से धर्मके स्वरूप का विचार किया करता था।

रात-दिन किये गये अशुभ कर्मोंको वह सामायिक आदि शुभ कार्यों द्वारा नष्ट करता और साथ ही अपने किये हुए पापों की निन्दा किया करता था। इस प्रकार शुभ क्रियाओंके द्वारा वह धर्म का पालन करता था, और दूसरों को उपदेश देता था।

एक दिनकी घटना है—उस दिन वह चक्रवर्ती राजा अपने परिवारवर्गके साथ क्षेमङ्कर जिनेश्वर की वन्दना करनेके लिये गया था। वहां पहुँच कर उसने केवली भगवानकी तीन प्रदक्षिणा दी एवं मस्तक झुका कर जलादि अष्ट-द्रव्योंसे उनकी पूजा की और मनुष्योंके कोठे में जाकर बैठ गया। चक्रवर्तीके हितके लिये भगवान अपनी दिव्य-ध्वनि द्वारा बड़ी प्रीतिके साथ धर्मोपदेश करने लगे। उन्होंने कहना आरम्भ किया—आयु, लक्ष्मी-भोग आदि इन्द्रिय-जन्य संसारके सुख विद्युतके समान क्षणभंगुर और विनश्वर हैं, अतएव भव्य जनोंको सदा अविनाशी मोक्षका ही साधन करना चाहिये। संसारमें जीवको

मृत्यु, रोग, क्लेश आदि दुःखोंसे रक्षा करनेवाला और कोई दूसरा मार्ग नहीं हैं। धर्म ही एक शरण है।
दुःखादिकोंके निवारणके लिये सदा उसका पालन करते रहना चाहिये। संसार-सागर दुःखों का आगार है,
उससे पार होनेके निमित्त रत्नत्रयका सेवन करना बड़ा ही आवश्यक है। जीवको यह समझ लेना चाहिये कि,
मैं अकेला हूं और यदि मेरा कोई सहायक हो सकता है तो वे भगवान जिनेन्द्र देव ही हैं। इस प्रकार
शरीरसे अपनेको भिन्न समझ कर, शरीरकी ममतासे मुक्त हो आत्म-ध्यानमें संलग्न हो जाना चाहिये। यह
शरीर सप्त धातुमय निन्दित है, दुर्गन्धका घर है—ऐसा समझ कर बुद्धिमान लोगोंको धर्म का ही आचरण
करना चाहिये। अत्यन्त दुःख की बात है कि, इस प्रकार का ज्ञान होते हुए भी लोग संसार-सागर में
डूबे रहते हैं। कर्मों को नाश करने के लिये भव्यजनों को जिन-दीक्षा धारण करनी चाहिये।

यह ध्रुव सत्य है कि, कर्मोंके संवरसे मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, अतएव गृहवास त्याग कर
मुक्तिके उद्देश्यसे संवरका प्रयत्न करना चाहिये। संसारमें समस्त कर्मोंकी निर्जरा सत्पुरुषोंके तपसे हुआ
करती है। ऐसा समझ कर सदा निष्पाप तपमें संलग्न रहना चाहिये। वस्तुतः इस तीन जगतको दुःखका
स्थान समझ कर अनन्त सुख प्रदान करनेवाली मोक्ष की प्राप्तिके लिये संयम धारण करना चाहिये।
मानव शरीर, उत्तम कुल, आरोग्यता, पूर्ण आयु, सुधर्म आदिको प्राप्त कर लेना बड़ा कठिन है, इसलिये
बुद्धिमान लोगों को अपने हित-साधन में सर्वदा संलग्न रहना चाहिये। केवली भगवान ने इस प्रकार
त्रैलोक्यका सुख प्रदान करनेवाला तथा दुःखोंको विनष्ट करनेवाला धर्मोपदेश किया। केवली भगवानने
जिस धर्मका उपदेश किया, वह सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र आदि तपके योगसे एवं क्षमा आदि दश लक्षणोंसे
युक्त होता है। उससे मोह और संतापका सर्वथा नाश हो जाता है। मोक्ष की इच्छा रखनेवाले भव्य
जीवोंको मोक्ष-प्राप्तिके लिये उस धर्मका पालन करते रहना चाहिये। सुखी पुरुष को सुख की वृद्धिके
लिये और दुःखी जीवके दुःखको विनष्ट करने के लिये सदा धर्मका आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

केवली भगवान पुनः कहने लगे—संसारमें वही पण्डित और बुद्धिमान है, उसीका स्थान सर्व-श्रेष्ठ

है, वही जगतपूज्य है, जो अन्यान्य कार्यों को अलग कर निर्मल आचरणोंसे धर्म का सेवन करता है। इस संसारको तथा अपनी आयुको विनश्वर समझ कर बुद्धिमान लोग संसार तथा गृहका परित्याग कर देते हैं। भगवानकी दिव्यवाणीका चक्रवर्ती पर ऐसा हृदयग्राही प्रभाव पड़ा कि, वह लौकिक भोग और राज्यसे एकदम विरक्त हो गया। उसने मनमें विचार किया—अत्यन्त खेद है कि, मैंने अज्ञानमें संसार के विषय-भोगोंका सेवन किया फिर भी इन्द्रियां तृप्त नहीं हुईं। अतः जो लोग भोगोंमें लिप्त रहना चाहते हैं, वे मूर्ख तेल द्वारा अग्निकी शान्ति करना चाहते हैं। जीव को जैसे-जैसे भोगों की उपलब्धि होती जाती है, उसी प्रकार उनकी तृष्णा भी बलवती होती चली जाती है। जिस शरीर द्वारा यह जीव सांसारिक भोगोंका उपभोग करता है, वह शरीर अत्यन्त दुर्गन्धमय और मल-मूत्रादिका घर है।

यह राज्य भी पापोंका कारण है। स्त्रियां पापोंकी खानि है और बन्धु वगैरह कुटुम्बी जन बन्धनके समान हैं और लक्ष्मी वेश्याके समान निन्दनीय है। वैषयिक सुख हलाहलके समान है और संसारकी जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सबकी सब क्षणभंगुर हैं। अधिक क्या कहा जाय, रत्नत्रय के सिवा न तो कोई दूसरा तप है और न कोई जीवों का हित करनेवाला है। अतः अब मुझे ज्ञान-रूपी तलवार से अशुभ मोह-रूपी जाल काट कर मोक्षके लिये जिन-दीक्षा धारण करनी चाहिये। अब तकका मेरा जीवन संयमके बिना व्यर्थ ही गया। किन्तु अब उसे व्यर्थ जाने देना किसी भी दशामें कल्याणकर नहीं हो सकता। मनमें ऐसा विचार कर प्रियमित्र चक्रवर्तीने अपने पुत्र सर्वप्रिय को राज्य का भार समर्पित कर रत्न-निधि आदि सारी सम्पदाओं का परित्याग तृणवत कर दिया।

उस चक्रीने मिथ्यात्वादि परिग्रहों का सर्वथा परित्याग कर मुक्ति-रूपी लक्ष्मी प्रदान करनेवाली अर्हंत देवकी कही गयी जिन-दीक्षा धारण की। वह दीक्षा तीन लोक में देव तिर्यंच और मिथ्यात्वी मनुष्योंको दुर्लभ है। उस चक्रवर्तीके साथ संवेगादि गुणवाले हजारों राजा भी दीक्षित हुए। उन महा-मुनिने प्रमाद रहित होकर दो प्रकारका कठिन तप आरम्भ किया। उन्होंने उत्तर गुण और मूल गुणका

उत्तम रीतिसे पालन किया। वे मन-वचन-कायकी गुप्तिसे कर्मोंके आस्रवको रोकने लगे। निर्जन वन, पर्वत और गुफाओंमें वे ध्यान लगाते थे। उन्होंने अनेक देश, नगर और ग्रामोंका विहार आरम्भ किया।

वे महामुनि भव्यजीवोंके हितके लिये परम पावन जैन-धर्मके तत्वोंका उपदेश करने लगे। उनके प्रभावसे जैनमतकी प्रभावना सर्वत्र फैली। अन्तमें चारों प्रकारके आहारोंका परित्याग कर उन्होंने मन, वचन, काय-योगोंको रोक कर सन्यास धारण कर लिया। वे अपनी सामर्थ्यसे क्षुधा, तृषा आदि बाईस परीषहोंको प्रसन्न-चित्त होकर सहने लगे। हरिषेण मुनीश्वरने चारों आराधनाओंका पालन कर प्रसन्न-चित्त हो प्राणों का त्याग किया।

पश्चात् वे मुनि तपसे उपार्जन किये पुण्यके उदयसे सहस्त्रार नामके बारहवें स्वर्गमें सूर्यप्रभ नामक महान देव हुए। उत्पन्न होनेके थोड़ी देर बाद ही वे यौवनावस्थाको प्राप्त हो गये। उन्हें अवधिज्ञान से पूर्व-जन्मके तपका प्रभाव सम्पूर्ण-रूपसे परिज्ञात हुआ। वह देव अत्यन्त धर्मानुरागी हुआ। वह धर्म की प्राप्तिके लिये जिन-प्रतिमाओं के दर्शन के लिये गया। वहां परिवार-वर्गके साथ उसने पापों को विनष्ट करनेवाली जिन-बिम्बों की पूजा की।

वह सदा अपनी इच्छासे चैत्य-वृक्षोंके नीचे प्रतिष्ठित अर्हंत भगवान की पूजा किया करता था। केवल यही नहीं, वह दोनों लोकोंमें जा-जा कर अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा करने लगा। एक दिन उसने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर तीर्थंकर और मुनीश्वरों की वन्दना की। वह बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने स्थानको लौटा। उस देवने पुण्यसे प्राप्त हुई लक्ष्मी, अप्सरा और विमानादि विभूतियोंको ग्रहण कर इन्द्रिय-तृप्ति करनेवाले महान भोगों का उपभोग करना आरम्भ किया।

उसे सप्त धातु वर्जित साढ़े तीन हाथ का दिव्य शरीर और अठारह सागर की आयु प्राप्त हुई। अठारह हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह देव कण्ठसे झरनेवाले अमृतका पान करता था और नव मासके पश्चात् श्वासोछ्वास लेता था। उसे अवधिज्ञानसे चौथे नरक तक की जानकारी और विक्रिया

रनेकी शक्ति प्राप्त थी। वह अपनी देवियोंके साथ वन और पर्वतों पर क्रीड़ा करनेमें रत हुआ। कहीं बाजों की सुमधुर-ध्वनिसे, कहीं महामनोहर गीतों से, कहीं देवांगनाओं के श्रृङ्गार-दर्शन से, कभी धर्म चर्चासे, कभी केवली भगवान की पूजासे, कभी तीर्थंकरों के पञ्च कल्याणकादि उत्सवों से प्रसन्न-चित्त हो वह अपने समय को व्यतीत करने लगा।

इसी जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें एक अत्यन्त रमणीक नगर है। धर्म की खानि उस नगर का नाम छत्राकार है। उस समय इस नगर का राजा नन्दिवर्द्धन था। वीरवती नाम की उसकी सुशीला रानी थी। उक्त देव स्वर्गसे चय कर उन दोनोंके नन्द नामका पुत्र हुआ। उसके सौन्दर्य और गुणोंसे सारे नगर को प्रसन्नता हुई। उसका जन्मोत्सव बड़े आनन्दसे मनाया गया। वह बालक चन्द्रकलाकी भांति बढ़ने लगा। क्रमसे उसने शास्त्र-विद्या और शस्त्र-विद्याओंका अध्ययन किया। उसकी प्रतिभा यहां तक बढ़ी कि; वह देवोंके सदृश जान पड़ने लगा। अनन्तर यौवन अवस्थामें अपने पिता द्वारा राज्य-पद पाकर वह विभिन्न प्रकारके भोगोंका उपभोग करने लगा। उसने निःशंकादि गुणोंके साथ निर्मल सम्यक्त्व को धारण किया। श्रावकोंके बारह व्रतों का अच्छी तरहसे पालन करने लगा। वह नन्द राजा पर्वके दिनोंमें आरम्भ रहित उपवास करता हुआ, मुनि-वर्गको बड़ी भक्तिसे प्रतिदिन आहार-दान दिया करता था। धर्मकी वृद्धिके लिये वह जिनालयों में जिनेन्द्र देव की पूजा और गणधरादि योगियों की यात्रा में भी जाया करता था। वस्तुतः धर्मसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति हुआ करती है। उससे संसारके ऐहिक सुख उपलब्ध होते हैं और संसार-सुखकी इच्छा त्याग देने से अविनश्वर स्वर्ग-सुख की प्राप्ति होती है। ऐसा विचार कर उसने लोक-परलोकमें सुख-प्राप्तिके उद्देश्यसे समस्त सुख का मूल धर्म का सेवन करना आरम्भ किया।

वह स्वयं शुभ आचरण करता था और दूसरे को प्रेरणा भी करता था। धर्मके फलसे प्राप्त हुए समग्र सुखों का उपभोग करता हुआ, वह समय व्यतीत करने लगा। निर्मल चारित्र के सम्बन्ध से राजा नन्द को उत्तम भोगों की उपलब्धि हुई।

षष्ठ प्रकरण

किये विनष्ट विवेक से, मोह-शत्रु अपकर्म ।
करें सिद्ध शुभ-कार्य वे, वीर प्रवर्तक धर्म ॥

जिनने विवेक अर्थात् ज्ञानसे मोह-रूपी शत्रुओं और कर्मोंके समूह विनष्ट किये, वे धर्मके प्रवर्तक
भगवान महावीर मेरे समस्त कार्यों को सिद्ध करें । धर्मोपदेश श्रवण करनेके उद्देश्यसे

एक बारकी घटना है—वह नन्द राजा भव्य-जीवोंको साथ लेकर धर्मोपदेश श्रवण करनेके उद्देश्यसे
प्रोष्ठिल मुनि की वन्दनाके लिये गया । वहां जाकर वह भक्तिपूर्वक अष्ट-द्रव्योंसे उनकी पूजा, वन्दना
कर उनके चरणोंके निकट बैठ गया । मुनिने श्रेष्ठ श्रोता समझ कर उसको धर्मोपदेश देना आरम्भ
किया । उन्होंने कहा—बुद्धिमान ! उत्तम-क्षमाके द्वारा तू श्रेष्ठ-धर्म का पालन कर । उत्तम-क्षमा उसे
कहते हैं, जिससे, दुष्ट-जनोंके उपद्रव होते रहने पर भी, धर्म का विनाश करनेवाले क्रोधकी उत्पत्ति न
हो । धर्म-वृद्धिके लिये बुद्धिमानोंको मार्दवका पालन करना चाहिये । मार्दव का अर्थ है—मन, वचन,
कायको कोमल करके मानका परित्याग करना । सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे आर्जव-धर्मका पालन करें ।
आर्जव-धर्म मनकी कुटिलता को त्याग देनेसे प्राप्त होता है । सर्वदा सत्य बोलना चाहिये । ऐसे वचन
का कभी भी उच्चारण न करे, जिससे किसी को कष्ट पहुँचे । असत्य-भाषणका सर्वथा त्याग कर दे ।
इन्द्रिय, अर्थ आदि वस्तुओं की ओर से लोभी मन को रोक कर शौच का पालन करना उत्तम कहा
गया है । जल द्वारा किये गये शौच को धर्म का अङ्ग कदापि न समझे । त्रस-स्थावर छः प्रकार के
जीवों की रक्षा कर इन्द्रिय-मन पर नियन्त्रण कर धर्म-सिद्धिके उद्देश्यसे संयम धारण करना चाहिये ।
धर्मके कारण शास्त्र-अभय-दानादि-रूप त्याग-धर्मका पालन करे । सुख-प्राप्तिके लिये आकिंचन-धर्म का
पालन श्रेयस्कर होता है । इसकी प्राप्ति परिग्रहोंके त्यागसे होती है । धर्म-प्राप्तिकी आकांक्षा रखनेवाले
को ब्रह्मचर्यका पालन नितान्त आवश्यक होता है । गृहस्थके लिये अपनी स्त्रीको छोड़ कर सबका त्याग

उत्तम कहा गया है और मुनिके लिये तो सभी स्त्रियों का ही त्याग बताया गया है।

जो भव्य-जीव इन सारभूत लक्षणोंसे युक्त मुनिगोचर परम-धर्म का पालन करते हैं, वे संसारके सभी सुखोंका उपभोग कर अन्तमें मुक्तिके अधिकारी होते हैं। यदि किसीसे धर्मका सम्यक् पालन न हो सके, तो नाम मात्र भी स्मरण कर लेना चाहिये। उसीसे सुखकी प्राप्ति होगी। ऐसा धर्मका माहात्म्य समझ कर विवेकी पुरुषों को चाहिये कि वे इन क्षणभंगुर शारीरिक भोगों से विरक्ति उत्पन्न कर लें। उन्हें वाह्येन्द्रियोंको जीत कर अपनी सारी शक्ति लगा कर धर्म-साधनमें लीन हो जाना चाहिये। मुनिराज की अमृत-सदृश वाणी सुन कर नन्द राजाके मनमें विवेक उत्पन्न हुआ। उसने विचार किया कि, यह संसार अनन्त दुःखोंका आगार है, आदि और अन्तसे रहित है, अतः इससे भव्य-जीवोंको प्रीति कैसे हो सकती है? यदि यह संसार दुःखकी खान न होता तो सांसारिक सुखोंसे परिपूर्ण तीर्थङ्कर देव मोक्ष के लिये इसका परित्याग क्यों करते? भला भूख-प्यास, रोग-क्रोधादि-रूप अग्निसे जलनेवाले शरीर-रूपी झोंपड़ेसे धर्मात्मागण कैसे प्रीति कर सकते हैं? अर्थात् नहीं कर सकते।

केवल यही नहीं, जिस स्थल पर इन्द्रिय-रूपी चोर धर्म-रूपी धनको चुरानेवाले हों, भला उस शरीरमें कौन बुद्धिमान निवास करना चाहेगा? जहां जन्म से आरम्भ कर मृत्यु के बाद भी दुःख ही दुःख है, जहांके भोग, दाहको तीव्र करनेवाले हो, उसे कौन बुद्धिमान आमन्त्रित करेगा? भोग सर्वथा दुःख उत्पन्न करनेवाले होते हैं। अतः महापुरुष उन्हें सर्वथा परित्याग कर देते हैं। पर वे भोग हीन-पुण्य पुरुषों को भी सुख नहीं दे सकते। यदि वस्तुतः भोगसाधक इन्द्रिय-सुखके वस्तु का विचार किया जाय तो उससे अत्यन्त घृणा उत्पन्न होती है। इसलिये यह निश्चित है कि भोग कोई शुभ वस्तु नहीं है।

इस प्रकार विचार करनेके बाद राजाको वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने उसी योगी को दीक्षा-गुरु बना कर दोनों प्रकारके परिग्रहों को छोड़ परम शुद्धिसे जन्म-जन्मके दुःखों से मुक्त होनेके लिये मुनि-व्रत

ग्रहण किया। उस राजाने गुरु की कृपासे अति अल्पकाल में ही शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। वह अपनी शक्तिको प्रगट कर कर्म-नष्ट करनेवाले बारह प्रकारके तपों का आचरण करने लगा।

उस मुनिने ६ मास तक कठोर अनशन व्रत किया। यह व्रत कर्म-रूपी पर्वतको विनष्ट करने के लिये वज्रके समान है। निद्रा कम करनेके लिये उस मुनिने अवमौदर्य तपको धारण किया। जितेन्द्रीय मुनिराजने तृष्णा नाश करनेवाला वृत्ति-परिसंख्यान तपका पालन आरम्भ किया। अतीन्द्रिय सुखके लिये उन्होंने रस-परित्याग तपको धारण किया। वे ध्यानाध्ययन करनेवाले मुनि स्त्री आदि रहित वनों और गुफाओंमें विविक्त-शैय्यासन तपका पूर्ण-रूपसे पालन करने लगे। वे वर्षा ऋतुमें और गर्म हवाके झकोरों में भी वृक्षके धैर्य-रूपी कम्बलको ओढ़े हुए तप किया करते थे। सर्दीके दिनोंमें चौराहे पर, नदीके तीर पर और वर्फसे ढके हुए स्थलोंमें जले हुए वृक्षके समान वे कायोत्सर्ग तप किया करते थे। सूर्य की किरणोंसे तप्त पहाड़ की गर्म शिला पर वे मुनि पर्वतके समान निश्चल रहते थे।

इस प्रकार वे धीर-वीर मुनि इन्द्रिय-जन्य सुख की हानिके लिये सदा कायक्लेश-रूप तप किया करते थे। उन्होंने वाह्य और अन्तरङ्ग दोनों तपों का उचित-रूपसे पालन किया और दश प्रकार की आलोचनाके द्वारा प्रमादरहित चारित्रको शुद्ध करनेवाले प्रायश्चित्त तपको धारण किया। वे मन-वचन-कायकी शुद्धतापूर्वक सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण कर इनके धारण करनेवाले परम मुनीश्वरों की प्रार्थना करते थे। साथ ही वे इन्द्रिय-मन को वशमें करनेके लिये अङ्गपूर्व शास्त्रों का अभ्यास किया करते थे।

उन्होंने निर्ममत्व हो शरीरादिसे ममता त्याग कर सुख की प्राप्तिके लिये कर्म-रूपी वन को भस्म करनेके उद्देश्यसे व्युत्सर्ग तप करना आरम्भ किया। वे बुद्धिमान मुनि शुद्ध धर्म-ध्यानमें ऐसे लीन हो गये कि स्वप्नमें भी आर्त-ध्यान को नहीं विचारते थे। वह आर्त-ध्यान अनिष्ट-संयोग, इष्ट-वियोग, महान रोग और निदान—इस तरह चार प्रकार का है। मुनिके चित्तमें यह चार प्रकार का रौद्र-ध्यान भी जगह नहीं पाता था। वह रौद्र-ध्यान जीव-हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह-रक्षा में आनन्द मानने से

होता है और नरक गति में ले जानेवाला है। वे शुद्ध-चित्तवाले मुनि आज्ञा, अपाक, विपाक और संस्थान-विनय-रूप चार प्रकार के धर्म-ध्यान का चिन्तवन करने लगे। यह धर्म-ध्यान स्वर्गादि सुखों का प्रदान करनेवाला है।

वे बुद्धिमान मुनि वनादिकोंमें पृथकत्व-वितर्क, एकत्व-वितर्क, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपत्ति, व्यपरत-क्रिया-निवृत्ति—इस तरह चार प्रकार के शुक्ल-ध्यान का चिन्तवन करने लगे। यह शुक्ल-ध्यान सर्व-श्रेष्ठ है, विकल्प-रहित है और साक्षात मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मुनिने बारह भेद रूप महान तपका आचरण किया, जो कर्म-रूपी शत्रुओंका संहारक है। वह केवल-ज्ञानको उत्पन्न करनेवाला है और वांछित अर्थ को सिद्ध करनेवाला है। कठिन तप के प्रभावसे उन्हें दिव्य ज्ञानादि अनेक ऋद्धियां प्राप्त हुईं। ये ऋद्धियां अविनश्वर सुख प्रदान करनेवाली होती हैं।

मुनिका स्वभाव अत्यन्त सरल हो गया। वे सब प्राणियों पर दयाभाव रखते थे। धर्मात्मा पुरुषों को देख कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी और वे उनका बड़ा आदर करते थे। पर वे मिथ्यादृष्टि जीवोंसे सदा उदासीन रहा करते थे। मैत्री आदि चारों प्रकार की भावनाओं में लीन उन मुनि को स्वप्न में भी राग-द्वेष नहीं होता था। वे दर्शन-विशुद्धि आदि गुणों में लीन थे। एक दिन उन्होंने तीर्थङ्कर की सम्पदा प्रदान करनेवाली सोलह कारण भावनाओं को ग्रहण किया। वे भावनायें निम्न थीं।

उन सोलह भावनाओंमें पहली भावनामें उन्होंने दर्शन विशुद्धिके लिये शंकादि पच्चीस दोषों को त्याग कर निःशंकादि आठ गुणोंको स्वीकार किया। जिनेन्द्र भगवानके कथनानुसार सूक्ष्म तत्वोंके विचार में प्रमाणिक पुरुषसे शंकाकी निवृत्ति कर 'निःशंकित' अङ्गका पालन करना आरम्भ किया। वे तपसे इस लोक और परलोकके सुखोंको नरकका कारण समझ उसे परित्यागपूर्वक, 'निःकांक्षित' अङ्ग को धारण कर लिया। रत्नत्रयादि गुणों को धारण करनेवाले योगियोंके शरीर पर मैल तथा रोग देख कर उससे ग्लानि नहीं उत्पन्न हो, ऐसी 'निर्विचिकित्सा' अङ्ग का पालन वे करने लगे। मुनिने देव गुरु शास्त्र की

परीक्षा धर्म-रूपी ज्ञान-भेदसे कर मूढ़ता का त्यागपूर्वक 'अमूढ़त्व' अङ्ग को स्वीकार किया।

जिन-शासनमें अज्ञानी, असमर्थ पुरुषोंके सम्बन्धसे प्राप्त हुए दोषोंको छिपाया जानेवाला 'उपगूहन' गुणको वह पालने लगा। जीवों को दर्शन तप, चारित्रसे युक्त उपदेशादि द्वारा दर्शनादि गुणोंमें स्थिर करनेवाला 'स्थितिकरण' अङ्ग का आचरण करने लगा। वह साधर्मी भाइयों से गो-वत्स की भांति 'वात्सल्य गुण' का पालन करने लगा। उसने मिथ्यात्वसे दूर रह कर जैन-धर्मके माहात्म्य को प्रकाश करनेवाला 'प्रभावनाका' पालन आरम्भ किया।

उसने संयमी राजा की भांति अष्ट गुणोंसे सम्यग्दर्शन को पुष्ट किया। सम्यग्दर्शनके प्रभाव से उसने कर्म-रूपी शत्रुओं को नष्ट कर दिया। देव, लोक और गुरु तीनों मूढ़ताको त्याग दिया। इस मुनिने जगत को अनित्य समझ कर अष्ट मदों को छोड़ा। मिथ्या दर्शन, ज्ञान, चारित्र और इनके धारक छः प्रकारके अनायतनों को भी सर्वथा त्याग दिया।

मुनिने निःशंकादि गुणोंके विपरीत शंकादि आठ दोषोंका त्याग किया। वह अपने ज्ञानरूपी जल से सम्यक्त्वके पचीस मलोंको धोकर उसे निर्मल कर दर्शन-विशुद्धि भावना का पालन करने लगा। उस मुनिने संवेग, वैराग्य, उपशम, भक्ति-वात्सल्य, अनुकम्पा आदि गुणोंसे रहित होकर तीर्थंकर की उपाधि का प्रथम सोपान दर्शन-विशुद्धि पर आरोहण किया।

वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र, व्यवहार, विनय एवं ज्ञानादि गुणोंको धारण करनेवालों का विनय मन-वचन-कायकी शुद्धतापूर्वक करने लगा।। वह सदा शास्त्रोंके अध्ययनमें लीन रहता था। साथ ही उसके यहां अनेक शिष्य पढ़ने के लिये आया करते थे। उसे देह-भोग और संसार के प्रति बड़ी अनास्था हुई। वह इनसे बड़ा भयभीत हुआ। उस नन्द नामके योगीने मुनियोंको ज्ञान-दान, अन्यान्य जीवों को अभय-दान और समग्र जीवों को सुख देनेवाला धर्मोपदेश आरम्भ किया।

वह मुनि दुष्ट कर्म-रूपी शत्रुओं को विनष्ट करनेके उद्देश्यसे निर्दोष तप करने लगा। वह सदा

रोगसे पीड़ित और समाधिमरण करनेवाले असमर्थ साधुओं की सेवा में संलग्न रहने लगा। उन्हें वह धर्मोपदेश भी दिया करता था। वह मोक्ष के लिये मुनियों की वैयावृत्य करने लगा। मुनि ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाली अर्हंत भगवान की महती पूजा आरम्भ की। वह छत्तीस गुणों के धारक आचार्य की रत्नत्रय को प्राप्तिके लिये, भक्ति करने लगा। संसार को प्रकाशित करनेवाले और अज्ञान-रूपी अन्धकारको नाश करनेवाले उपाध्याय मुनीश्वरों की उसने बड़ी भक्ति की। साथ ही वह जिनवाणी का अध्ययन करने लगा।

उस योगीने समता, स्तुति, त्रिकाल-वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग—सिद्धान्त में प्रकट किये गये छः आवश्यक पापोंको विनष्ट करनेके लिये योग्य समयमें नियम धारण किया। भेद-विज्ञानसे, तपस्यासे, उत्कृष्ट आचरणोंसे सदा जीवोंकी रक्षा करनेवाला जैन-धर्मकी वह प्रभावना किया करता था। सम्यग्ज्ञानी पुरुषोंका आदर और धर्मात्माओंसे वात्सल्य भाव रखता था।

वह इस प्रकार तीर्थंकर की विभूति प्रदान करनेवाली सोलह कारण भावनाओं का शुद्ध मन-वचन कायसे चिन्तवन करने लगा। इन भावनाओंके चिन्तवनके फलस्वरूप उसे अनन्त महिमायुक्त 'तीर्थंकर' नाम-कर्मका बन्ध हुआ। जिस 'तीर्थंकर' नामके प्रभावसे इन्द्रका आसन भी हिल उठता है, मोक्षरूपी लक्ष्मी स्वयं आकर जिनका आलिंगन करती है, उस पद का बन्ध होना क्या सरल है? इसके बाद उक्त मुनिने निर्दोष चारित्रका पालन करते हुए सन्यास-मरणको धारण किया। पुनः सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप-रूपी चार आराधनाओं का पालन करते हुए उसने अपने प्राणों को छोड़ा।

उक्त समाधिके परिणाम स्वरूप नन्दनामा मुनि सोलहवें स्वर्गमें जाकर देवोंके पूज्य अच्युतेन्द्र हुए। अन्तर्मुहूर्त में उन्हें पूर्ण यौवन प्राप्त हुआ और वे वस्त्र, माला आदि आभूषणों से सुशोभित हुए। अपनी कोमल शय्यासे उठ कर वे सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं को देखने में संलग्न हो गये। स्वर्गके विमान आदि वस्तुओं को देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—मैं कौन हूँ? यह स्थान

कौन-सा है ? जहां सुख ही सुख दृष्टिगोचर हो रहे हैं ? दुःखका तो लेश भी नहीं है। ये अत्यन्त चतुर और प्रियदर्शन देव कौन है ? ये सुन्दरी देवांगनायें और आकाश में लटकनेवाली अट्टालिकायें किसकी हैं ?

ये बड़े ऊँचे सभा-मण्डप और देव-रक्षित मनोज्ञ सेनायें किसकी हैं ? यह दिव्य ऊँचा सिंहासन किसका है ? और ये सम्पदायें किसकी हैं ? ये सुन्दर, विनयी लोग मुझे देख कर हर्ष क्यों मना रहे हैं ? किस कर्म की प्रेरणासे मैं यहां आया हूँ ? इन्हीं सब विषयों पर इन्द्र चिन्ता कर रहे थे और उनका सन्देह दूर भी न हो पाया था कि, उनके चतुर मन्त्रीने अवधि-ज्ञानसे उनके अभिप्रायको समझ, समीप आकर उनके चरण-कमलों में भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। उसने दोनों हाथ जोड़ कर उनके संशय की निवृत्ति के लिये प्रिय वचन कहने लगा। उसने कहा—

देव, हम पर दयादृष्टि रख कर अपने सन्देह-निवारणके लिये मेरे वचनोंको सुनिये। नाथ ! आज हम अपने सफल जीवन का अनुभव कर रहे हैं। हम धन्य हैं कि, आपने अपने आगमनसे इस स्थानको पवित्र किया ! समग्र सम्पदाओं का आगार यह अच्युत नामका स्वर्ग है। यह सब स्वर्गों की मुकुट-मणिके समान शोभायमान है। यहां पर मनोवांछित वस्तुओं की सर्वदा प्राप्ति होती रहती है। तीनों लोकोंमें भी दुर्लभ, अगोचर, इन्द्रिय-सुख यहां पुण्यात्माओं को सुलभ है। यहां पर कामधेनु गायें, समस्त कल्पवृक्ष और चिन्तामणि रत्न स्वतः ही प्राप्त होते हैं। यहां सारी सम्पदाओं की प्राप्ति होने में जरा भी परिश्रम नहीं होता। यहां किसी प्रकारके ऋतु-कष्ट का कोई कारण नहीं है।

यहां पर किसी समय भी दिन-रात्रिका भेद नहीं होता। सदा रत्नों का प्रकाश होता रहता है। दीन-दुःखियोंका यहां नाम निशान भी नहीं है। पापी और निर्गुण मनुष्य तो वहां स्वप्नमें भी दिखाई नहीं देते। यह ऐसी पुण्य-भूमि है कि, जिनालयों में सर्वदा जिनेश्वर भगवान की पूजा-अर्चा होती रहती है। नृत्य-गीतादिसे प्रतिदिन महान उत्सव उत्पन्न हुआ करते हैं। यहां असंख्य देव-विमान हैं।

दश हजार सामानिक देव हैं। वे भी आपके ही समान ऋद्धिधारी हैं, पर वे आदेश नहीं कर सकते। ये तैंतीस देव समूह प्रेम से परिपूर्ण आपके पुत्र के तुल्य हैं। आत्मरक्षक देवों की संख्या चालीस हजार है। वे सिपाहियोंके समान अङ्ग-रक्षक हैं। मध्य सभा के देव ढाई सौ हैं और पांच सौ बाहर की सभाके हैं। चार लोकपाल कोतवाल की भांति हैं। इन लोकपालों की बत्तीस-बत्तीस देवियां हैं। वे सुख की खानि हैं। ये आपकी आज्ञा पालन करनेवाली आठ महादेवियां हैं।

इन्हीं महादेवियों के परिवार की देवियों की संख्या ढाई सौ है। ये त्रेसठ बल्लभिका देवियां महान सम्पदा से युक्त आपके चित्त को हरण करनेवाली हैं। ये दो हजार इकहत्तर देवियां विदुषी हैं। ये महादेवियां एक लाख चौबीस हजार दिव्य रूपों की विक्रिया कर सकती हैं। अर्थात् प्रत्येक देवी एक लाख चौबीस हजार स्त्रियों के रूप बना सकती हैं। हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, बैल, गन्धर्व और नर्तकी—ये देव सेना के सात अङ्ग हैं। इनमें से प्रत्येक सेना की सात-सात पलटने हैं और हरएक सेना के सेनापति देव हैं। पहली हाथी की सेना में बीस हजार हाथी हैं तथा शेष अन्य सेना में हरएक में इससे दूनी सेना हैं। इसी प्रकार अन्य सेनाओं में भी समझना चाहिये। ये सभी आपकी सेवा के लिये प्रस्तुत हैं।

एक-एक देवी-अप्सराओं की तीन-तीन सभायें हैं। वहां पर नृत्य-गीत, बाजा-बजाने आदि की कलाओं की शिक्षा दी जाती है। प्रथम परिषद्में पच्चीस अप्सरायें हैं, दूसरीमें पचास और तीसरी में सौ हैं। आपके पुण्योदयसे ये समग्र दिव्य सम्पदायें आपके समक्ष उपस्थित हैं। अब आप स्वर्ग-राज्य के अधिपति बनें और अनुपम सम्पदाओं को प्रसन्नचित्त हो ग्रहण करें।

अपने चतुर मन्त्री के वचन सुन कर अवधिज्ञान से अच्युतेन्द्र को अपने पूर्व भव का सारा वृतान्त ज्ञात हो गया। धर्म का साक्षात् फल देख कर धर्म-साधना में वे और भी तत्पर हुए। वे पूर्व-भवके सूचक वचन कहने लगे—

मैंने पूर्व-जन्ममें निष्पाप और घोर तप किया था। शुभ-ध्यान और अध्ययन-योग भी किये थे। संसारपूज्य पञ्च-परमेष्ठी की सेवा की थी और रत्नत्रय की प्राप्तिके लिये उत्तम भावनाओं का चिन्तवन किया था। मैंने विषय-रूपी वन को जला दिया था; कामदेव जैसे प्रबल शत्रु को परास्त किया था; कषाय और परिषहों पर विजय पायी थी। पूर्वमें मैंने अपनी सारी शक्ति लगा कर उत्तम क्षमा आदि दश लाक्षणिक धर्म का पालन किया था। उसीका यह शुभ फल है कि आज हम इन्द्र-पद पर आसीन हैं। अर्थात् ये समस्त ऋद्धियां धर्मके पालनसे ही प्राप्त हुई हैं। वस्तुतः धर्मके समान दूसरा कोई मित्र नहीं है; धर्म ही संसार-सागरसे पार उतारनेवाला है; वांछित अर्थोंका प्रदाता धर्म ही है। वह मानव जीवनको उन्नत बनानेवाला तथा पाप-रूप शत्रुओं का संहारक है। समस्त जीवोंको सुख प्रदान करनेवाला तथा स्वर्ग मोक्ष प्रदान करनेवाला धर्मके अतिरिक्त दूसरा कोई भी साधन नहीं है। ऐसा जान कर सुखकी आकांक्षा रखनेवाले भव्य पुरुषोंको किसी भी अवस्थामें निर्मल आचरण युक्त होकर धर्म-साधना करनी चाहिये। इस प्रकार विचार करते हुए अच्युतेन्द्रने अपने मनमें सोचा—यह तो ठीक है, पर चारित्र तो इस स्थल पर पालन नहीं किये जा सकते, तब मुझे क्या करना चाहिये? यहां तो एक दर्शन-शुद्धि ही पालन की जा सकती है। अतएव श्रीजिननाथ की भक्ति और उनकी मूर्ति की महान पूजा करना ही श्रेयस्कर है।

ऐसा निश्चय कर वे अच्युतेन्द्र अपनी देवियों को साथ लेकर अकृत्रिम चैत्यालयों में गये। वहां अत्यन्त भक्तिके साथ नमस्कार कर अर्हन्त-बिम्बों की पूजा आराधना में रत हुए।

उन्हें पूजाके लिये अष्ट द्रव्य इच्छा मात्र से प्राप्त होते थे। वे उन्हीं द्रव्यों से भगवान की पूजा करने लगे। उन्होंने चैत्य-वृक्षोंके नीचे विराजमान जिन-प्रतिमाओं की पूजा कर तथा मनुष्यलोक और मध्यलोककी जिन-प्रतिमाओं की पूजा कर महान धर्मका उपार्जन किया। वे मुनीश्वरोंसे धर्म-तत्वों का व्याख्यान सुन कर धर्म का उपार्जन करने लगे।

इस प्रकार धर्मके फलसे उन्हें अनेक सम्पदायें प्राप्त हुईं। उन्होंने तीन हाथ ऊँचा पसीना, धातु-

मलसे रहित, नेत्रों की टिमकार रहित दिव्य शरीर प्राप्त किया। उन्हें नरक की छट्ठी पृथ्वी तक का अवधिज्ञान था और विक्रिया-ऋद्धि प्राप्त हुई। ज्ञानके समान ही क्षेत्रोंमें गमन-आगमनमें समर्थ विभिन्न भूषणोंसे शोभायमान वाईस सागर की आयु भी उन इन्द्र को प्राप्त हुई।

वाईस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर वे मानसिक दिव्य अमृतका आहार करते थे। ग्यारह मास वीतने पर सुगन्धित श्वास लेते थे। वे सुरेश, तीर्थंकरोंके पांचों कल्याणकोंमें तथा केवलियोंके दोनों कल्याणकोंमें जाया करते थे। देवों द्वारा पूज्य सुरेन्द्र, सदा पूजा आदि महोत्सवोंमें जा-जाकर धर्मकी अभिवृद्धि किया करते थे। उन्हें सुख की सारी सामग्रियां उपलब्ध हुईं।

इस तरह वे अच्युतेन्द्र सुख-सागर में निमग्न हुए धर्म के फलस्वरूप उन्हें जो सम्पदायें प्राप्त हुईं, उनका वर्णन करना असम्भव है। उन्होंने दिव्य भोगोंका उपभोग किया। ऐसा समझ कर बुद्धिमान जन शम-दम और संयमसे सदा धर्म का सेवन किया करते हैं।

सप्तम प्रकरण

लोकपाल जिनका सदा, करते सद्गुण गान।
करें विघ्न सव नष्ट वे, पार्श्वनाथ भगवान॥

जिन महाप्रभुके सद्गुणोंका गान लोक-पतियोंके द्वारा सर्वदा हुआ करता है, वे पार्श्वनाथ भगवान समग्र विघ्नों (ग्रन्थ-निर्माण सम्बन्धी आनेवाले उत्पातों) को नष्ट करें। अर्थात् ग्रन्थ-निर्माणमें किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होने न दें।

भरतक्षेत्रमें विदेह नामक एक विस्तृत देश है। धार्मिक पुरुषों का निवासस्थान होनेके कारण वह विदेह-क्षेत्र जैसा ही शोभायमान है। इस स्थलसे कितने ही मुनियोंने मोक्ष प्राप्त किया है। नाम के अनुसार इस स्थानका गुण भी सार्थक है। यहांके निवासी कोई सोलहकारणादि भावनाओं का विचार कर तीर्थङ्कर नाम-कर्मका बन्ध करते हैं, कोई पञ्चोत्तर नामके अहमिन्द्र स्थानमें पहुँचते हैं। भक्तिपूर्वक

उत्तम पात्रको दान देनेसे भोग-भूमिमें जन्म ग्रहण कर लेना तो यहांके निवासियोंके लिये सामान्य-सी बात है। यहां तक कि यहांके कोई भी भव्य-जीव भगवानकी पूजाके फल-स्वरूप स्वर्गमें इन्द्र-पद-वाच्य हो जाते हैं।

यह स्थान अर्हंत केवली भगवानकी मोक्ष-भूमि है। कारण, यहां स्थान-स्थान पर मोक्षस्थान हैं। इस भूमिको मनुष्य, देव और विद्याधर सभी नमस्कार करते हैं। यहांके वन-पर्वत ध्यानी योगियों से अत्यन्त शोभायमान हैं और बड़े, ऊँचे भव्य जिनालयोंको देख कर महान धार्मिक-स्थानका बोध होता है। विदेहके ग्राम, मुहल्ले, सभी जिनालयोंसे सुशोभित हैं। यहां का मुनिसमूह चारों प्रकारके संघके साथ धर्म की प्रवृत्तिके लिये विहार किया करता है।

इसी विदेहके ठीक मध्यमें कुण्डलपुर नाम का एक अत्यन्त रमणीक नगर है। यहां पर विशिष्ट धर्मात्माओंका निवास है। यहांके कोट, दरवाजे और अलंघ्य खाइयोंको देख कर अपराजिता अयोध्या नगरी का भान होता है। इस नगरमें सर्वदा तीर्थंकरोंके जन्म-कल्याणकके महान उत्सव सम्पन्न हुआ करते थे। देवगणोंकी यात्रासे इस नगरमें सदा कोलाहल मचा रहता था। यहांके ऊँचे और स्वर्ण-रत्नों से निर्मित जैन-मन्दिरोंको देख कर लोगों की कुण्डलपुरके प्रति अपार श्रद्धा होती थी। वह नगर धर्म का समुद्र जैसा प्रतीत होता था। वहांके जिनालय 'जय-जय' शब्द स्तुति, नृत्य, गीत आदिसे सर्वदा मुखरित होते थे। स्वर्गके उपकरणों सहित रत्नमयी प्रतिमाओं का दर्शन कर लोग कृतार्थ हो जाया करते थे।

यहांके जिन-मन्दिरोंकी पूजा-आराधनाके लिये सदा जन-समूहकी भीड़ लगी रहती थी। दर्शनार्थ आनेवाले भव्य-जीव देवों जैसे प्रतीत होते थे। वहां के दानी स्त्री-पुरुष सदा अपने यहां अतिथि या मुनिके आगमन की प्रतीक्षा किया करते थे। वे पात्र-दान देनेमें बड़े उदार थे। इस नगरके ऊँचे पर-कोटे देख कर यह भान होता था कि वे उच्च-स्थान दानके लिये स्वर्गके देवोंको बुला रहे हैं। इस नगर के निवासी दाता, धर्मात्मा, शूर-वीर, व्रत-शीलादिसे युक्त और संयमी होते थे। वे जिनदेव तथा निर्ग्रंथ

गुरुकी भक्ति, सेवा और पूजामें सदा तत्पर रहा करते थे। उनका धार्मिक कार्य सदा जारी रहता था इस प्रकार वे बड़े ही धनवान, सुखी और बुद्धिमान थे।

उस नगरके राजा का नाम सिद्धार्थ था। वे हरिवंश-रूपी गगन को सुशोभित करनेवाले साक्षात सूर्य थे। वे महाराज मति, श्रुति, अवधि—तीनों ज्ञान को धारण करनेवाले थे। उन्होंने सदा नीति-मार्गको प्रश्रय दिया। वे जिनदेवके भक्त, महादानी और दिव्य ज्ञानके धारक थे। उनकी सम्यक्दृष्टि बड़ी प्रबल थी। उनके चरणों की सेवा बड़े-बड़े विद्याधर, भूमिगोचरी और देव किया करते थे। उनका पुण्य बड़ा प्रबल था। वे समस्त राजाओं में इन्द्र के सदृश शोभायमान थे।

उनकी त्रिशला नामकी अत्यन्त रूपवती महारानी थी। उनकी प्रवृत्ति भी महाराज जैसी ही थी। वे पति-परायणा बड़ी साध्वी थीं। उनकी कान्ति और अलौकिक सुन्दरता सरस्वती जैसी थी। उनके चरण, कमल जैसे प्रतीत होते थे। उनकी नख-रूपी किरणोंसे सारा राजमहल शोभायमान हो रहा था। उनके दोनों सुन्दर जानु कदलीस्तम्भ जैसे मालूम होते थे। गहरी नाभियुक्त रानी को देख कर रति भी थोड़ी देर के लिये संकुचित हो जाती थी! उनके कोमल कण्ठों के और हाथों के आभूषण सारे राजमहलको प्रकाशित कर रहे थे। कानोंके कुण्डलोंसे शोभायमान, अष्टमीके चन्द्रमाकी भांति मस्तक-वाली मनोज्ञ भौहें और नील केशसे युक्त रानी का स्वरूप ऐसा प्रतीत होता था कि संसारके सुन्दरसे सुन्दर परमाणुओंके द्वारा उनका निर्माण किया गया हो।

इसके अतिरिक्त उनके अङ्ग-उपाङ्गों की स्त्रियोचित बनावट बड़ी ही आकर्षक और भव्य थी। वे देवी गुण-रत्नों की खानि, अनेक शास्त्रोंमें निपुण; सरस्वती देवीके सदृश प्रतीत होतीं थीं। वे इन्द्र की शची जैसी अपने प्रियतम की प्यारी हुईं; उन्हें महाराज का अत्यधिक स्नेह प्राप्त हुआ। महाराज और महारानी दोनों ही देव तुल्य सुखों का उपभोग करते हुए जीवन व्यतीत करने लगे।

पाठक-वर्ग को स्मरण होगा कि अच्युत स्वर्ग का इन्द्र बड़ी विभूतिके साथ अपना समय व्यतीत

कर रहा था। सौधर्मके इन्द्रने एक दिन कुबेरसे कहा—अब अच्युतेन्द्र की आयु केवल ६ मास बाकी रह गयी है। अब ये इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सिद्धार्थ महाराज की रानी त्रिशलाके गर्भसे अन्तिम तीर्थङ्कर श्री वर्द्धमानके रूपमें जन्म ग्रहण करेंगे। अतएव इस नगरमें जाकर तुम्हें पूर्वसे ही रत्नों की वर्षा आरम्भ कर देनी चाहिये। साथ ही, शेष आश्चर्योंको भी पर-हितके लिये सम्पन्न करनी चाहिये। इन्द्रकी ऐसी आज्ञा प्राप्त कर यक्षाधिपति कुबेर तत्काल ही मध्यलोकमें आ गया। उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ महाराज सिद्धार्थके राज-महलमें रत्नोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। महलमें पड़ती हुई रत्नोंको धारा ऐसी जान पड़ने लगी कि, ऐरावत हाथी की सूंड़से ही धारा पड़ रही हो। उस समय रत्न-सुवर्ण-मयी वर्षा आकाश से पड़ती हुई ऐसी प्रतीत होती थी, मानो प्रकाश-रूपी माला माता-पिताकी सेवा करने ही आ रही हों।

गर्भाधानके ६ मास पूर्व से ही राज-महल कल्पवृक्ष के पुष्प, सुगन्धित जल, सुवर्ण और रत्नों की ढेरसे जगमगा उठा। रत्न-किरणों की जगमगाहट से वह महल सूर्यादि ग्रहचक्र के समान प्रकाशित होने लगा। उस समय सारे नगरमें इसी बात की चर्चा होने लगी। कितने ही भव्य लोगोंने कहा—देखो, यह तीन जगतके गुरु की ही अपूर्व महिमा है कि, आज रत्नों की वर्षासे कुबेर राज-महल को परिपूर्ण कर रहा है। उनकी ऐसी बातें सुन कर और लोगोंने भी कहना आरम्भ किया—इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं कि राजाके उत्पन्न होनेवाले पुत्र अर्हन्त की सेवाके लिये ही देवेन्द्रने भक्तिवश ऐसा किया है। उनकी ऐसी बातें सुन कर अन्य लोगोंने भी कहा—यह सब धर्मका ही प्रभाव है। उसीके फलस्वरूप पुत्र अर्हन्तके जन्म की प्रसन्नतामें रत्नों की अविराम वर्षा हो रही है। कारण यह है कि, धर्मके प्रभावसे ही तीनों लोकोंमें तीर्थङ्कर जैसे पूज्य-पद-प्राप्त पुत्र का जन्म होता है। वस्तुतः संसार की दुर्लभसे दुर्लभ वस्तुएँ धर्मसे सुलभ हो जाती हैं। किसी ने यह भी कहा कि—यह सर्वथा सत्य है कि धर्मके अभावमें पुत्रादि इष्ट वस्तुओं को प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। अतएव सुखकी प्राप्ति करनेवाले लोगों को प्रयत्नपूर्वक अहिंसा-स्वरूप दया-लक्षण-रूप धर्म का सर्वदा पालन करते रहना

चाहिये। यह धर्म सर्वथा निर्दोष अणुव्रत और महाव्रत के भेद से दो प्रकार का है।

एक दिन की घटना है—महारानी त्रिशला रात्रि को कोमल शय्या पर निद्रित थीं। पुण्योदयके कारण रात्रिके पिछले पहरमें उन्हें सोलह स्वप्न दीखे, जो सर्वथा कल्याणकारक और सौभाग्यसूचक हैं। सोलह स्वप्नोंमें सर्व प्रथम उन्होंने मदोन्मत्त हाथीको देखा। बादमें चन्द्रमाके सदृश शुभ कान्तिवाला ऊँचे कन्धेवाला बैल गम्भीर शब्द करता हुआ दिखाई दिया। तीसरा अपूर्वकान्ति वृहद् शरीर, लाल कन्धेवाला सिंह था। चौथे स्वप्नमें कमल-रूपी सिंहासन पर विराजमान लक्ष्मीदेवी को उन्होंने देव-हस्तियों द्वारा स्नान करती हुई देखा। पांचवां, दो सुगन्धित मालायें थीं। छट्ठे में, ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमा को देखा, जिससे सारा संसार आलोकित हो रहा था।

सातवें स्वप्नमें देवीने अन्धकार विनाश करनेवाले सूर्यको उदयाचल पर्वतसे निकलते हुए देखा। आठवेंमें कमलके पत्तोंसे आच्छादित मुखवाले सोने के दो कलश देखे। नवेंमें तालाब में क्रीड़ा करती हुई मछलियां देखीं। वह तालाब खिली हुई कुमुदिनी और कमलिनी से शोभायमान हो रहा था। दशवें स्वप्नमें उन्होंने एक भरपूर तालाब देखा, जिसमें कमल पुष्पोंकी पीली रज तैर रही थी। ग्यारहवेंमें, गम्भीर गर्जन करता हुआ चञ्चल तरंगों से युक्त समुद्र दिखलाई दिया। बारहवें स्वप्न में उन्होंने देदीप्यमान मणि से युक्त ऊँचा सिंहासन देखा। तेरहवां स्वप्न बहुमूल्य रत्नों से प्रकाशित स्वर्ग का विमान था। चौदहवें स्वप्नमें पृथ्वी को भेद कर ऊपर की ओर आता हुआ फणीन्द्र (भवनवासी देव) का ऊँचा भवन दिखाई दिया। पन्द्रहवें स्वप्नमें उन्होंने रत्नों की विशाल राशि देखी, जिसकी किरणों से आकाश तक प्रकाशित हो रहा था। सोलहवें स्वप्न में माता ने निर्धूम अग्नि देखी।

उपरोक्त सोलह स्वप्नोंको देखनेके पश्चात् त्रिशला महारानीने पुत्रके आगमन-सूचक ऊँचे शरीरवाला उत्तम हाथी को मुख-कमल में प्रवेश करते हुए देखा। माता के स्वप्न देखने के थोड़ी देर बाद ही प्रातःकाल हुआ। महारानीको जगानेके लिये राज-महलमें सुमधुर बाजे बजने लगे। बन्दी-जनोंने कहना

आरम्भ किया—माता अब जगने का समय हो गया है। अतएव आपको अपनी शैय्या छोड़ कर अपने योग्य शुभ-कार्यों को आरम्भ कर देना चाहिये, जिससे कल्याणकारण वस्तुयें आपको बड़ी सरलता से प्राप्त हों।

प्रातःकालके समय समभाव रखनेवाले कोई श्रावक तो सामायिक करते हैं, जिससे कर्म-रूपी वन जल कर राख हो जाते हैं। कितने ही भव्य जन शैय्यासे उठते ही लक्ष्मीके सुखको प्रदान करनेवाले अर्हन्तादि पञ्च परमेष्ठी के नमस्कार मन्त्र का पाठ आरम्भ करते हैं। दूसरे महा बुद्धिमान लोग तत्वों का स्वरूप जान कर मन को रोक कर कर्मनाशके लिये सुख का समुद्र धर्म का ध्यान करते हैं। कोई मोक्ष प्राप्तिके उद्देश्यसे शरीरसे ममता को त्याग कर व्युत्सर्ग तप को धारण करते हैं। यह तप समग्र कर्मोंका नाशक और मोक्षका सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस प्रकार शुभ भावोंसे युक्त सज्जनगण प्रभातकाल में धर्म-ध्यान में संलग्न हो जाते हैं।

जिस प्रकार जिनदेव-रूपी सूर्य के उदित होने पर मिथ्या तम प्रभारहित हो जाते हैं, उसी प्रकार सूर्यके उदय होने पर तारागणोंके साथ चन्द्रमा प्रभाहीन हो गया। जिस तरह अर्हंत-रूपी सूर्योदयसे भेषधारी-रूपी चोर भाग जाते हैं, ठीक इसी प्रकार आजके सूर्योदयसे चोर यत्र-तत्र भाग गये। जिस तरह जिनवाणी के प्रकाश से अज्ञान-रूपी अन्धकार का विनाश होता है, उसी तरह सूर्य ने अपनी किरणों से विश्व के तिमिर का नाश कर दिया।

वन्दी-जनों का मङ्गल गान जारी था। वे कहते जाते थे—माता! जिस प्रकार शुद्ध ज्ञान-रूपी किरणोंसे तीर्थनाथ भगवान श्रेष्ठ-मार्ग और पदार्थों का स्वरूप बताते हैं, उसी प्रकार यह सूर्य अपनी किरणोंसे सब पदार्थों को प्रकाशमान कर रहा है। जैसे अर्हन्तके वचन-रूपी किरणोंसे भव्य जीवों के मन-रूपी कमल विकसित हो जाते हैं, वैसे ही सूर्यकी किरणें कमलोंको प्रफुल्लित कर रहीं हैं। अतएव हे देवी! अब प्रातःकाल हो गया, जो सब प्रकारसे सुख प्रदान करनेवाला है। धर्म-ध्यानके लिये इससे

उत्तम दूसरा समय नहीं होगा। तुम शीघ्र ही शैय्याका परित्याग कर नित्य कर्म करो। तुम्हें सामायिक, स्तवन आदिसे कल्याणकारिणी सिद्धियां प्राप्त करनी चाहिये।

कुछ समय तक उसी प्रकार बाजोंके शब्द और बन्दी-जनों द्वारा मङ्गल गान होते रहे। महारानी त्रिशला एकाएक जाग उठीं। उन्हें प्रातःकालके देखे हुए स्वप्नोंसे महान प्रसन्नता हुई। शैय्या त्याग कर उन्होंने मोक्ष प्राप्तिके उद्देश्यसे स्तवन, सामायिक आदि उत्तम नित्य-कर्म आरम्भ किया। इस प्रकार की नित्य क्रिया सर्वथा कल्याणकारिणी है और सब प्रकारसे मङ्गल करनेवाली है।

पश्चात् महारानी ने स्नान समाप्त कर अपना श्रृङ्गार किया। वे आभूषणों से सुसज्जित हो सेवकों को साथ लेकर महाराज की सभामें गयीं। महाराज अपनी प्राणप्रियाको अपनी ओर आती हुई देख कर बड़े प्रसन्न हुए। बैठनेके लिये उन्होंने रानीको अपना आधा आसन समर्पित कर दिया। महारानी प्रसन्नचित्त हो उक्त आसन पर बैठ गयीं। उन्होंने बड़े मधुर शब्दों में महाराज से निवेदन किया—देव! आज रात्रिके तीसरे पहर में मैंने अत्यन्त आश्चर्यजनक स्वप्न देखे हैं। मेरी अभिलाषा है कि, हाथी इत्यादि सोलह स्वप्नों का फल मुझे अलग-अलग आप सुनायें।

महारानीके मुखसे स्वप्न की बातें सुन कर मति आदि तीनों ज्ञान के धारक महाराज सिद्धार्थ ने कहा—सुन्दरि! मैं इन स्वप्नों के शुभ फलों का शीघ्र ही वर्णन करूँगा। तुम सावधान होकर श्रवण करो। महाराज ने कहना आरम्भ किया—कान्ते! हाथी देखने का फल हुआ कि तेरा पुत्र तीर्थङ्कर होगा और बैल देखने से, फल यह हुआ कि वह धर्मचक्र का सञ्चालक होगा। सिंह दर्शनसे वह पुत्र कर्म-रूपी हाथियों को विनष्ट करनेवाला, अनन्त बलवान होगा और लक्ष्मी का अभिषेक देखने का फल है कि सुमेरु पर्वत पर इन्द्रादि देवों द्वारा इस बालक का स्नान कराया जायगा।

स्वप्न में मालाओं के देखने से सुगन्धित शरीरवाला और श्रेष्ठ ज्ञानी होगा तथा पूर्ण चन्द्रमा के दर्शनसे वह पुत्र धर्म-रूपी अमृत-वर्षणसे भव्य-जीवोंको प्रसन्न करनेवाला होगा। सूर्यके देखनेसे वह

अज्ञान-रूपी अन्धकार का विनाशक तथा उन्हीं के समान कान्तिवाला होगा। जलसे परिपूर्ण घड़ों के देखने का फल यह है कि वह अनेक निधियों का स्वामी तथा ज्ञान-ध्यान-रूपी अमृत का घट होगा। मछली की जोड़ी देखने से सबके लिये कल्याणकारी तथा स्वयं महान सुखी होगा। सरोवर देखने से शुभ लक्षण तथा व्यंजनोंसे सुशोभित शरीरधारी होगा। समुद्र के देखने से नौ केवल-लब्धियोंवाला केवलज्ञानी होगा तथा सिंहासन देखने से महाराज-पद्-वाच्य जगतका स्वामी होगा। स्वर्ग का विमान देखने का फल यह हुआ कि, वह पुत्र स्वर्ग से आकर अवतार धारण करेगा और नागेन्द्र भवन के अवलोकन से अवधिज्ञान-रूपी नेत्र को धारण करनेवाला होगा। रत्नोंके ढेर देखने से वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि रत्नों की खानि होगा और निर्धूम-अग्नि के दर्शन से वह कर्म-रूपी ईंधन को भस्म करनेवाला होगा। अन्तमें गजेन्द्रके दर्शनका फल यह हुआ कि, वह अन्तिम तीर्थङ्कर स्वर्ग से आकर तुम्हारे निर्मल पवित्र गर्भ में प्रवेश करेगा।

महाराजके मुख-कमलसे सोलहों स्वप्नों का फल सुन कर पतिव्रता महारानी का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। उन्हें ऐसा लगा कि जैसे उन्हें पुत्र की प्राप्ति ही हो गयी है। वे बड़ी प्रसन्न हुईं। उसी समय सौधर्म इन्द्रका आदेश पाकर पद्म आदि सरोवरोंमें निवास करनेवाली श्री, ह्री आदि छः देवियां राज-महलमें आ गयीं। उन्होंने तीर्थङ्करके गर्भाधानके लिये स्वर्गसे लाई हुई पवित्र वस्तुओंसे माताके गर्भ का संशोधन किया, जिससे उन्हें पुण्य की प्राप्ति हो। पुनः वे अपने-अपने शुभ गुणों को माता में स्थापित कर उनकी सेवा में संलग्न हो गयीं।

श्रीदेवीने शोभा दी, ह्री देवीने लज्जा, धृति देवीने धैर्य, कृति देवी ने स्तुति, बुद्धि देवी ने श्रेष्ठ बुद्धि, तथा लक्ष्मी देवीने भाग्य प्रदान किये। वे जिन-माता बड़ी गुणवती हुईं। यों तो महारानी पूर्व से ही स्वभावसे पवित्र थीं, पर जब देवियोंने शुद्ध वस्तुओंसे उन्हें शुद्ध की, तब तो वे मानो स्फटिक मणिसे ही बनाई गयी हों, ऐसी शोभायमान प्रतीत होने लगी। इसके पश्चात् आषाढ़ मास के शुक्ल

पक्ष की शुद्ध तिथि षष्ठी को, आषाढ़ नक्षत्र में और शुभ लग्न में वह देव अच्युतेन्द्र स्वर्ग से चय कर माताके शुद्ध गर्भमें आया। महावीर प्रभुके गर्भमें आते ही स्वर्गके कल्पवासी देवोंके विमानों में घण्टे की ध्वनि होने लगी और इन्द्र का आसन कांप उठा।

ज्योतिषी देवोंके यहां स्वयं सिंहनाद होने लगा। भवनवासी देवोंके यहां शंख की महान ध्वनि हुई। साथ ही व्यन्तर देवोंके महलोंमें भेरी की विकट आवाज हुई। केवल यही नहीं और भी आश्चर्य-जनक घटनायें घटीं। उक्त आश्चर्य-जनक घटनाओं को घटते देख कर चारों जातिके देवोंको यह ज्ञात हो गया कि, महावीर प्रभुका गर्भावतरण हो गया। पश्चात् वे स्वर्गपति भगवान का गर्भ-कल्याणक उत्सव मनानेके उद्देश्यसे उस नगरमें पधारे। उस समय देवोंके समूह को देखते ही बनता था। वे सर्वोत्तम सम्पदाओंसे सुशोभित थे, अपनी-अपनी सवारियों पर आरूढ़ थे, उत्तम धर्मको पालन करनेवाले, उद्यमी थे। अपने अङ्गके आभूषणों और तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले थे। उन्होंने ध्वजा, छत्र, विमानादिकोंसे आकाशको ढंक दिया। वे देव अपनी देवियोंके साथ 'जय-जय' शब्द कर रहे थे।

उस समय नगर का वातावरण देखने लायक ही था। विमानों, अप्सराओं और देवों की सेनाओं से घिरा हुआ वह नगर स्वर्ग जैसा सर्वोत्तम प्रतीत होने लगा। देवोंके साथ इन्द्रने भगवानके माता-पिता को सिंहासन पर बिठा कर सोने के घड़ों से स्नान कराया तथा उन्हें दिव्य आभूषण तथा वस्त्र पहनाये। माताके गर्भ-स्थित भगवान को सबोंने तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार किया।

इस प्रकार सौधर्म इन्द्रने भगवान का गर्भ-कल्याणक सम्पन्न कर जिन-माता की सेवामें देवियों को रख देवोंके साथ पुण्य उपार्जन करता हुआ, बड़ी प्रसन्नताके साथ पुनः स्वर्ग को लौटा।

स्मरण रहे कि श्रेष्ठ-धर्मके पालन करने से अच्युतेन्द्र का देव, सुखके समस्त साधनों का उपभोग कर, तीर्थङ्कर पद को प्राप्त किया। ऐसा जान कर, हे भव्य पुरुषो! यदि तुम सुख प्राप्त करना चाहते हो तो, वीतराग भगवानके आदेशके अनुसार श्रेष्ठ-धर्म का विधिवत पालन करो।

अष्टम प्रकरण

भोक्ता कल्याणक प्रभु, दाता वैभव सर्व।
त्राता गति-संसार के, करें कर्म सब खर्व ॥

जो गर्भादिक पञ्च कल्याणकोंके भोक्ता हैं, जो समग्र विश्व को वैभव प्रदान करनेवाले हैं, जो सांसारिक चारों गतियोंसे प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, वे भगवान महावीर मेरे समस्त कर्मोंको नष्ट करें।

स्वर्गसे आई हुई देवियोंमें से कोई तो जिन-माताके समक्ष मङ्गल द्रव्य रखती थीं, कई देवियोंने माता की शैय्याका भार अपने ऊपर लिया, किसीने दिव्य आभूषण पहनाने का भार लिया तथा किसीने माला तथा रत्नोंके गहने देने का। कई देवियां माता की अङ्ग-रक्षाके लिये नङ्गी तलवारोंसे सज्जित हो पहरा देती थीं और उनके लिये भोग्य सामग्रियों को एकत्रित करने में संलग्न थीं। कई एक देवियां पुष्प-रजसे आच्छादित राज्य-प्रांगण की सफाई में लगी थीं और चन्दन-जलका छिड़काव करती थीं।

उक्त देवियोंने रत्नोंके चूर्ण से स्वस्तिक आदि की रचना की और महल को कल्पवृक्ष के पुष्पों से सजाया। किसीने महलोंकी ऊँची चोटियों पर रत्नोंके दीपक जलाये, जो अन्धकार को नष्ट करनेवाले थे। वस्त्र पहनाना, आसन बिछाना आदि समस्त कार्य देवियां ही किया करती थीं। माताकी वन-क्रीड़ा के समय मिष्ट गीत, प्रिय नृत्य और धार्मिक कथायें कह-कह कर वे माताको सुख पहुँचाया करतीं थीं। इस प्रकार जिन-माता की सेवा देवियों द्वारा होती रही और उनकी शोभा अनुपम थी।

जब नवम मास निकट आया तो गर्भवती माता की बुद्धि अति प्रखर होती गई। उन्हें प्रसन्न रखने के उद्देश्यसे देवियां तरह-तरहके प्रहसन किया करतीं और मनोहर कवितायें सुनाया करतीं थीं। देवियां कुछ गूढ़ अर्थपूर्ण पहेलियां माता से पूछा करती थीं और माता उसका समुचित उत्तर दे दिया करती थीं। उदाहरण के रूप में निम्न पहेली और उसका उत्तर मनन करने योग्य है :—

"विरक्ता नित्य कामिन्या कामुकोऽकामुको महान् ।
सस्पृहो निःस्पृहो लोके परात्मान्यश्च यः स कः ॥ १ ॥"

अर्थात्—जो वैरागी होने पर भी सर्वदा कामिनी की इच्छा रखता है और निस्पृही होने पर भी इच्छा किया करता है, वह विलक्षण पुरुष इस संसारमें कौन है ? यह तो हुई पहेली। माताने पहेली का उत्तर श्लोकमें ही दिया। माताका उत्तर था—'परमात्मा'। कारण, 'परमात्मा' का एक अर्थ तो विलक्षण पुरुष होता है और दूसरा अर्थ परमात्मा भी होता है। परमात्मा नित्य-कामिनी अर्थात् अविनाशी मोक्ष-रूपी स्त्रीमें अनुरागी है और उसीकी इच्छा रखनेवाला होता है। दूसरी एक पहेली और सुनिये :—

"दृश्योऽदृश्यऽस्त्रितचिद्भूषः प्रकृत्या निर्मलोऽव्ययः ।
हन्ता देह विधेर्देवो नाऽयं क्व वर्ततेऽद्य सः ॥ २ ॥"

अर्थात् जो अदृश्य है फिर भी देखने योग्य है; स्वभावसे निर्मल होने पर भी देह की रचना का नाशक है, पर महादेव नहीं हैं; ऐसा वह कौन है ? इस श्लोक का माता ने 'देवोना' शब्द से उत्तर दिया। देवोना का अर्थ है कि देव-रूपी मनुष्य श्री अर्हन्त देव हैं।

इस प्रकार उन देवियोंने प्रश्नोत्तरके रूप में माता से अनेक पहेलियां पूछीं। वे भिन्न प्रकार की हैं—हे सुन्दरी ! असंख्यात मनुष्य और देवों द्वारा पूज्य तीनों जगतका गुरु तेरा पुत्र अनेक उत्तम गुणों से युक्त तथा विजयी हो। (इस श्लोक में ओंठ से बोलनेवाला अक्षर एक भी नहीं है, अतः यह 'नीरोष्ठज' है।) जिसने दूसरी स्त्रियोंसे प्रेम करना छोड़ दिया है, पर फिर भी अविनाशी मोक्ष-सुखमें अनुरागी है, ऐसा गुणोंका समुद्र तेरा पुत्र हमारी रक्षा करे। (इस श्लोकमें भी 'नीरोष्ठज' अक्षर हैं।) हे जगत् का कल्याण करनेवाली, तीन लोकके स्वामीको गर्भमें धारण करनेवाली, हरिहरादिके मन की रक्षा कर। (इस श्लोक में 'अव' क्रिया छिपी हुई होने से 'क्रियागुप्त' है।)

जगत्के कल्याणके लिये अपने गर्भमें तीर्थङ्कर को धारण करनेवाली हे माता ! धर्म-तीर्थ स्थापित

करनेवाले की उत्पत्ति में देव, विद्याधर, भूमिगोचरी जीवों का तीर्थ-स्थान बन। (इसमें 'अट' क्रिया गुप्त है) हे देवी महारानी! इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाला कौन है? माता का उत्तर—जो धर्म-तीर्थका प्रवर्तक है, वे ही श्री अर्हंतदेव तीन जगत्के कल्याण करनेवाले हैं। देवियों का प्रश्न—गुरुओं में सबसे महान कौन है? उत्तर—जो तीन जगत् का गुरु और सब अतिशयों से तथा दिव्य अनन्त गुणों से विराजमान ऐसे श्री जिनेन्द्रदेव ही महान गुरु हैं।

प्रश्न—इस जगत् में किसके वचन श्रेष्ठ और प्रमाणिक हैं। उत्तर—जो सबका जाननेवाला, दुनियाका हित करनेवाला, अठारह दोष-रहित और वीतरागी है, ऐसे श्री अर्हन्त भगवानके वचन ही श्रेष्ठ और मानने योग्य हैं। इसके सिवा दूसरे मिथ्या-मतियोंके नहीं। प्रश्न—जन्म-मरण-रूपी विषको दूर करनेवाला अमृतके समान क्या पान करना चाहिये? उत्तर—जिनेन्द्रके मुख-कमलसे निकला हुआ 'ज्ञानामृत' पीना चाहिये—दूसरे मिथ्या ज्ञानियोंके विष-रूप वचन नहीं मानने चाहिये। प्रश्न—इस लोक में बुद्धिमानोंको किसका ध्यान करना चाहिये? उत्तर—पञ्च परमेष्ठी का, जैन-शास्त्र का, आत्म-तत्वका धर्म-शुक्ल-रूपी ध्यान करना चाहिये, दूसरा आर्त-रौद्र-रूप खोटा ध्यान भी नहीं करना चाहिये।

प्रश्न—शीघ्र कौन-सा काम करना चाहिये? उत्तर—जिससे संसार के भोगों का नाश हो, ऐसे अनन्त ज्ञान-चारित्रका पालन करना चाहिये, मिथ्यात्वादिकों का नहीं। प्रश्न—इस संसारमें सज्जनोंके साथमें जानेवाला कौन है? उत्तर—दयामय धर्म ही सहायता करनेवाल बन्धु है, जो सब दुःखों से रक्षा करनेवाला है। इसके अतिरिक्त और कोई सहगामी नहीं है। प्रश्न—धर्मके क्या-क्या लक्षण हैं, व कार्य क्या हैं? उत्तर—बारह तप, रत्नत्रय, महाव्रत, अणुव्रत, शील और उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण—ये सब धर्मके कार्य और लक्षण हैं।

प्रश्न—इस लोक में धर्म का फल क्या है? उत्तर—तीन लोक के स्वामियों की इन्द्र-धरणेन्द्र-चक्रवर्ती-पद-रूप, सम्पदायें, श्री जिनेन्द्र का अनन्त सुख, ये सब धर्म के ही उत्तम फल हैं। प्रश्न—

धर्मात्माओंके चिह्न क्या हैं ? उत्तर—शान्त स्वभाव, अभिमानका न होना और रात-दिन शुद्ध आचरणों का पालन—ये ही धर्मात्माओंकी पहचान है। प्रश्न—पापके चिह्न क्या-क्या हैं ? उत्तर—मिथ्यात्वादि, क्रोधादि कषाय, खोटी संगति और छः तरहके अनायतन—ये पापके चिह्न हैं।

प्रश्न—पापका फल क्या है ? उत्तर—जो अपने को अप्रिय है, दुःखका कारण है, दुर्गति करनेवाला और रोग-क्लेशादि देनेवाला है—ऐसे सभी निन्दनीय कार्य पाप के फल हैं। प्रश्न—पापी जीवों की पहचान क्या है ? उत्तर—बहुत क्रोध आदि कषायोंका होना, दूसरोंकी निन्दा, अपनी प्रशंसा और रौद्रादि खोटे ध्यान का होना—ये सब पापियोंके चिह्न हैं। प्रश्न—असली लोभी कौन है ? उत्तर—बुद्धिमान, मोक्षका चाहनेवाला, भव्यजीव, निर्मल आचरणोंसे तथा कठिन तपोंसे एक धर्मका सेवन करनेवाला ही असली लोभी है। प्रश्न—इस लोक में विचारशील कौन है ? जो मनमें निर्दोष देव-शास्त्र-गुरु का और उत्तम धर्म का विचार करता है, दूसरेका नहीं। प्रश्न—धर्मात्मा कौन है ? उत्तर—जो श्रेष्ठ उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण युक्त धर्म का पालन करता है। जिनेन्द्रदेव की आज्ञा का पालन करनेवाला ही बुद्धिमान, ज्ञानी और व्रती है—वही धर्मात्मा है, दूसरा कोई नहीं। प्रश्न—परलोक जाते समय रास्ते का भोजन क्या है ? उत्तर—जो दान, पूजा, उपवास, व्रत, शील, संयमादिसे उपार्जन किया गया निर्मल पुण्य है, वही परलोक के रास्ते का उत्तम भोजन है। प्रश्न—इस लोक में किसका जन्म सफल है ? उत्तर—जिसने मोक्ष-लक्ष्मीके सुखको देनेवाला उत्तम भेद-विज्ञान पा लिया, उसीका जन्म सफल है—दूसरे का नहीं।

प्रश्न—संसारमें सुखी कौन है ? उत्तर—जो सब परिग्रह की उपाधियोंसे रहित और ध्यान-रूपी अमृतका पान करनेवाला वनमें रहता है अर्थात् योगी है, वही सुखी है, अन्य कोई नहीं। प्रश्न—इस संसारमें चिन्ता किस वस्तु की करनी चाहिये ? उत्तर—कर्म-रूपी शत्रुओंके नाश करने की और मोक्ष-लक्ष्मी पानेकी चिन्ता करनी चाहिये—दूसरे इन्द्रियादिक विषय-सुखों की नहीं। प्रश्न—महान उद्योग किस कार्यमें करना चाहिये ? उत्तर—मोक्ष देनेवाले रत्नत्रय, तप, शुभ योग सुज्ञानादिकोंके पालने में

महान यत्न करना चाहिये। धन एकत्रित करने में नहीं, कारण धन तो धर्म से प्राप्त होगा ही।

प्रश्न—मनुष्यों का परम मित्र कौन है? उत्तर—जो तप, दान, व्रतादि-रूप धर्म को जबरदस्ती समझा कर पालन करावे और पाप कर्मों को छुड़ावे। प्रश्न—इस संसार में जीवों का शत्रु कौन है? उत्तर—जो हित करनेवाले तप, दीक्षा, व्रतादिकोंको नहीं पालन करने दे, वह दुर्बुद्धि अपना और दूसरे का—दोनोंका शत्रु है। प्रश्न—प्रशंसा करने योग्य क्या है? उत्तर—थोड़ा धन होने पर भी सुपात्र को दान देना, निर्बल शरीर होने पर भी निष्पाप तप करना, यही प्रशंसनीय है। प्रश्न—माता! तुम्हारे समान महारानी कौन है? उत्तर—जो धर्मके प्रवर्तक, जगतके गुरु, ऐसे तीर्थङ्कर देवाधिदेवको उत्पन्न करे, वही मेरे समान है—दूसरी कोई नहीं। प्रश्न—पण्डिताई क्या है? उत्तर—शास्त्रों को जान कर खोटा आचरण, खोटा अभिमान जरा भी नहीं करना, और दूसरी भी पाप की क्रियायें नहीं करना, यही पण्डिताई है। प्रश्न—मूर्खता किसे कहते हैं? उत्तर—ज्ञानके हितका कारण, निर्दोष तप, धर्मकी क्रिया को जान कर आचरण नहीं करना। प्रश्न—बड़े भारी चोर कौन हैं? उत्तर—जो मनुष्योंके धर्म-रत्न को चुरानेवाले, पापके कर्ता और अनर्थ करनेवाले ऐसे पांच इन्द्रिय-रूपी चोर हैं।

प्रश्न—इस संसार में शूर-वीर कौन हैं? उत्तर—जो धैर्य-रूपी तलवारसे परिषह-रूपी महायोद्धाओं को, कषाय-रूपी शत्रुओंको तथा काम, मोह आदि शत्रुओंको जीतनेवाले हों। प्रश्न—देव कौन हैं? उत्तर जो—सबका जाननेवाला, क्षुधादि अठारह दोषोंसे रहित, अनन्त गुणोंका समुद्र, धर्मका प्रवर्तक हो, ऐसे अर्हन्त प्रभु ही देव हैं। प्रश्न—महान गुरु कौन हैं? उत्तर—जो इस संसार में वाह्य-आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे रहित हों। जगतके भव्य-जीवों के हित-साधन में उद्यमी हो और स्वयं भी मोक्ष का इच्छित हो, वही महान गुरु है। दूसरा मिथ्यामती धर्म-गुरु नहीं हो सकता।

इस प्रकार देवियों द्वारा किये प्रश्नों का उत्तर जिन-माताने गर्भस्थ तीर्थंकर के प्रभाव से दिया। प्रथम तो महारानी की बुद्धि स्वभावसे ही निर्मल थी। पुनः अपने उदरमें तीन ज्ञानके धारक प्रकाशमान

तीर्थङ्कर देव को धारण करने से वे और भी स्वच्छ हो गयी थीं। रानीके गर्भमें स्थित तीर्थंकर बालक को कोई कष्ट नहीं हुआ, क्योंकि सीपमें रहनेवाली जल-बिन्दु में कभी विकार उत्पन्न नहीं हो सकता है। उस देवीके उदर की त्रिबली भी भङ्ग नहीं हुई। उदर पूर्व जैसा ही रहा, पर गर्भ की क्रमशः वृद्धि होती गयी। यह सब प्रभु का ही प्रभाव था!

गर्भमें स्थित प्रभुके प्रभाव से महारानी की मुखाकृति बड़ी ही शोभायमान हो गयी। उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि वे असंख्य रत्नोंको धारण करनेवाली पृथ्वी ही हों। अप्सराओं के साथ इन्द्रके द्वारा भेजी हुई इन्द्राणी ही जिनकी सेवा कर रही हों, उनकी कान्ति और उनके मुखका वर्णन नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार लगातार नौ महीने तक महान उत्सव सम्पन्न होते रहे। देखते-देखते नवमा महीना पूर्ण हो गया। शुभ चैत्र मास की शुक्ला त्रयोदशी के दिन यमणि नाम योग में, शुभ लग्नमें त्रिसला महादेवीने अलौकिक पुत्रको जन्म दिया। वह पुत्र अपने उज्ज्वल शरीरकी कान्ति से अन्धकारको विनष्ट करनेवाला, जगतका हित करनेवाला, मति, श्रुति, अवधि—तीनों ज्ञानको धारण करनेवाला, महा दैदीप्यमान और धर्म-तीर्थ प्रवर्तक तीर्थंकर हुआ।

उनके जन्मके साथ-साथ सभी दिशायें निर्मल हो गयीं। आकाश में निर्मल वायु बहने लगी। स्वर्गसे कल्पवृक्षोंके पुष्पों की वर्षा हुई और चारों जातियोंके देवोंके आसन कम्पायमान हो गये। स्वर्ग में बिना बजाये ही बाजों की ध्वनि होने लगी, मानो वे भी भगवान का जन्मोत्सव मना रहे हों। इसके अतिरिक्त अन्य तीनों जातियों के देवों के महलों में शंख-भेरी आदि के शब्द होने लगे।

सौधर्म स्वर्गके इन्द्र, भगवानके जन्मका समाचार पाकर, उनका जन्म-कल्याणक मनाने का विचार करने लगा। उसी समय इन्द्रकी आज्ञासे देवों की सेनाएँ 'जय-जयकार' करती-हुई स्वर्गसे उठी। उनकी विशाल सेनायें समुद्रसे उठती हुई प्रचण्ड लहरोंके समान प्रतीत होती थीं। हाथी, घोड़े, रथ, गन्धर्व, नर्तकी, पैदल, बैल आदिसे युक्त सात प्रकारकी देवोंकी सेनायें निकलीं। पश्चात् सौधर्म स्वर्गका पति

इन्द्र इन्द्राणीके सहित ऐरावत हाथी पर सवार होकर चला। उसके चारों ओर देवोंकी सेनायें घिरी हुई थीं।

इन्द्रके पीछे-पीछे बड़ी विभूतियों के साथ सामानिक आदि देव चल रहे थे। उस समय दुन्दुभी आदि बाजोंकी ध्वनि और देवोंकी 'जय-जयकार' से सारा आकाश गूंजने लगा। रास्तेमें कितने ही देव गाते हुए चल रहे थे। कोई नृत्य करता जाता था और कोई प्रसन्नताके मारे दौड़ लगा रहा था। उनके छत्र, चमर और ध्वजाओंसे सारा आकाश-मण्डल आच्छादित हो गया था। वे चारों निकायके देव बड़ी विभूतिके साथ क्रम-क्रमसे कुण्डलपुर पहुँचे। उस समय ऊपर और बीच का भाग देव-देवियोंसे घिर गया था। राज-महल का आंगन इन्द्रादिक देवोंसे बिल्कुल भर गया था।

इन्द्राणीने तत्काल प्रसूती-गृहमें जाकर दिव्य शरीरधारी कुमार और जिन-माता का दर्शन किया। वे बार-बार उन्हें प्रणाम कर जिन-माताके आगे खड़ी होकर उनके गुणोंकी प्रशंसा करने लगीं। इन्द्राणी ने कहा—देवी! तुम तीनों जगतके स्वामीको उत्पन्न करनेके कारण समग्र विश्व की माता हो। और तुम्हीं महादेवी भी हो। महान देव उत्पन्न कर तुमने अपना नाम सार्थक कर लिया है। संसारमें तुम्हारी तुलना की अब कोई स्त्री नहीं है।

इस प्रकार माता की स्तुति कर इन्द्राणीने उन्हें निद्रित कर दिया। जब जिन-माता सो गयीं, तो इन्द्राणी उनके आगे एक माया का बालक बना कर सुला दिया और स्वयं अपने हाथोंसे जिन भगवान को उठा कर उनके शरीर का स्पर्श किया। वे बार-बार उनके मुखका चुम्बन करने लगी। भगवानके शरीरसे निकलती हुई उज्ज्वल ज्योति को देख कर उनके हर्ष का ठिकाना न रहा। पश्चात् वह उस बालक भगवान को लेकर आकाश-मार्ग की ओर चली। वे भगवान आकाशमें ठीक सूर्य की तरह जान पड़ते थे। समस्त दिक्-कुमारियां छत्र, ध्वजा, कलश, चमर, स्वस्तिक आदि आठ मांगलिक पदार्थोंको लेकर इन्द्राणी के आगे-आगे चलीं।

उस समय इन्द्राणी ने जगत् को आनन्द प्रदान करनेवाले जिनदेव को लाकर बड़ी प्रसन्नता से

इन्द्रको दिया। भगवानकी अपूर्व सुन्दरता, उनकी तेजोमय दीप्ति देख कर देवोंका स्वामी इन्द्र उनकी स्तुति करने लगा—हे देव! तुम हमें परम आनन्द प्रदान करने के लिये बाल-चन्द्रमा की भांति लोक को प्रकाश देनेके लिये प्रकट हुए हो। हे ज्ञानी! तुम विश्वके स्वामी इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती के भी स्वामी हो। धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक होने के कारण तुम्ही ब्रह्मा भी हो।

देव! योगीराज तुम्हें ज्ञान-रूपी सूर्य का उदयाचल मानते हैं। तुम भव्य पुरुषों के रक्षक और मोक्ष-रूपी स्त्रीके पति हो। तुम मिथ्या-ज्ञान-रूपी अन्ध-कूपमें पड़े हुए अनेक भव्य-जीवोंको धर्म-रूपी हाथका सहारा देकर उद्धार करनेवाले हो। संसारके सभी विचारशील व्यक्ति तुम्हारी अलौकिक वाणी सुन कर अपने कर्मों को नष्ट कर परम पवित्र मोक्ष प्राप्त करेंगे और अनेक भव्य-जीवों को स्वर्ग की प्राप्ति होगी। आज आपके अभ्युदयसे सन्त पुरुषों को बड़ी प्रसन्नता हुई है। वस्तुतः आपही धर्मकी प्रवृत्ति के कारण हैं।

अतएव हे देव! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं, तुम्हारी सेवा करते हैं, भक्ति प्रकट करते हैं और प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी आज्ञाका पालन करते हैं—दूसरे मिथ्यात्वी देवकी नहीं। इस तरह वह देवोंका पति सौधर्मका इन्द्र भगवानको स्तुति कर उन्हें गोदमें उठा कर सुमेरु पर्वत पर चलनेको उद्यत हुआ। उसने अन्य देवोंको भी सुमेरु पर्वत पर चलनेके लिये आज्ञा दी। उस समय सभी देवोंने 'प्रभुकी जय हो, आनन्द की वृद्धि हो' आदि शब्दोंसे 'जय-जयकार' की। उनकी ध्वनि समस्त दिशाओं में फैली।

इन्द्रके साथ-साथ और देव भी 'जय-जय' शब्द करते हुए आनन्द मनाने लगे। प्रसन्नताके मारे उनका शरीर रोमांचित हो गया। आकाशमें प्रभुके समक्ष अप्सरायें नृत्य करने लगीं। गन्धर्वदेव भी वीणा आदि वाद्योंके साथ गान करने लगे। देवों की दुन्दुभी की आवाजसे सारा आकाश-मण्डल गूंज उठा। किन्नरियां हर्षित हो अपने किन्नरोंके साथ जिनदेव का गुणगान करने लगीं। उस समय सब देव भगवान का दर्शन कर अपने जीवन को सार्थक समझने लगे। वे बड़ी देर तक भगवान का दिव्य

रूप देखते रहे। इन्द्र की गोदमें विराजमान भगवान को ऐशानके इन्द्रने दिव्य छत्र लगाया। सनत् कुमार और माहेन्द्र-स्वर्गके इन्द्र भी चमर डुलाते हुए भगवानकी सेवा करने लगे। जिनेन्द्र भगवानकी ऐसी सम्पदा देख कर अनेक देवोंने उसी समय सम्यक्त्व धारण किया। उन्होंने इन्द्रके वचनों को प्रमाण माना। वे इन्द्रादि ज्योति-चक्रको लांघ कर अपने शरीरके आभूषणों की किरणोंसे आकाश को प्रकाशित करते हुए जा रहे थे।

परस्पर सैकड़ों उत्सव मनाते हुए वे देव बड़ी विभूतिके साथ ऊँचे सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचे। उस सुमेरु पर्वत की ऊँचाई एक हजार कम, लाख योजन की है। पर्वतके आरम्भमें ही भद्रशाल वन है। उस वनमें परकोट और ध्वजाओंसे सुशोभित कल्याणकारक चार जैन-मन्दिर सुशोभित हैं। उस वन से साढ़े बासठ हजार योजन की ऊँचाई पर महा रमणीक 'सौमनस' वन है। जहां पर सभी ऋतुओं में फल देनेवाले एक सौ आठ वृक्ष हैं और जिन-चैत्यालयों की संख्या चार है।

उस सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन की ऊँचाई पर अन्तिम चौथा 'पाण्डुक वन' है। वहां जिन-चैत्यालयोंके ऊँचे-ऊँचे समूह थे। उस वन की सुन्दरता अपूर्व थी। वनके बीचमें एक चूलिका है। वह चालीस योजन ऊँची है। उसी चूलिकाके ऊपर स्वर्ग है। मेरु की ईशान दिशामें सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी, आठ योजन ऊँची एक 'पाण्डुक' नाम की शिला है। वह सिद्ध शिला चन्द्रमाके समान सुशोभित है। छत्र, चमर, स्वस्तिक, दर्पण, कलश, ध्वजा, ठोना, पंखा—ये अष्ट मङ्गल-द्रव्य उस शिला पर रखे हुए थे।

शिलाके मध्य भागमें वैडूर्य मणिके सदृग रङ्गीन एक सिंहासन है। उसकी लम्बाई, ऊँचाई और चौड़ाई आधा योजन प्रमाण है। जिन भगवानके स्नान-जलसे पवित्र हुए रत्नोंके तेजसे वह सिंहासन ऐसा प्रतीत होता था कि, मानो सुमेरु की दूसरी चोटी ही हो। उसके ठीक दक्षिण की ओर सौधर्म का दूसरा सिंहासन है। और उत्तर दिशा की ओर इन्द्रके बैठने का स्थान है। सौधर्म-स्वर्गके इन्द्रने,

देवों के साथ महोत्सव सम्पन्न करते हुए, स्नान कराने के उद्देश्य से भगवान को उसी शिला पर विराजमान किया। देवराजने प्रथम पर्वत-राज की परिक्रमा की।

इस प्रकार देवेन्द्रने पुण्योदय से बड़ी विभूतिके साथ अन्तिम तीर्थङ्कर को शिला पर बिराजमान किया। अतः, भव्य-जन यदि ऐसी सम्पदा और सुख की आकांक्षा रखते हैं, तो उन्हें सोलह कारण भावनाओं से निर्मल पुण्य का उपार्जन करना चाहिये। 'तीर्थंकरादि' सम्पदा प्राप्त कराने में पुण्य ही सहायक होता है। पुण्यसे इस जगतमें पवित्रता की वृद्धि होती है। पुण्यके अतिरिक्त इस जगत में दूसरी कोई वस्तु सुख प्रदान करनेवाली नहीं है। इस पुण्य का मूल कारण व्रत है। प्राणियों को पुण्य के बल से ही अनेक गुणों की प्राप्ति हुआ करती है।

नवम प्रकरण

दृश्य देख अभिषेक का, हर्षित देव समाज।
विविध भांति उत्सव करें, सजि-सजि अनुपम साज॥

जिनेन्द्र भगवान के महान उत्सव को देखने की इच्छा रखनेवाले धार्मिक देव उस पर्वत-राज को घेर कर बैठ गये। दिक्पाल देव अपनी-अपनी मण्डली को साथ लेकर अपनी दिशा की ओर बैठे। उस स्थान पर देवोंने एक ऐसे मण्डप का निर्माण किया था, जिसमें सभी देव सुखपूर्वक बैठ सकते थे। मण्डपमें यत्र-तत्र कल्पवृक्ष की मालायें लटक रही थीं। उन मालाओं पर बैठे हुए भौंरे इस प्रकार गूंज रहे थे, मानो वे प्रभु का गुण-गान ही कर रहे हों।

गन्धर्व देव और किन्नरियोंने जिनदेवके कल्याणक-गुणों को बड़े ही सुमधुर स्वरमें गाना आरम्भ किया। दूसरी देवियां हाव-भावपूर्वक नृत्य करने लगीं। देवोंके तरह-तरह के बाजे बजने आरम्भ हो गये। कुछ देव पुण्यादि की इच्छासे पुष्पों की वर्षा करने लगे। इसके पश्चात् इन्द्रने अभिषेक कराने के

लिये प्रस्ताव कर कलशोंकी रचना की। कलश-निर्माण-मन्त्र जाननेवाले सौधर्म इन्द्रने मोतियों की माला और चन्दनसे युक्त कलशको हाथमें लिया। और सब कल्पवासी देव 'जय-जय' शब्द करते हुए कल्याणक सम्बन्धी कार्य करने लगे। इन्द्राणी देवियां भी कार्य करनेमें संलग्न हो गयीं। उनके हर्ष का पारावार नहीं था। 'स्वयंभू' भगवानका शरीर स्वभावसे ही पवित्र है। उनके रक्त का रङ्ग दूधके सदृश सफेद है। अतएव, उनके लिये क्षीर-समुद्रके जलके अतिरिक्त और कोई जल स्पर्श करना उचित नहीं, ऐसा सोच कर वे देवगण पर्वतसे लेकर समुद्र तक कतारें बांध कर खड़े हो गये। उस समय इन्द्रने, जिनेन्द्र को स्नान कराने के लिये मोतियों के हारसे सुशोभित आठ योजन गहरे और एक योजन मुखवाले सुवर्णमय कलश को पकड़ने के उद्देश्यसे, दिव्य आभूषणोंसे युक्त हजार भुजायें बना लीं। उस समय इन्द्र की शोभा देखने ही लायक थी। एक सहस्र हाथोंसे एक हजार कलशोंको पकड़े हुए इन्द्र ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह 'भाजनांग' जातिका कल्पवृक्ष ही हो। सौधर्म इन्द्रने 'जय-जय' शब्दका गंभीर उच्चारण करते हुए भगवानके मस्तक पर पहली जल-धारा छोड़ी। अन्य देव भी उस समय 'जय हो, हमारी रक्षा करो' आदि जय घोष करने लगे। उनके गंभीर शब्दोंसे पर्वत-राज पर बड़ा कोलाहल मचा। दूसरे देवेन्द्र भी सौधर्मके साथ भगवानके मस्तक पर गङ्गा की तीव्र धाराके सदृश जल-धारा छोड़ने लगे।

वह जल-धारा बड़ी तीव्र गति से भगवानके मस्तक पर पड़ने लगी। वह धारा यदि दूसरे किसी पहाड़ों पर पड़ती तो, उसके खण्ड-खण्ड हो जाते, पर अतुलित बलशाली होने के कारण भगवान के शरीर पर वह पुष्प जैसी कोमल मालूम होने लगी। जल के छींटे आकाश में बहुत ऊँचे उछलते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वे भगवानके शरीर का स्पर्श करनेसे पापोंसे मुक्त होकर उर्ध्व गति को जा रहे हैं। स्नान-जलके कितने ही छींटे मोतियों जैसे मालूम पड़ते थे। स्नान-जल का ऊँचा प्रवाह उस पर्वत-राजके वनोंमें ऐसे बेगसे बढ़ा कि देखनेसे मालूम होने लगा कि, पर्वत-राजको खण्ड-खण्ड कर देगा।

भगवानके स्नान किये हुए जल से डूबी हुई वनस्थली ऐसी दीखने लगी, मानो वह दूसरा क्षीर-

समुद्र ही हो ! महान उत्सवोंसे सम्पन्न, नृत्य-गीतादि से युक्त उस समय का उत्सव देख कर देवों के आनन्द की सीमा न रही। इन्द्रने आत्म-शुद्धिके लिये भगवान को शुद्ध स्नान कराया।

स्नान की जल-धारा भगवान के शरीर का स्पर्श कर अत्यन्त पवित्र हो गयी। पुण्य प्राप्त करनेवाली और संसार की इच्छा-पूर्ति करनेवाली वह जल-धारा हमें और भव्य-जीवों को मोक्ष-लक्ष्मी प्रदान करे। जो जल-धारा पुण्यास्रव-जल-धारा के समान मन-वांछित पदार्थों को प्रदान करनेवाली है, वह समस्त भव्य-जीवों को इच्छित वस्तुयें प्रदान करे।

वह जल-धारा तीक्ष्ण तलवार के सदृश सत्पुरुषोंके विघ्नों का नाश कर देती है। वह दुःख और असह्य वेदनाका नाश करनेवाली है। जो जल-धारा भगवानके शरीरसे लग कर पवित्र हो चुकी है, वह हमारे दुःख-कर्म-रूपी मैल को हटा कर हमें पवित्र करे। इस प्रकार देवों के स्वामी ने भगवान का अभिषेक करके 'भव्यों को शान्ति हो' ऐसा कहा। उस सुगन्धित जल (गन्धोदक) को देवों ने अपनी शुद्धिके लिये मस्तक में लगाया।

अभिषेक का उत्सव सम्पन्न होने के पश्चात् तीर्थङ्कर, इन्द्र और देवताओं द्वारा पूजे गये। उन महावीर भगवान की, दिव्यगन्ध, मोतियोंके अक्षत, कल्पवृक्ष के फूल, अमृत के पिण्ड-रूपी नैवेद्य, रत्नों के दीप, अष्टांग धूप, कल्पवृक्षके फल, अर्घ पुष्पांजलि आदिके साथ पूजा की गयी। इस प्रकार इन्द्र ने बड़ी भक्ति के साथ भगवान की प्रार्थना करते हुए अभिषेक उत्सव सम्पन्न किया। पुनः इन्द्र ने इन्द्राणी और अन्य देवोंके साथ भगवान को नमस्कार किया।

उस समय का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोरम था। आकाशसे सुगन्धित जलके साथ पुष्पों की वर्षा होने लगी। देवोंने मन्द सुगन्ध और ठण्ढी वायु चलाई। वस्तुतः, जिस प्रभुके जन्माभिषेकका सिंहासन सुमेरु पर्वत है, और स्नान करानेवाला इन्द्र है, मेघ के समान दूध से भरे हुए कलश हैं, सब देवियां नृत्य करनेवाली हैं, स्नानके लिये क्षीर-समुद्र है और जिस जगह देव सेवक हैं, भला

ऐसे जन्माभिषेक की महिमा का कोई कैसे वर्णन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं कर सकता।

अभिषेक किये हुए भगवानके सर्वाङ्ग को इन्द्राणीने उज्ज्वल कपड़े से पोंछा। इसके बाद उन्होंने भक्तिपूर्वक सुगन्धित द्रव्योंसे उनका लेपन किया। यद्यपि वे प्रभु तीनों जगत् के तिलक थे, फिर भी भक्तिवश उन्होंने उनके मस्तक पर तिलक लगाया। जगत्के चूड़ामणि भगवानके मस्तक में चूड़ामणि रत्न बांधा गया। यद्यपि भगवानके नेत्र स्वभावसे ही काले थे, फिर भी व्यवहार दिखानेके लिये उनके नेत्रों में इन्द्राणीने अञ्जन लगाया।

भगवानके कानोंमें इन्द्राणी ने रत्नों के कुण्डल पहनाये। प्रभु के कण्ठ में रत्नों का हार, बाहों में बाजूबन्द, हाथोंके पहुँचोंमें कड़े और अंगुलियोंमें अंगूठी पहनाई। कमरमें छोटी घंटियोंवाली मणियों की करधनी पहनाई, जिसके तेजसे सारी दिशायें व्याप्त हो गयीं। प्रभुके पैरोंमें मणिमय गोमुखी कड़े पहनाये गये। इस प्रकार असाधारण दिव्य मण्डनों [गहनों] से कान्ति एवं स्वाभाविक गुणोंसे वे प्रभु ऐसे प्रतीत होने लगे, मानो लक्ष्मी के पुञ्ज ही हों।

भगवान का दिव्य शरीर आभूषणोंसे और भी शोभायमान हो गया। आभूषणोंसे सजे हुए इन्द्र की गोदमें विराजमान महावीर प्रभु को देख कर इन्द्राणी को बड़ा आश्चर्य हुआ। इन्द्र को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। एक नेत्र से देखने से जब इन्द्र की तृप्ति नहीं हुई, तब उन्होंने हजार नेत्र कर लिये। अन्य देव-देवियां भी भगवान की रूप-सुधा का पान कर अत्यन्त हर्षित हुईं।

पश्चात् सौधर्मके इन्द्र प्रभु की स्तुति करने के लिये प्रस्तुत हुए। वे तीर्थंकरके पुण्योदयसे उत्पन्न उनके गुणों की प्रशंसा करने लगे। उन्होंने कहा—देव ! बिना स्नान के ही आपका सर्वाङ्ग पवित्र है, पर मैंने अपने पापों की शान्तिके लिये आज भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराया है। आप तीनों जगत्के आभूषण हैं, पर मैंने अपने सुखों की प्राप्तिके लिये आपको आभूषणों से विभूषित किया है। प्रभो ! तुम्हारी महान सत्ता आज सारे संसार पर अपना प्रभाव विस्तार कर रही है।

देव ! कल्याण की कामना रखनेवाले लोगों का कल्याण तुम्हारे द्वारा ही होगा। तुम मोह के गह्वरमें गिरे हुए व्यक्तियोंके लिये सहारा हो। तुम्हारी अमृतमयी वाणी मोह-शत्रुका विनाश करेगी। तुम धर्म-तीर्थ-रूपी जहाजके द्वारा भव्य-जीवों को संसार-समुद्रसे पार उतारोगे। नाथ, आपकी वचन-रूपी किरणें जीवोंके मिथ्याज्ञान-रूपी अन्धकार का सर्वथा विनाश करेंगी, इसमें सन्देह नहीं। स्वामिन् आप केवल मोक्ष-प्राप्तिके उद्देश्यसे ही नहीं उत्पन्न हुए हैं, आपका उद्देश्य मोक्ष की आकांक्षा रखनेवाले जीवों को मार्ग दिखलाना भी है। आप सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की वर्षा करते हुए सत्पुरुषों को निर्मल बनायेंगे। आपका जन्म-धारण सर्वथा स्तुत्य है।

महाभाग ! मोक्ष-रूपी स्त्री आपमें आसक्त हो रही है। भव्य-जीव तो आपकी प्रतीक्षा करते ही हैं। वे बड़े प्रेम और भक्तिके साथ आपकी चरण-सेवा के लिये सन्नद्ध हैं। वे आपको मोह-रूपी महा-योधाके विजेता, शरण में आये हुए के रक्षक, कर्म-रूपी शत्रुओं के विनाशक और मोक्ष-मार्ग प्रशस्त करनेवाले मानते हैं। प्रभो, वस्तुतः आज हम आपका जन्माभिषेक कर अत्यन्त कृतार्थ हो गये और आपका गुणानुवाद करने से हमारा मन अत्यन्त निर्मल हो गया है।

हे गुणों के अपार सागर ! आपकी स्तुति करने से हमारा जन्म सफल हो गया और आपकी देह-सेवा से हमारा शरीर भी सफल हुआ। जिस प्रकार खान से निकलनेवाले रत्न का संशोधन करने पर उसमें अधिक चमक आने लगती है, ठीक उसी प्रकार आप स्नान आदिसे और भी सुशोभित हो रहे हैं। नाथ ! आप संसारके नाथ हैं और आप बिना किसी कारणके ही लोक-हित-चिन्तक हैं। अतएव परमानन्द प्रदान करनेवाले विभो ! आपको शतशः नमस्कार है। तीनों ज्ञान-रूपी नेत्रोंके धारक आपको बारम्बार नमस्कार है।

धर्म-तीर्थके प्रवर्तक भगवान ! उत्तम गुणोंके सागर और मल, पसीना आदिसे रहित शरीर धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। हे देव ! निर्वाण का मार्ग दिखानेवाले, कर्म-रूपी शत्रुओं के प्रहारक,

पंचेन्द्रियोंके मोह को परास्त करनेवाले, पञ्च-कल्याणकोंके भागी, स्वभावसे निर्मल, स्वर्ग-मोक्ष प्रदान करनेवाले, अत्यन्त महिमासे मण्डित, बिना कारण समस्त संसारी जीवों के हित करनेवाले, मोक्ष-रूपी भार्याके पति, संसार का अन्धकार नष्ट करनेवाले, तीनों जगतके पति और सत्पुरुषों के गुरु, आपको करबद्ध प्रणाम है।

देव ! मैं आपकी स्तुति इसलिये नहीं करता कि मुझे तीनों जगत की सम्पदा प्राप्त हो, बल्कि मुझे ऐसी सम्पदा प्रदान करो; जिससे मोक्ष का मार्ग सुलभ हो। वस्तुतः इस संसारमें आपके सदृश दूसरा कोई दाता नहीं है। इस प्रकार महावीर स्वामी की स्तुति कर सौधर्मके इन्द्रने व्यवहार की प्रसिद्धिके लिये उनके दो नाम रख दिये। कर्म-शत्रु पर विजय प्राप्त करने के कारण 'महावीर' और सद्गुणों की वृद्धि होने से 'वर्द्धमान' नाम रखे। इस प्रकार भगवान का नामकरण कर इन्द्रने देवोंके साथ उनको ऐरावत हाथी पर बिठा कुण्डलपुर की ओर प्रस्थान किया। देवों की सारी मण्डली बड़े उत्सवके साथ कुण्डलपुरमें पहुँची। उस समय सारा नगर देव-देवियोंसे भर गया था। पश्चात् इन्द्रने थोड़ेसे देवों को साथ लेकर राज-भवन में प्रवेश किया। वहां अत्यन्त रमणीक गृहके आंगनमें रत्नोंके सिंहासन पर शिशु-भगवान को विराजमान किया। अपने बन्धु-बांधवोंके साथ महाराज सिद्धार्थ अनुपम गुण-कान्तियुक्त पुत्र को देखने लगे।

इन्द्राणीने जाकर मायामयी निद्रामें लीन महारानी को जगाया। उन्होंने बड़े प्रेमसे आभूषणोंसे युक्त अपूर्व कान्तिवाले पुत्र को देखा। इन्द्राणी सहित इन्द्र को देख कर जगत-पिता की माता को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने समझ लिया कि आज हमारा मनोरथ सिद्ध हो गया। इसके पश्चात् ही सब देवों ने मिल कर माता-पिता को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर उनकी विधिवत पूजा की। इन्द्र ने बड़ी श्रद्धाके साथ माता-पिता की स्तुति की। उन्होंने कहा—तुम दोनों संसारमें धन्य हो, तुम श्रेष्ठ पुण्यवान और सबमें प्रधान हो। तुम विश्वके गुण और विश्वके माता-पिता हो।

तीन जगतके पिता को उत्पन्न करने के कारण आज तुम्हारी मान्यता सारे संसारमें है। तुम्हारी

कीर्ति अक्षुण्य है, कारण सबके उपकार और कल्याण के दोनों भागी हो। आज से तुम्हारा गृह चैत्यालयके सदृश हो गया और गुरुके सम्बन्धसे तुम हमारे पूज्य और मान्य गुरु हो। इस प्रकार इन्द्र ने माता-पिता की स्तुति कर और भगवान को उन्हें सौंप कर सुमेरु की उत्तम कथा सुनाई। वे दोनों ही जन्माभिषेक की बातें सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके आनन्द की सीमा न रही।

इन्द्र की सम्मतिसे उन दोनों माता-पिताने बन्धु वर्गके साथ भगवान का जन्मोत्सव सम्पन्न किया। सर्वप्रथम श्री जैन-मन्दिरमें भगवान की अष्ट द्रव्योंसे पूजा की गयी। इनके पश्चात् ही बन्धुओं और दास-दासियोंको अनेक प्रकारके दान दिये गये तथा बन्दी और दीन अनाथों को योग्यताके अनुसार दान दे उन्हें सन्तुष्ट किया गया। नगरको तोरण और मालाओंसे खूब सजाया गया। बाजे और शंख की गंभीर ध्वनि होने लगी। ऐसे ही नृत्य-गीतादि सैकड़ों उत्सवोंसे वह नगर स्वर्ग जैसा प्रतीत होने लगा।

इस उत्सवसे नगर की प्रजा और कुटुम्बीजनों को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। पुरवासी और नगर-निवासी जनोंको प्रसन्नता प्रकट करते हुए देख कर देवेन्द्रने भी स्वयं प्रसन्नता प्रकट की। उस समय इन्द्रने गुरु की सेवाके लिये देवियोंके साथ त्रिवर्ग फल का साधक 'दिव्य नाटक' सम्पन्न किया। इन्द्र के नृत्य आरम्भ होने पर गन्धर्व देवोंने वाद्य और गान आरम्भ किये। महाराज सिद्धार्थ पुत्र को गोद में लेकर बैठे और अन्य रानियां उनके आस-पास बैठीं। आरम्भमें इन्द्रने जन्माभिषेक सम्बन्धी दृश्य दिखलाया। पुनः जिनेन्द्रके पूर्व-जन्मके अवतारों को नाटक की तरह दिखलाता हुआ और नृत्य करता हुआ इन्द्र कल्पवृक्ष-सा प्रतीत होता था। रङ्गभूमि के चारों ओर नृत्य करता हुआ इन्द्र विमानकी भांति शोभायमान हुआ।

इधर इन्द्र का ताण्डव नृत्य आरम्भ था और उधर देवगण भक्तिवश इन्द्र पर पुष्प-वृष्टि कर रहे थे। नृत्यके साथ अनेकों सुमधुर बाजे बजने आरम्भ हुए। किन्नरी देवियां भगवान का गुणगान करने लगीं। इन्द्र अनेक रसोंसे मिश्रित ताण्डव नृत्य कर रहा था। हजारों भुजाओंवाले इन्द्रके नृत्यसे पृथ्वी

चञ्चल हो उठी। इन्द्र कभी एक रूप और कभी अनेक रूप, कभी स्थूल और कभी सूक्ष्म रूप धारण कर लेता था। क्षण भर में समीप, क्षण भरमें दूर और क्षण भर में ही आकाश में पहुँच जाता था। इस प्रकार इन्द्र का नाटक बड़ा ही मनोरंजक और प्रभावोत्पादक हुआ। साथ-साथ देवांगनाओं के नृत्य तो और भी आकर्षक हुए। वे बड़ी लयके साथ गातीं और हाव-भाव के साथ नृत्य करतीं थीं। उनमें से कोई तो ऐरावत हाथी के ऊपर विराजमान इन्द्र की भुजाओं में से निकलती हुई और पुनः प्रवेश करतीं हुई कल्पवेलीके समान प्रतीत होतीं थीं। अप्सरायें इन्द्र की हस्तांगुलि पर अपनी नाभि रख नृत्य करने लगीं। इन्द्र की प्रत्येक भुजा पर नृत्य करतीं हुई अप्सरायें सबको प्रसन्न करने लगीं।

अप्सरायें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का नृत्य करतीं थीं। इस प्रकार नृत्य में सम्मिलित इन्द्र पक्का जादूगर मालूम होता था। इन्द्र को सारी कलायें उन नर्तकी देवियोंमें बंट गयीं। विक्रिया-ऋद्धिसे नृत्य करता हुआ इन्द्र भगवानके माता-पिता आदि सभी जनों को प्रसन्न करने लगा।

पश्चात् जिनेन्द्र देव की सेवा के लिये देवियों को तथा असुरकुमार देवों को वहां रख कर, इन्द्र, देवोंके साथ बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गमें चले गये। इस प्रकार पुण्यके फलस्वरूप तीर्थंकर स्वामी सम्पूर्ण सम्पदाओंसे पूर्ण हुए। अतएव भव्य-जनों को चाहिये कि वे सर्वदा धर्म का पालन करते रहें।

दशम प्रकरण

धर्म प्रवर्तक वीर प्रभु ! करता तुम्हें प्रणाम।
करो नष्ट मेरे सभी क्रोध मोह मद काम॥

जिनके द्वारा काम-क्रोधादि अन्तरङ्ग शत्रु जीत लिये गये हैं, जो तीनों जगत के हित के चिन्तक और अनन्त गुणोंके समुद्र हैं, उन महावीर स्वामीके पाद-पद्मोंमें शतशः नमस्कार है।

पूर्व अध्यायमें बताया जा चुका है कि, भगवान की सेवाके लिये सौधर्मके इन्द्र अनेक देवियों को राज-महलमें नियुक्त कर गये थे। उनमें से कोई धायका काम करती, कोई वस्त्र आभूषण आदिसे उनके

अङ्गों को सजाती कोई अनेक प्रकारके खिलौने आदिके द्वारा उनका विशेष मनोरंजन करतीं थीं। अब वे देवियां उन्हें सम्बोधन कर बुलाती तो बालक भगवान मुस्कुराते हुए उनके पास चले जाते थे। तीर्थङ्कर भगवान चन्द्र-कला की भांति बढ़ने लगे। उनकी बाल-सुलभ चपलतासे माता-पिता को बड़ा ही आनन्द होता था।

जब उनकी अवस्था कुछ अधिक बढ़ी तो उनके मुखसे सरस्वती की भांति वाणी निकलने लगी। रत्नों की भूमि पर चलते हुए उनके आभूषण सूर्य की किरणों की तरह दमदमाते थे और वे स्वयं किरणोंसे परिवेष्ठित सूर्य-से प्रतीत होते थे। उन्हें खेलने के लिये देव स्वयं हाथी, घोड़ा आदि का कृत्रिम रूप ले लिया करते थे। वे उनके साथ क्रीड़ा किया करते थे। इस प्रकार विभिन्न क्रीड़ाओंसे स्वयं प्रसन्न होकर दूसरों को प्रसन्न करते हुए वे भगवान कुमार अवस्था को प्राप्त हुए। पूर्वमें उनका जो क्षायिक सम्यक्त्व था, उससे उन्हें समग्र पदार्थों का ज्ञान स्वतः हो गया।

उस समय प्रभुके दिव्य शरीर में स्वाभाविक मति, श्रुति, अवधि आदि ज्ञान वृद्धि को प्राप्त हुए। उन्हें समस्त कलायें और विद्यायें स्वतः प्राप्त हो गयीं। इसलिये वे प्रभु मनुष्य तथा देवोंके गुरु-स्थानीय हो गये। पर इनका गुरु कोई नहीं था। ठीक आठवें वर्षमें भगवानने बारह व्रतों को ग्रहण किया। प्रभुका शरीर पसीना-रहित, चमकीला और मलमूत्रादि-रहित स्वर्ण के सदृश था। श्वेत रुधिर-युक्त और महान सुगन्धित आठ शुभ लक्षणोंसे वे शोभायमान थे। आगे चल कर भगवान वज्रवृषभ-नाराच-संहनन और सम-चतुरस्र-संस्थानवाले उत्तम रूप-युक्त और विशाल बलवान पुरुष हुए।

वे सबके हितकारक और कर्णमधुर शब्दों का उच्चारण करते थे। इस प्रकार जन्मकाल से ही दिव्य दश अतिशयों से युक्त शान्तता आदि अपरिमित गुण, कीर्ति, कला, विज्ञान आदि सभी से वे सुशोभित थे। उनके शरीर का वर्ण तपाये हुए सोने के वर्ण जैसा हुआ। वे दिव्य देहके धारक, धर्म की प्रतिमूर्तिके सदृश जगतके धर्मगुरु हुए।

एक दिन की घटना है—इन्द्र की सभामें देवोंने भगवान की दिव्य कथा की चर्चा की। वे कहने लगे—देखो, वे वीर जिनेश्वर कुमार-अवस्था में ही धीर, शूरों में मुख्य, अतुल पराक्रमी, दिव्य-रूप-धारी, अनेक गुणोंसे युक्त संसार-क्षेत्रमें क्रीड़ा करते हुए कितने सुन्दर प्रतीत होते हैं। उसी स्थान पर संगम नाम का एक देव बैठा था। उसने देवों की बातें सुन कर भगवान की परीक्षाके लिये स्वर्गसे चल पड़ा। वह महावनमें आया, जहां प्रभु अनेक राज-पुत्रोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उस देवने प्रभु को डराने के उद्देश्यसे काले सर्प का रूप बनाया। वह एक वृक्ष की जड़से लेकर स्कन्ध तक लिपट गया। उस सर्पके भयसे अन्यान्य राज-कुमार वृक्षसे कूद कर घबराये हुए दूर भाग गये।

पर महावीर-कुमार जरा भी भयभीत नहीं हुए। वे विकराल सर्प के ऊपर आरूढ़ होकर उससे क्रीड़ा करने लगे। ऐसा मालूम हो रहा था कि, वे माता की गोदमें ही क्रीड़ा कर रहे हों। कुमार का धैर्य्य देख कर सर्प-रूपी देव बड़ा चकित हुआ। वह प्रकट होकर प्रभु की स्तुति करने लगा। उसने बड़े नम्र शब्दोंमें कहा—देव तुम्हीं संसारके स्वामी हो, तुम महान धीर-वीर हो; तुम कर्म-रूपी शत्रु के विनाशक तथा समग्र जीवोंके रक्षक हो।

वह कहने लगा—देव! आपके अतुल पराक्रमसे प्रकट हुई कीर्ति स्वच्छ चांदनी के सदृश लोक की नस-नसमें विस्तृत हो रही है। तुम्हारा नाम स्मरण करने मात्रसे ही प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाला धैर्य्य प्राप्त होता है। अत्यन्त दिव्य मूर्तिवाली सिद्धि-वधूके भर्ता महावीर, मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार वह देव भगवान की स्तुति कर उनका 'महावीर' नाम सार्थक करता हुआ स्वर्ग को चला गया। कुमारने भी अपने यशगान को बड़े ध्यानसे सुना। देव की स्तुति बड़ी ही कर्णप्रिय तथा भगवानके यश को संसारमें विस्तृत करनेवाली थी।

इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी का गुणानुवाद बराबर हुआ करता था। वे भगवान किन्नरी देवियों द्वारा गाये गये अनेक गुणानुवादको बड़े ध्यानपूर्वक सुना करते थे। कभी नेत्रों को तृप्त करने-

वाले इन्द्र की अप्सराओं के नृत्य और विभिन्न प्रकार के नाटक देखते थे, तो कभी स्वर्ग से प्राप्त आभूषण, वस्त्र-माला आदि अन्य को दिखा कर प्रसन्न होते थे। अन्य देव कुमारोंके साथ कभी जल-क्रीड़ा और कभी अपनी इच्छा से वन-क्रीड़ा करते थे। इस प्रकार क्रीड़ा में संलग्न धर्मात्मा कुमार का समय बड़े सुख से व्यतीत होने लगा।

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र भी अपनी कल्याण-कामनाके लिये देवियों से अनेक प्रकार के नृत्य, गीत कराने लगा। काव्य आदि की गोष्ठी और धर्म-चर्चासे समय व्यतीत करते हुए कुमार ने संसार को सुखी करनेवाली यौवनावस्था को प्राप्त किया। कुमारके मस्तक का मुकुट धर्म-रूपी पर्वत की शिखर की भांति शोभायमान हो रहा था। इनके गाल और मस्तक की कान्ति ऐसी मालूम पड़ती थी, मानो पूर्णिमाके चन्द्रमा की कान्ति ही हो। प्रभुके सुन्दर भौंहोंसे शोभित कमल-नेत्रों का वर्णन भला यह तुच्छ लेखनी क्या कर सकती है, जिसके खुलने मात्रसे संसारके जीव तृप्त हो जाते हैं।

प्रभुके कानके कुण्डल बड़े ही भव्य दीखते थे। वे ऐसे शोभायमान होते थे, मानो ज्योतिष्क चक्रसे घिरे हुए हों। भला प्रभुके मुख-रूपी चन्द्रमा का वर्णन क्या किया जा सकता है, जिसके द्वारा संसार का हित कनेवाली ध्वनि निकलती है? प्रभु की नासिका, ओठ, दन्त और कण्ठ की स्वाभाविक सुन्दरता जैसी थी, उसे बताने की शक्ति किसी में नहीं है। उनका विस्तृत वक्षस्थल रत्नों के हार से ऐसा सुसज्जित होता था, मानो वह लक्ष्मी का भवन ही हो।

अनेक प्रकार के आभूषणोंसे सुसज्जित उनकी भुजायें ठीक कल्पवृक्षके सदृश प्रतीत होती थीं। अंगुलियोंके दशों नख अपनी किरणोंसे ऐसे प्रतिभाषित हो रहे थे, मानो वे धर्मके दश अङ्ग ही हों। उनकी गहरी नाभि—सरस्वती और लक्ष्मी की क्रीड़ास्थली (सरोवर) जैसी प्रतीत होती थी। प्रभुके वस्त्र-पट की करधनी ऐसी मालूम होती थी, जैसे वह कामदेवको बांधने के लिये नाग-पास ही हो।

प्रभुके दोनों जानु विस्तीर्ण और पुष्ट थे। यद्यपि वे कोमल थे, फिर भी व्युत्सर्गादि तप करनेमें

उनकी समानता नहीं की जा सकती थी। भला प्रभुके ऐसे चरण-कमलों की तुलना किससे की जा सकती है, जिनकी सेवा इन्द्र, धरणेन्द्र आदि सभी देव किया करते हैं। इस प्रकार चोटीसे नख तक प्रभुके अङ्ग को शोभा अपूर्व थी। उसका वर्णन करना असाध्य है। ब्रह्मा व कर्मने तीन जगतमें रहने-वाले दिव्य प्रकाशमान पवित्र और सुगन्धित परमाणुओंसे प्रभु का अद्वितीय शरीर बनाया था। उस शरीर का पहला वज्र-वृषभ-नाराच-संहनन था।

प्रभुके शरीरमें मद, खेद, दोष, रागादिक तथा वातादिक तीन दोषोंसे उत्पन्न रोग किसी समय भी नहीं होते थे। उनकी वाणी समस्त संसारको प्रिय थी। वह सबको सत्य और शुभ-मार्ग दिखाने-वाली धर्म-माताके समान थी, दूसरे खोटे मार्ग को व्यक्त करनेवाली नहीं थी। दिव्य शरीर को पाकर वे प्रभु ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे धर्मात्माओं को पाकर धर्मादिगुण सुशोभित होते हैं। भगवानके लक्षण ये हैं—

श्रीवृक्ष, शंख, पद्म, स्वस्तिक, अंकुश, तोरण, चमर, श्वेतछत्र, ध्वजा, सिंहासन, दो मछलियां, दो घड़े, समुद्र, कछुआ, चक्र, तालाब, विमान, नाग-भवन, पुरुष-स्त्रोका जोड़ा, बड़ा भारी सिंह, तोमर, गङ्गा, इन्द्र, सुमेरु, गोपुर, चन्द्रमा, सूर्य, घोड़ा, वीजना, मृदङ्ग, सर्प, माला, वीणा, बांसुरी, रेशमी-वस्त्र, दैदीप्यमान कुण्डल, विचित्र आभूषण, फल सहित बगीचा, पके हुए अनाजवाला खेत, हीरा रत्न, बड़ा दीपक, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, सुवर्ण, कमल-बेल, चूड़ारत्न, महानिधि, गाय, बैल, जामुनका वृक्ष, पक्षिराज, सिद्धार्थ वृक्ष, महल, नक्षत्र, ग्रह, प्रातिहार्य आदि दिव्य एक सौ आठ लक्षणोंसे तथा नौ सौ सर्वश्रेष्ठ व्यंजनोंसे, विचित्र आभूषणोंसे और मालाओं से विभु का स्वभाव-सुन्दर, दिव्य, औदारिक शरीर अत्यन्त सुशोभित हुआ।

विशेष वर्णन ही क्या किया जाय? संसारमें जितनी भी शुभ-लक्षण-रूप सम्पदा और प्रिय वचन-विवेकादि गुण हैं, वे सब पुण्य कर्मोंके उदयसे तीर्थङ्कर भगवानमें स्वतः ही समाविष्ट थे। अधिष्ठित

स्वामी उनकी सेवामें सदा रत रहते थे। वे महावीर कुमार धर्म की सिद्धिके लिये मन, वचन, कायकी शुद्धिसे अतिचार सहित भक्तिपूर्वक गृहस्थोंके बारह व्रतों का पालन करते थे। वे सर्वदा शुभ-ध्यानकी ओर विचार किया करते थे। पुण्य के शुभोदय से प्राप्त हुए सुखों का उपभोग करते हुए वे कुमार आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

विश्वपति, मन्दरागी वे महाप्रभु ने तीस वर्ष का समय क्षणभर में ही व्यतीत किया। एक बार ऐसा हुआ कि, अच्छे होनहारके कारण चारित्र-मोह-कर्मके क्षयोपशमसे उन्हें स्वतः अपने पूर्वके करोड़ों जन्मों का संसार-भ्रमण ज्ञात हो गया। वे इस प्रकार की पूर्व-घटित घटनाओं पर विचार कर बड़े ही क्षुब्ध हुए। उन्हें तत्काल ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे विचार करने लगे कि, मोह-रूपी महान शत्रु का सर्वनाश करने के लिये रत्नत्रय-रूप तप का पालन ही श्रेयस्कर है। उन्होंने सोचा—चारित्रके अभावमें मेरा इतने दिन का समय व्यर्थ ही व्यतीत हो गया जो अब प्राप्त नहीं हो सकता। पूर्वकाल में ऋषभादि जितने भी तीर्थङ्कर हो गये हैं, उनकी आयु बहुत अधिक थी, इसलिये वे सब कुछ कर सकने में समर्थ हुए थे। पर हम सरीखे थोड़ी-सी आयुवाले मनुष्य सांसारिक कार्य कुछ भी नहीं कर सकते। वे नेमिनाथादि तीर्थङ्कर धन्य हैं, जिन्होंने अपने जीवन की अवधि थोड़ी-सी समझ कर अल्पायु में ही मोक्षके उद्देश्यसे तपोवन की ओर प्रस्थान किया था। अतः संसार-हित चाहनेवाले थोड़ी आयुवाले व्यक्तियों को एक क्षण भी संयमके बिना व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये।

वस्तुतः—वे बड़े ही मूर्ख हैं, जो थोड़ी आयु पाकर तपस्याके बिना अपने अमूल्य समयको कष्ट कर देते हैं। वे यहां भी दुःख भोगते हैं और नरकादि की यातनायें भी। मैं ज्ञानी होते हुए भी संयमके अभावमें एक अज्ञानी की भांति भटक रहा हूं। अब गृहस्थाश्रममें रह कर समय व्यतीत करना उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। वे तीनों ज्ञान ही किस कामके, जिसके द्वारा आत्मा को और कर्मोंको अलग-अलग न किया जाय तथा मोक्ष-रूपी लक्ष्मीकी उपासना न की जाय? ज्ञान प्राप्त करनेका उत्तम फल वही महापुरुषोंको

प्राप्त है; जो निष्पाप तपका आचरण करते रहते हैं। दूसरों का ज्ञान तपके बिना नितान्त निष्फल है।

उस व्यक्तिके नेत्र निष्फल हैं, जो नेत्र होते हुए भी अन्धकूपमें गिरता है। वही दशा ज्ञानी पुरुषों की है जो ज्ञान होते हुए भी मोहरूपी कूपमें गिरे रहते हैं। वस्तुतः, अज्ञान (अनजान) में किये गये पापसे छुटकारा तो ज्ञान प्राप्त होने पर भी मिल जाता है। पर ज्ञानी (जानकार) का पापसे मुक्त होना बड़ा ही दुष्कर होता है। अतएव ज्ञानी पुरुषों को मोहादिक निन्दनीय कर्मोंके द्वारा किसी प्रकार का पाप नहीं करना चाहिये। इसका कारण यह है कि मोहसे राग, द्वेष उत्पन्न होते हैं और राग-द्वेष से घोर पाप होता है। उस पापके फलस्वरूप जीव को बहुत दिनों तक दुर्गतियों में भटकना पड़ता है। वह भटकना भी साधारण नहीं, अनन्तकाल तकका, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

ऐसा समझ कर ज्ञानियों को चाहिये कि, वे मोह-रूपी शत्रु को वैराग्य-रूपी तलवार से मार दें। कारण यह मोह ही सारे अनर्थों की जड़ है। पर यह स्मरण रहे कि यह मोह-गृहस्थों द्वारा नहीं छोड़ा जा सकता। इसलिये पाप का बन्धन गृह को तो त्यागना ही पड़ेगा। गृह-बन्धन बाल्यावस्थामें तथा यौवनावस्थामें सारे अनर्थ उत्पन्न करता रहता है। अतः धीर-वीर पुरुष मोक्ष की प्राप्ति के उद्देश्य से गृह-बन्धन का सर्वथा परित्याग कर देते हैं। वे संसार में पूज्य और महापुरुष हैं, जो यौवनावस्था में दुर्जेय कामदेव को भी परास्त करने में समर्थ होते हैं।

यौवनावस्था रूप राजाने कामदेव को पंचेन्द्रिय आदि चारों कायके जीवोंके जीवनको विकृत करने के लिये भेजा है। पर जब यौवन की अवस्था मन्द हो जाती है, तब उसके साथ, बुढ़ापा-रूप फन्देमें बंधे हुए वे कामदेवादि भी ढीले पड़ जाते हैं। अतएव यह उचित होगा कि मैं यौवनावस्थामें ही उग्र-तप आरम्भ कर दूं, जिससे कामदेव और पंचेन्द्रिय-विषय-रूपी शत्रुओं का सर्वनाश हो। इस प्रकार की चिन्ता कर वे महा बुद्धिमान महावीर स्वामी अपने चित्तको निर्मल कर राज्य-भोगादिकोंसे विरक्त हुए और मोक्ष-साधनमें संलग्न हो गये।

महावीर प्रभुके चित्तमें ऐसी भावना उत्पन्न हो गयी कि, उन्होंने घर को बन्दीगृह समझ कर राज्य-लक्ष्मीके साथ उसका परित्याग कर दिया। वे तपोवनमें जाने के लिये उद्यत हुए। समय पाकर उन्होंने सुखको तिलांजलि दे सुख का भण्डार वैराग्य प्राप्त कर लिया। ऐसे बाल ब्रह्मचारी महावीर प्रभु मुझे गुण-सम्पदा प्रदान करें।

एकादश प्रकरण

हन्ता शत्रु स्वकर्म के, वीर आत्मरस लीन।
जगद्वंद्य पद-कंज में, नमे भक्तिवश दीन॥

जिन्होंने कर्म-रूपी शत्रुओं का हनन किया, जो सदा आत्मानुभव करते हैं और जगद्वंद्य हैं, उन वीर भगवान की यह दीन भक्तिवश वन्दना करता है।

पिछले अध्यायमें यह बताया जा चुका है कि, महावीर प्रभु को एकाएक वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्हें सांसारिक भोगोंसे एकदम विरक्ति हो गयी। वे अपने वैराग्यमें वृद्धि होनेके उद्देश्यसे बारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगे।

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ, और धर्मानुप्रेक्षा—इस प्रकार की बारह भावनायें हैं, जो वैराग्य को पुष्ट करतीं हैं।

अनित्य भावना—तीनों लोकों में आयु यमराजसे घिरी हुई है। यौवन वृद्धावस्थाके मुखमें है। यह शरीर रोग-रूपी सर्पका बिल है—और इन्द्रिय सुख क्षणभंगुर हैं। अर्थात् जो कुछ भी सुन्दरसे सुन्दर वस्तुएँ दृष्टिगोचर हो रहीं हैं, ये सभी कर्मोंसे उत्पन्न हुई हैं और समय आने पर स्वतः नष्ट हो जायेंगी। जो करोड़ों जन्मोंसे भी दुर्लभ मनुष्यायु मृत्यु से क्षण भर में नष्ट हो जाती हैं तो अन्य वस्तुओं के स्थिर रहने की कल्पना ही कैसे की जा सकती है? सबका सर्वनाश करनेवाला यमराज जन्मसे लेकर

समयादिके हिसाबसे जीवको अपने पास घसीट ले जाता है। यौवन-धर्म सुखादि होने से सज्जन को मननीय है, क्योंकि यह भी व्याधि, रोग, मौतसे घिर कर क्षणभरमें बादलोंके समान नष्ट हो जाता है। कारण कोई जवान पुरुष रोगरूपी अग्निसे जलते हैं और कोई बन्दीखाने में बन्द रह कर अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं।

नरक आदिका कारण निन्दनीय कार्य भी चञ्चल और सारहीन है। और चक्रवर्ती की राज्य-लक्ष्मी आदि भी बादलकी छायाके समान विनाशवान और चञ्चल है, तब दूसरोंकी स्थिरता ही क्या हो सकती है? इस प्रकार संसार की सारी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं। अतः बुद्धिमानों को उचित है कि वे सर्वदा मोक्ष का साधन किया करें।

अशरण-भावना—जिस प्रकार निर्जन वनमें सिंहके पंजेमें आये हुए बालक को कोई शरण नहीं होती, उसी प्रकार संसारके प्राणीको रोग और मृत्युसे रक्षा करनेवाला कोई नहीं होता। जिस प्राणीको यमराज ले जानेके लिये प्रस्तुत होता है; उसे इन्द्र, चक्रवर्ती, देव और विद्याधर आदि भी एक क्षणके लिये बचा नहीं सकते। वस्तुतः जब काल समक्ष आ जाता है, तब मन्त्रादिक और सारी औषधियां व्यर्थ हो जाती हैं। जगतमें भव्योंकी रक्षा करने वाले केवल जिन भगवान, साधु और केवली द्वारा उपदेश किया हुआ धर्म है। इसके अतिरिक्त तप, दान, जिन-पूजा, जप, रत्नत्रय आदि भी अनिष्ट और पापोंके विध्वंसक हैं। जो बुद्धिमान संसारसे भयभीत होकर अर्हंत आदिकी शरणमें जाते हैं, वे शीघ्र ही उनके सदृश गुणों की प्राप्ति कर परमात्म पद को प्राप्त हो जाते हैं।

किन्तु जो मूर्ख, चण्डी, क्षेत्रपाल आदि मिथ्यात्वी देवों की शरण ग्रहण करते हैं, वे नरक-रूप समुद्रमें पतित होते हैं। ऐसा विचार कर बुद्धिमानों को पञ्च-परमेष्ठी की तथा तप-धर्मादि की शरण ग्रहण करनी चाहिये; जो सर्वथा दुःखोंको विनष्ट करनेवाली है। रत्नत्रयादिके द्वारा मोक्ष की दूसरी शरण ग्रहण करनी चाहिये; क्योंकि वह अनन्त गुणोंसे युक्त और अनन्त सुखका समुद्र है।

संसारानुप्रेक्षा—यह संसार अनादि और अनन्त है। इसमें अभव्योंको तो सुख ही सुख दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु ज्ञानी जीव सदा इसे दुःख रूप समझते हैं; कारण अज्ञानी जन विषयको ही सुख मानते हैं, किन्तु ज्ञानी उसे नरकादिका कारण समझ अधिक दुःख-रूप मानते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे घिरे हुए प्राणी रत्नत्रय-रूपी धनके बिना अधिक काल तक भटकते रहते हैं और भविष्यमें भी भटकते रहेंगे। संसारमें कोई ऐसे कर्म और कोई ऐसी गतियां न होंगी, जिनमें इस जीवको भटकना न पड़ा हो—यह द्रव्य-संसार (भ्रमण) है। लोकाकाश का ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा है, जिसमें इस जीवने जन्म ग्रहण न किया हो, और न मृत्यु ही प्राप्त किया हो—यह काल-संसार है। नरकादि चार गतियोंमें ऐसी योनि नहीं बची होगी जिसे इस जीवने ग्रहण नहीं किया हो और न छोड़ा हो—यह भव-संसार है। ये संसारी जीव मिथ्यात्वादि सत्तावन दुष्ट कारणों से भ्रमण करते हुए पाप कर्मों को सदा उपार्जन करते हैं—यह भाव-संसार है।

धर्मके अभावमें ही संसारके प्राणियों को भव-भवमें भटकना पड़ता है। अतएव भव्यों को बड़े यत्नपूर्वक धर्मका पालन करना चाहिये। इस धर्मके पालनसे अनन्त सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति होती है।

एकत्व-भावना—इस प्राणीको संसारमें अकेला ही जन्म धारण करना पड़ता है। यह अकेला ही भटकता है और अकेला ही महान सुख का उपभोगी होता है। वेदना आदि दुःख भी इसे अकेले ही सहन करने पड़ते हैं, उस दुःख के भाग को कुटुम्बीजन बांट नहीं सकते। यमराज की मारसे यह अकेला ही रोता और चिल्लाता है, इसे एक क्षणके लिये भी कोई नहीं बचा सकता। यह अकेला ही अपने कुटुम्बके पालनके लिये हिंसादि कर पाप का बन्ध करता है। उसके फलस्वरूप नरकादि खोटी गतियां प्राप्त कर अत्यन्त दुःख भोगता है—उसके साथी कुटुम्बी नहीं भोगते। सम्यक्त्वादि शुभ कर्मोंका बंध इसे अकेला ही होनेसे स्वर्गादि महान विभूतियां प्राप्त होती हैं। रत्नत्रयादिके कारण इसे अकेले ही मोक्ष प्राप्त होता है। इस प्रकार सभी स्थलों पर एकत्व की भावना कर ज्ञान की प्राप्तिके लिये आत्मा का

ध्यान करना चाहिये।

अन्यत्व-भावना—प्राणी, तू अपने को सब जीवों से सर्वथा अलग समझ। जन्म-मृत्यु-कर्म-सुखादि भी अलग मान ले। माता-पिता, पुत्र, कुटुम्बीजन सभी अपने नहीं हैं। जब अन्तरङ्ग यह शरीर भी मृत्युके बाद साथ छोड़ देता है, तब वहिरङ्ग घर, स्त्री आदि अपने कैसे हो सकते हैं? निश्चय से पुद्गल-कर्मसे उत्पन्न हुआ 'द्रव्यमन' तथा अनेक संकल्प विकल्पोंसे भरा हुआ 'भावमन'—दोनों प्रकारके वचन—ये सभी आत्मासे पृथक् हैं। कर्म और कर्मोंके कारण अनेक प्रकारके सुख दुःख इस जीवके दूसरे स्वरूप हैं।

इन्द्रियां भी ज्ञान-स्वरूप आत्मासे पृथक् हैं और ये जड़ पुद्गलसे उत्पन्न हुई हैं, जो कि राग-द्वेषादि के परिणामसे जीवमयी मालूम होते हैं। वे भी कर्मों द्वारा किये गये कर्मोंसे उत्पन्न हैं—जीवमयी नहीं हैं, कर्मसे उत्पन्न हुई अन्य वस्तुएँ भी सर्वथा आत्मासे भिन्न हैं। इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी आवश्यकता ही क्या? सम्यग्दर्शनादि आत्म-गुणोंके अतिरिक्त अपना कोई नहीं है। अतएव हे योगीश्वरो! तुम अपने ज्ञान-स्वरूप आत्माको शरीरादिसे पृथक् समझकर एवं शरीरको नाशवान समझ कर आत्माका ही ध्यान करो।

अशुचि-भावना—यह शरीर रुधिर-वीर्य आदिसे उत्पन्न हुआ है, सप्त धातुओं और मलमूत्रादिसे भरा हुआ है। भला, ऐसे शरीर पर कौन बुद्धिमान आस्था रखेगा? जिस स्थल पर भूख प्यास, बुढ़ापा, रोग-रूपी अग्नि जला करती है, उस काय-रूपी झोपड़े में क्या सत्पुरुष रह सकते हैं? जिस शरीर में राग-द्वेष-कषाय-कामदेव-रूपी सर्प हमेशा निवास करते हैं, ऐसे शरीर-रूपी बिल में कौन श्रेष्ठ ज्ञानी निवास करना पसन्द करेगा? यह पापी शरीर तो अशुद्ध है ही, साथ ही अपने आश्रित सुगन्धित वस्त्र आदि को भी विकृत कर डालता है। जिस प्रकारसे भङ्गी की टोकरी कहींसे भी अच्छी नहीं लग सकती, उसी प्रकार चर्म हड्डी आदिसे निर्मित शरीर भी कभी सुन्दर नहीं दिखाई देता।

इस शरीर को पुष्ट करो अथवा सूखने दो, अन्तमें इसे भस्म होना ही है! अतः इसे तपस्याके द्वारा कृश बना देना ही अत्युत्तम है। कारण अन्न आदि से पुष्ट किया गया शरीर रोग आदि दुःखों

उत्पन्न करता है। पर यदि इसका शोषण किया जाय तो इसे परलोकमें स्वर्ग मोक्षादि प्राप्त होंगे। यदि इस शरीरसे 'केवलज्ञान' आदि पवित्र गुण सिद्ध हो सकते हैं, तो इस सम्बन्ध में अधिक विचार करने की क्या बात है? ऐसा समझ कर ज्ञानियोंको शरीर-सुखकी कामना त्याग कर अविनाशी मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिये। बुद्धिमानों को चाहिये कि वे दर्शन, ज्ञान, तप-रूपी जलसे अपवित्र देह के कर्म-मल को धोकर अपनी आत्मा को पवित्र कर लें।

आस्रव-भावना—जिस आत्मामें रागादि भावोंसे युक्त पुद्गलोंका समूह कर्म-रूप होकर आवे, उसे ही कर्मों का आस्रव कहते हैं। वह अनन्त दुःखोंका प्रदाता है। जिस प्रकार छिद्रयुक्त जहाजमें जल आने से जहाज समुद्रमें डूब जाता है; ठीक उसी प्रकार यह जीव भी कर्मोंके आनेसे संसार-सागरमें कभी डूबता है, तो कभी तैरता रहता है। आस्रवके कारण ये हैं—मिथ्यामतोंसे उत्पन्न पांच प्रकार के मिथ्यात्व, बारह प्रकार की अविरति, पन्द्रह प्रमाद, पच्चीस कषायें और पन्द्रह योग—ये दुष्ट कारण बड़ी कठिनाईसे दूर होते हैं। अतएव मोक्षकी आकांक्षा रखनेवाले जीवोंको चाहिये कि वे सम्यक् चारित्र और तप-रूपी खड्गसे कर्मास्रवके कारण-रूपी शत्रुओंको विनष्ट कर दें। जो प्राणी कर्मोंके आनेवाले दरवाजे को ज्ञानादिसे नहीं रोक सकते, उन्हें कठिन तप करने पर भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

किन्तु जिन्होंने ध्यान, शास्त्राध्ययन और संयमादिसे कर्मोंका आना बिल्कुल रोक दिया है, उनका मनोवांछित मोक्ष-रूपी कार्य सिद्ध हो चुका। जब तक योगोंसे चञ्चल आत्मा में कर्मों का आगमन है, तब तक मोक्ष प्राप्त होना दुष्कर है। इस सम्बन्धसे तो संसार की परिपाटी बढ़ती जाती है। ऐसा जान कर अशुभ आस्रवों को रोक रत्नत्रयादि के शुभ-ध्यान से अपने आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति कर निर्विकल्प शुद्ध ध्यानसे कर्मास्रव को एकदम रोक देना चाहिये।

संवर-भावना—जहां मुनीश्वर योग, व्रत, गुप्ति आदिसे कर्मास्रवके द्वारोंको रोकते हैं—वही रोकना मोक्ष प्रदान करनेवाला संवर है। कर्मास्रव रोकनेके इतने कारणोंको मुनीश्वर प्रयत्नपूर्वक सेवन करें।

वे ये हैं—तेरह प्रकार का चारित्र, दश प्रकार का धर्म, बारह भावना, बाईस परीषहों का जय, निर्मल सामायिक, पांच तरह का चारित्र, धर्म-शुक्ल-रूप शुभ-ध्यान और उत्तम ज्ञानाभ्यास। कर्मास्रवों के रोकनेके लिये ये ही उत्तम कारण हैं। जिन मुनीश्वरके प्रतिदिन कर्मोंका संवर और कर्मों की निर्जरा होती है, उनके उत्तम गुण स्वतः प्रकट हो जाते हैं। वे देहका कष्ट सहन करते हुए भी पाप कर्मोंका संवर करते रहते हैं। इस प्रकार संवर के गुणों को जान कर मोक्षाभिलाषी जीवों को सदा सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र और श्रेष्ठ योगोंके द्वारा सब प्रकार का संवर करते रहना चाहिये।

निर्जरानुप्रेक्षा—पूर्व कर्मको तपस्याके द्वारा क्षय करना। ऐसी अविपाक-निर्जरा योगियों को ही हुआ करती है। कर्म उदय होने पर जीवोंके स्वभावसे ही जो निर्जरा होती है, वह सविपाक निर्जरा है। उसे त्याग देना चाहिये। कारण इससे नवीन कर्म उदय होते हैं।

तप और योगोंके द्वारा जैसे-जैसे कर्मों की निर्जरा की जाती है, वैसे-वैसे मोक्ष-लक्ष्मी मुनीश्वरों के समीप आती जाती है। जब कर्मों की निर्जरा पूरी हो जाती है तो, योगियों को मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है।

यह निर्जरा सब प्रकारके सुख प्रदान करनेवाली है, अनन्त गुणों से युक्त है, सभी तीर्थङ्कर और गणधर इसकी सेवा करते हैं। यह सब दुःखोंसे अलग है और सबका समान-रूपसे हित करनेवाली है। इससे संसार-भ्रमण नष्ट होता है। इस भांति निर्जराके गुणोंको जान कर संसारसे भयभीत भव्य प्राणियों को कठिन तपस्या कर और परीषहों को सहन कर बड़े यत्नसे मोक्ष-प्राप्तिके लिये कर्मों की निर्जरा करनी चाहिये।

लोक-भावना—जहां पर छः द्रव्य दिखलाई दें, वह लोक है। वह लोक, अधो, मध्य और उर्ध्व रूपसे तीन प्रकार का है, अकृत्रिम है और अविनाशी है। इस लोकके निम्न भागमें सात राजू प्रमाण नरक की सात भूमियां हैं। वे सब अशुभ और दुःख देनेवाली हैं। उनमें ऊनचास पटल (खन) हैं और चौरासी लाख रहने की बिलें हैं।

उनमें पूर्वकृत पापोंके फलस्वरूप मिथ्यात्वी जीव नरक प्राप्त कर जन्म ग्रहण करते हैं। वहां पर उन्हें बड़ा कष्ट होता है। वे तरह-तरहसे पीटे जाते हैं, सताये जाते हैं और सूली पर चढ़ाये जाते हैं यह अधोलोक का कथन है।

मध्यलोकमें जम्बूद्वीप आदिको लेकर असंख्यात द्वीप और लवण समुद्र हैं। पांच सुमेरु पर्वत हैं, तीस कुल पर्वत हैं, बीस गजदन्त हैं, एकसौ अस्सी वक्षार पर्वत हैं, चार इष्वाकार पर्वत हैं, दश कुरुवृक्ष मानुषोत्तर पर्वतके समान ऊँचे हैं। ये समस्त ढाई द्वीपमें हैं और जैन-मन्दिरोंसे सुशोभित हैं। एकसौ सत्तर बड़े-बड़े देश और नगर हैं। मोक्ष देनेवाली पन्द्रह कर्म-भूमियां हैं। महानदियां, तालाब, कुण्ड आदि की संख्या अन्य शास्त्रोंसे जानी जा सकती है। श्री आदि छः देवियां छः ह्रदों पर रहती हैं। आठवें नन्दीश्वर द्वीपमें अञ्जन गिरिके ऊपर बावन जैन-मन्दिर हैं। उन्हें मैं सर्वदा नमस्कार करता हूं।

चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारे, नक्षत्र—ये असंख्यात ज्योतिषी देव मध्य-लोकमें हैं, इनके सब विमानोंके मध्यमें सुवर्ण-रत्नमय अकृत्रिम जिन-मन्दिर हैं, जिन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। इस मध्यलोकके ऊपर सात राजू प्रमाण उर्ध्व-लोकमें सौधर्म आदि सोलह कल्प स्वर्ग हैं, उनके ऊपर नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पांच अनुत्तर—ये कल्पातीत स्वर्ग हैं। इनके विमानोंके त्रेशठ पटल (खन) हैं। इनके विमानों की संख्या चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेरह हैं। ये स्वर्ग-विमान सब इन्द्रिय-सुखोंको देनेवाले हैं। जो जीव पूर्व-जन्ममें विद्वान, तपस्वी, रत्नत्रयसे विभूषित, धार्मिक अर्हत और निर्ग्रन्थ गुरुके भक्त, जितेन्द्री, श्रेष्ठ आचरणवाले हैं, वे ही जीव देव गति को प्राप्त हो स्वर्ग में जन्म-धारण करते हैं। वहां उन्हें इन्द्रियजन्य सुख उपलब्ध होते हैं। स्वर्गके अग्रभाग में रत्नमयी मोक्ष-शिला है। वह मनुष्य-क्षेत्रके सदृश पैंतालीस लाख योजन की है और बारह योजन मोटी है।

उस शिला पर सिद्ध भगवान आसीन हैं। वे अनन्त सुखमें लीन अनन्त हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार इन्द्रिय-सुख-दुःखवाले तीन लोकके स्वरूपको जान कर अग्रभागमें जो मोक्षस्थान

है, उसे रत्नत्रय तपस्या द्वारा केवल प्राप्त करने का प्रयत्न करो। मोक्ष अनन्त सुखोंसे परिपूर्ण है।

बोधिदुर्लभ-भावना—चारों गतियोंमें सर्वदा भटकते रहने से और कर्म-बन्ध करते हुए जीवों को 'बोधिदुर्लभ-भावना' का होना अत्यन्त कठिन है। प्रथम तो चार गतियोंमें मनुष्य-गति ही कठिन है। द्वितीय आर्य-क्षेत्र, उत्तमकुल, दीर्घायु, पंचेन्द्रिय की पूर्णता, निर्मल बुद्धि, मन्द कषाय, मिथ्यात्व की कमी, विनयादि श्रेष्ठ गुण—इन सबकी उत्तरोत्तर प्राप्ति होना और भी कठिन है। पर इससे भी कठिन देव, गुरु, शास्त्र-रूपी सामग्री का मिलना है। सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की शुद्धि तथा निर्दोष तप तो इससे भी कठिन है।

जो बुद्धिमान उक्त सामग्रियों को प्राप्त कर, मोह की परिसमाप्तिके बाद मोक्ष की सिद्धि करते हैं उन्हीं महान पुरुषोंने 'बोधि' (भेदज्ञान) को सफल किया है। किन्तु भेद-विज्ञान की प्राप्ति होने पर भी जो मोक्षकी सिद्धिमें प्रमाद करते हैं, वे मानो जहाजकी शरण न ले, संसार समुद्रमें डूबना तिरना चाहते हैं इस प्रकार विचार कर श्रेष्ठ पुरुषों को समाधि-मरणमें तथा मोक्ष-साधनमें विशेष प्रयत्न करते रहना चाहिये।

धर्मानुप्रेक्षा—उत्तम धर्म उसे कहते हैं, जो संसार-सागर में डूबते हुए प्राणियों को सहारा देकर अर्हंतादि पदके अथवा मोक्ष-स्थानके योग्य बनावे। धर्मके दश लक्षण हैं—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य—धर्म की चाह रखनेवालों के लिये इनका पालन करना अनिवार्य है। कारण यह है कि इससे खोटे कर्म नष्ट होते हैं और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसी प्रकार रत्नत्रयके पालनसे, मूलगुण, उत्तर गुणोंके धारण करने से और तपस्यासे मोक्ष-सुख प्राप्त करानेवाला यतियों का धर्म पालन किया जाता है। धर्मके प्रभावसे तीनों लोक की दुर्लभ वस्तुयें स्वतः प्राप्त हो जातीं हैं। धर्म-रूप मन्त्र द्वारा आकृष्ट होकर मोक्ष-स्त्री स्वतः आलिंगन करती है।

संसारमें जितनी भी दुष्प्राप्य वस्तुएँ हैं, वे सब धर्मके प्रसादसे अनायास प्राप्त होतीं हैं। धर्म ही माता-पिता, साथ-साथ चलनेवाला तथा हित करनेवाला है। वह कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और रत्नों का

खजाना है। वे पुरुष इस संसार में धन्य हैं, जो सारा प्रमाद् का परित्याग कर धर्मका पालन करते हैं और ऐसे पुरुषों की ही संसारमें पूजा होती है। किन्तु जो पुरुष धर्म न कर, व्यर्थ समय व्यतीत करते हैं, वे पशुके सदृश हैं। ऐसा समझ कर बुद्धिमानों को धर्म किये बिना एक क्षण भी व्यर्थ जाने न देना चाहिये। क्योंकि, मनुष्यायु का कोई ठिकाना नहीं है।

भव्य पुरुषों को उपरोक्त भावनाओंको चित्तमें धारण करना चाहिये। ये भावनायें सर्वथा विकार-रहित हैं, तीव्र वैराग्य के कारण हैं, समस्त गुणों की राशि हैं, पाप रागादिसे रहित हैं और जैन-मुनि जिनकी (भावनाओं) सेवा किया करते हैं। ये भावनायें निर्मल हैं, मोक्ष-लक्ष्मी की माता हैं, अनन्त गुणों की खानि हैं और संसार का त्याग करानेवाली हैं। जो मुनीश्वर इन भावनाओं का प्रतिदिन चिन्तवन करते हैं, उन्हें स्वर्ग-मोक्षादि की सम्पदा प्राप्त होना क्या कठिन है ? जिन महावीर प्रभु ने पुण्यके उदयसे देव-सम्पदा का उपभोग कर, जगद्गुरु तीर्थङ्कर हो, कुमार अवस्थामें ही कर्मों को नष्ट किया तथा जिन्हें मोक्ष प्राप्त करानेवाले, देह-भोगों से परम वैराग्य उत्पन्न हुआ, दीक्षा-प्राप्ति के लिये मैं उनकी स्तुति एवं उन्हें शतशः नमस्कार करता हूं।

द्वादश प्रकरण

परम तपस्वी वीरवर, मोक्ष-मार्ग में लीन।
नमस्कार अर्हन्त को, करता है यह दीन॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ, महान तपस्वी, मोक्षके सुखमें लीन, काम-रूपी सुखसे विरक्त—ऐसे श्री वीर प्रभु को मैं नतमस्तक नमस्कार करता हूँ।

वीर भगवान को वैराग्य उत्पन्न होनेके पश्चात् आठों लौकान्तिक देवोंने अपने अवधि-ज्ञानसे यह निश्चय कर लिया कि भगवानका तप-कल्याणकका उत्सव मनाना चाहिये। पश्चात् वे भगवान महावीर

के पास आये। उन देवोंने अपने पूर्व-जन्ममें द्वादशांग श्रुतका अभ्यास किया था तथा वैराग्य भावनाओं का चिन्तवन किया था। चौदह पूर्व श्रुतके जाननेवाले, स्वभावसे बाल-ब्रह्मचारी, तप-कल्याणक का उत्सव करानेवाले, एक भव के बाद नियम से मोक्ष जानेवाले, देवों में श्रेष्ठ वीर आत्माओं को हम सादर नमस्कार करते हैं।

कर्म-रूपी बैरियोंको नाश करनेमें जो प्रयत्नशील हैं, ऐसे वीर भगवानको नमस्कार कर तथा स्वर्ग से लाये हुये पवित्र द्रव्यों से भगवान का पूजन कर वैराग्यमय परिणाम हो जाय, ऐसी वैराग्यमयी स्तुति द्वारा वे विद्वान लौकान्तिक देव भगवान का गुण-गान करने लगे।

हे वीर प्रभु! आप जगत्‌के स्वामी हैं, गुरुओंके भी महान श्रेष्ठ गुरु हैं, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी हैं, समझदारोंमें आप सर्वश्रेष्ठ समझदार हैं। आपको हम विशेष क्या समझा सकते हैं? इसलिये स्वयंबुद्ध तथा सर्व पदार्थों के ज्ञाता, आपको हम क्या समझावें? क्योंकि आप स्वयं हमको सद्‌बुद्धि देनेवाले हैं जिस प्रकार प्रकाशमान दीपक समस्त पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी तरह आप भी समस्त संसारके पदार्थोंको प्रकाशित करेंगे। परन्तु भगवान! हमें सन्तोष होता है कि हम आपको समझाने के बहाने से आपके दर्शन और भक्ति करने को यहां आने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं। आप तो तीन ज्ञान के धारी हैं, आपको शिक्षा कौन दे सकता है? क्या सूर्य का दर्शन करने के लिये दीपक की आवश्यकता होती है? कदापि नहीं। हे देव, बलवान मोह-रूपी शत्रु को जीतने के लिये आपने जो उद्यम किया है, उसे देख कर संसार-समुद्र पार होने की इच्छा रखनेवाले अनेक भव्यात्माओं का महान हित होगा। आप जैसे दुर्लभ जहाजको पाकर असंख्यात भव्य-जीव विकट संसार-सागरसे पार हो सकेंगे। कितने ही भव्य-जीव आपके पवित्र उपदेश से रत्नत्रय को अङ्गीकार कर उसके द्वारा 'सर्वार्थसिद्धि' जैसे स्थानमें गमन करेंगे। कितने ही प्राणी आपकी वाणीको सुन कर मिथ्या-ज्ञान-रूपी अन्धकारका निवारण कर, सब पदार्थोंके साथ ही साथ मोक्ष-लक्ष्मी को भी देखेंगे। हे प्रभु, आपसे बुद्धिमानों को मनचाहे इष्ट

पदार्थों की सिद्धि होगी। हे देव, आपके प्रसादसे ही स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी।

हे दीनानाथ! मोह-रूपी फन्देमें फंसे हुए भव्य प्राणियोंको आप ही बराबर सहारा देंगे; क्योंकि आप ही तीर्थको चलानेवाले धर्म-प्रवर्त्तक हैं। आपके वचन-रूपी मेघसे वैराग्य-रूपी अपूर्व वज्रको पाकर असंख्यात बुद्धिमान महान ऊंचे मोह-रूपी शिखर को बात की बात में खण्ड-खण्ड कर देंगे। आपके उपदेशसे पापी प्राणी अपने पापोंको और कामी व्यक्ति काम-शत्रुको शीघ्र ही परास्त कर डालेंगे, इसमें रञ्च-मात्र भी सन्देह नहीं है। हे स्वामी! यह भी निश्चय है कि, बहुतसे प्राणी आपके चरण-कमलों के सेवनसे दर्शन-विशुद्ध्यादि सोलह भावनाओं को स्वीकार करके आपहीके समान महान हो जायंगे।

प्रभो! संसारसे बैर करनेवाले, वैराग्य-रूपी अस्त्र को रखनेवाले आपके अवलोकन से मोह और इन्द्रिय-रूपी शत्रु अपनी जीवन-लीला समाप्त होनेके भयसे कांप रहे हैं। क्योंकि, हे दीनबन्धु! आप बलवान सुभट हैं, दुर्जय परीषह-रूपी वीरों को क्षण-मात्र में जीतने की सामर्थ्य रखते हैं। इसलिये हे वीर प्रभो! आप मोह-इन्द्रिय-रूपी बैरियों को जीतने में तथा भव्यात्माओं का उपकार करने के लिये चारों घातिया कर्म-रूपी शत्रुओंके नाश करने का शीघ्र उपाय करें; क्योंकि अब यह उत्तम समय, तपस्या करने के लिये और भव्योंको मोक्ष ले जाने के लिये, आपके हाथमें आया है।

हे वीर प्रभु! आपको नमस्कार है, आप जगत-हितैषी हैं, आप ही मोक्ष-रूपी रमणी की प्राप्ति के लिये उद्योगी हैं, इसलिये आपको हम पुनः नमस्कार करते हैं। अपने ही शरीरके भोगों के सुखमें इच्छा-रहित हैं, इसलिये भी आपको नमस्कार है। मोक्ष-रूपी स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा रखते हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। महान पराक्रमी, बाल ब्रह्मचारी, राज्य-लक्ष्मी के त्यागी, अविनाशी लक्ष्मीमें लीन आपको नमस्कार है। योगियों के भी आप महान गुरु हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। सब जीवोंके परम बन्धु हैं, जानकार हैं, इसलिये पुनः आपको नमस्कार है।

हे महान प्रभु! इस स्तुति द्वारा हम यही प्रार्थना करते हैं कि परलोकमें चारित्र की सिद्धिके लिये

वह शक्ति मोह-रूपी-शत्रुको नाश करनेवाली है। इस प्रकार जगतपूज्य
आप हमें पूरी शक्ति दें। हे वीर प्रभु ! वह शक्ति मोह-रूपी-शत्रुको नाश करके वे लौकान्तिक देव अपने-अपने स्थानको चले गये।
श्री वीर भगवान की स्तुति और अनेक प्रार्थनायें करके वे लौकान्तिक देव अपने-अपने स्थानको चले गये। इन्द्रों ने घण्टादि के स्वयं बजने से भगवान का
उसी समय समस्त देवादि सहित चारों जातिके इन्द्रों ने घण्टादि के स्वयं बजने से भगवान का विभूतिसे विभूषित होकर अपनी-
संयमोत्सव समझ कर भक्तिभावसे अपनी इन्द्राणियोंके साथ महान विभूतिसे विभूषित होकर अपनी-अपनी पत्नियां सहित, सवारियों
अपनी सवारियों पर सवार हो नगरीमें प्रवेश किया। देवों की सेनाने अपनी पत्नियां सहित, सवारियों महावीर स्वामीको एक
पर चढ़े हुए, नगर और वनको चारों ओरसे घेर ली। पश्चात् इन्द्रने भगवान महावीर स्वामीको एक शब्दों का उच्चारण
सिंहासन पर बैठा कर अत्यन्त प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए गीत, नृत्य, 'जय-जयकार' शब्दों का उच्चारण किया। इन्द्र
करते हुए क्षीर-सागरसे भरे हुए एक हजार आठ सोनेके कलशोंसे वीर प्रभुका अभिषेक किया। इन्द्र मालायें पहनाईं।
ने उन त्रिलोकीनाथको दिव्य आभूषणों और वस्त्रोंसे अलंकृत किया, सुगन्धित दिव्य मालायें पहनाईं। मातको ज्ञानामृत
इस तरह इन्द्रने भगवानको खूब सजाया। पश्चात्, भगवानने, जन्म देनेवाली अपनी माताको ज्ञानामृत सैकड़ों
से सिंचित प्रभावशाली, सरल और मीठे शब्दोंमें सान्त्वना प्रदान की, भाइयोंको धैर्य बंधाया, सैकड़ों पश्चात्,
उपदेशों से तथा वैराग्य को उत्पन्न करनेवाले वाक्यों से अपनी दीक्षा की बात समझा दी। पश्चात्, भाई,
संयम-लक्ष्मीके सहवास-सुखमें उद्यमी वे वीर प्रभु खुशी के साथ समस्त राज्य-पाट, माता-पिता, भाई, दीक्षा
बन्धुओंको त्याग कर इन्द्र द्वारा लाई हुई देदीप्यमान चन्द्रप्रभा नाम की पालकी पर सवार हो, दीक्षा आभूषणों
के लिये वनकी ओर चले गये। उस समय वे जगतके स्वामी समस्त देवोंसे घिरे हुए, दिव्य आभूषणों
से युक्त, अत्यन्त सुन्दर मालूम होते थे।

सबसे पहले भूमिगोचरी देवोंने पालकीको उठाया और सात पैंड आगे ले जाकर रख दी। पश्चात्
विद्याधर आकाश-मार्गसे सात पैंड ले गये; उसके बाद धर्मसे प्रेम रखनेवाले समस्त देवोंने अपना-अपना
कन्धा लगाया और आकाश-मार्गसे चलने लगे। इस समयकी शोभा का वर्णन करना इसलिये असंभव
है कि, जिस पालकीको ले जानेवाले स्वयं इन्द्र और स्वर्गके देवता लोग हों, उसकी अनुपम छटा का

वर्णन क्या सामान्य लेखनी द्वारा हो सकता है? उस समय हर्षसे पुलकित समस्त देव पुष्पों की वर्षा कर रहे थे, वायुकुमार देव गङ्गाजलके कणोंसे युक्त मधुर पवन चला रहे थे, कुछ देव भेरी बजा रहे थे। इन्द्रकी आज्ञासे उन देवोंने यह घोषणा की कि भगवानका यह समय मोहादि शत्रुओंको जीतनेका है। यह सुन समस्त देवोंने हर्षित होकर प्रभुके सामने खूब उत्सव मनाया—'जयवन्त हो', 'आनन्दयुक्त हो', 'वृद्धि पाओ'—आदि शब्द होने लगे। दुन्दुभी बाजों के शब्द होने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगीं, किन्नरी देवियां मधुर शब्दमें मोहरूपी शत्रुको जीतनेका यश गान करने लगीं। प्रभुके आगे दिक्कुमारी देवियां मङ्गल-अर्घ लेकर चलने लगीं। इस प्रकार भगवान महावीर नगरसे वन को चले गये; नगर-निवासियों ने प्रभु की बहुत ही प्रशंसा की। कितने ही लोग यह भी कहते थे कि, अभी जिनराज कुमार ही हैं, फिर भी थोड़ी-सी उम्रमें इन्होंने काम-रूपी शत्रु को मार कर बड़ा भारी उच्च कोटि का काम किया है, और आज मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्तिके लिये तपोवनको चले गये हैं।

इस तरहके वाक्य सुन कर अन्य लोग भी इसी तरह कहने लगे कि मोहको तथा कामदेव-रूपी शत्रुको प्रभुने ही जीत पाया है, दूसरेमें यह सामर्थ्य नहीं है। उसके पश्चात् सूक्ष्म विचारवाले इस तरह कहने लगे कि यह सब वैराग्यका ही माहात्म्य है, जो अन्तरङ्ग शत्रुओंका नाश करनेवाला है। वैराग्य के प्रभावसे पंचेन्द्री-रूपी चोरोंको मारनेके लिये स्वर्गके भोग, तीन लोककी सम्पदायें त्याग दी जातीं हैं, क्योंकि जिसके हृदयमें पूर्ण वैराग्य का स्रोत बहता हो, वही चक्रवर्ती की विभूति को क्षण-भरमें त्याग सकता है। दरिद्र मनुष्य अपनी कच्ची झोपड़ी को भी छोड़ने में समर्थ नहीं है। कुछ मनुष्य यह भी कहते सुने गये कि यह बात सत्य है कि वैराग्यके बिना मन पवित्र नहीं हो सकता। इस तरह की बात-चीत करते हुए बहुतसे नगर-निवासी तमाशा देखने के लिये वनमें पहुँचे। किन्तु भगवानके दर्शन होते ही उनका मस्तक स्वयं झुक गया। इस प्रकार त्रिलोकीनाथ नगरके बाहर आ पहुँचे।

जब माताने भगवानके वन-गमनका सम्वाद सुना तो पुत्र-वियोगमें वह मूर्छित होकर कोमल बेलके

समान मुरझा गई। पश्चात् इस शोक को क्रमशः सहन करती हुई अनेक पुरजनों और बन्धुओंके साथ उनके पीछे-पीछे चलीं गईं। जातीं हुईं माता विलाप करतीं थीं कि हे बेटा! तू तो मुक्तिसे प्रेम लगाकर तपस्या करने चला, पर मुझे तेरे बिना कैसे चैन मिलेगा? किस तरह जीवन व्यतीत करूंगी? इस छोटी-सी अवस्थामें तपस्याके महान उपसर्गोंको किस प्रकार सहन करेगा? बेटा, शीत-कालकी भयङ्कर पवनमें जब तू दिगम्बर भेषमें वनमें विचरेगा, तब कैसे उस शीतको सहन करेगा? ग्रीष्म काल की ज्वालाओंसे समस्त वन जल जाता है, उस ज्वालाको कैसे सहेगा? श्रावण भाद्रकी काली घटाओंको देखकर अच्छे-अच्छे साहसियों के भी साहस छूट जाते हैं—बेटा! इन सब कष्टों को क्या तू सहन कर सकेगा? बस, ज्यों-ज्यों मेरा हृदय इन सब बातोंको विचारता है, त्यों-त्यों मुझे और भी कष्ट होता है। हे पुत्र, अति दुर्निवार इन्द्रिय-समूहोंको, त्रैलोक्य-विजयी कामदेवको और कषायरूपी महाशत्रुओंको धैर्यपूर्वक तू अपने वशमें कैसे कर सकेगा? बेटा! तू बालक है और अकेला है; फिर इस भयङ्कर वनकी गुफाओंमें किस प्रकार रह सकेगा? क्योंकि उन गुफाओंमें नाना प्रकारके हिंसक जङ्गली जीव रहा करते हैं! इस तरह जिनमाता अत्यन्त करुण स्वरमें विलाप करतीं हुईं मार्गमें अति कष्टसे पैरोंको बढ़ाती चली जा रहीं थीं, कि इतनेमें उनके पास महत्तर देव आये। उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा—"माता, क्या तुम इन्हें नहीं पहचानती? ये तुम्हारे पुत्र संसारके स्वामी और अनुपम शक्तिशाली जगद्गुरु हैं! आत्मवेशी संसाररूपी समुद्रमें अपने आपको विलीन कर लेनेके पहले ही अपना उद्धार तो कर ही लेंगे, साथ ही अन्य कितने ही भव्य जीवोंका भी उद्धार कर देंगे—यह ध्रुव सत्य है। जिस तरह कि भयानक सिंह भी मजबूत रस्सीसे जकड़ा जानेपर सहज ही में अपने वशवर्ती हो जाता है, उसी तरह तुम्हारे थे पुत्र भी मोहादि पराक्रमी शत्रुओं को तप-रूपी रस्सियोंसे बांधकर उन्हें अपने वशमें कर लेंगे। जिसके लिये संसार-रूपी समुद्रका दूसरा किनारा पा लेना कतई दुर्लभ नहीं है, ऐसा सामर्थ्यशाली तुम्हारा यह पुत्र भला दीनतापूर्वक कल्याणहीन गृहमें कैसे रह सकेगा? इनके ज्ञानरूपी तीन नेत्र हैं। संसारको इन्होंने सम्यक् रूपेण जान लिया है। फिर भला, वैराग्य उत्पन्न हो जानेपर कोई अन्धकूपमें क्यों गिरेगा? इसलिये हे माता, तुम इस पापरूपी शोक

को छोड़ दो। त्रैलोक्यको अनित्य समझ कर अपने घर जाओ और वहीं पर धर्म-साधनामें अपने मन को लगाओ। अपनी प्रिय एवं इच्छित वस्तुके वियोग-कालमें ज्ञानहीन पुरुष ही शोक किया करते हैं। जो ज्ञानी एवं बुद्धिमान होते हैं, वे सदैव संसारसे डरा करते हैं और कल्याणकारी धर्म की ही उपासना किया करते हैं।" महत्तर देवकी इन बातोंको सुन कर जिन-माता कुछ शान्त हो गयीं। उनके हृदयमें विवेकरूपी प्रकाशमयी किरणोंका प्रादुर्भाव हुआ और हृदयका शोकान्धकार दूर हो गया। वे अपने विशाल हृदय में पवित्र धर्मको धारण कर अपने कुटुम्बियों एवं भृत्यजनों को साथ लेकर राजमहल को वापस लौट गयीं। इसके बाद जिनेन्द्र महावीर प्रभु पार्श्ववर्ती देवोंके साथ मानव समाज का मङ्गल-गान आरम्भ करने के पूर्व खंका नामके विशाल वनमें संयम धारण करने के लिये पहुँचे। वह वन अत्यन्त रमणीक था। वहां फलपुष्पों से युक्त शीतल छायावाले सुन्दर-सुन्दर पेड़ थे जो अध्ययन एवं ध्यान के लिये अधिक उपयुक्त थे। महावीर स्वामी अपनी पालकीसे उतर कर 'चन्द्रकान्तमयी' एक स्वच्छ शिला पर बैठ गये। उस सुन्दर शिलाकी शोभा विचित्र थी। महावीर स्वामीके आने के पहले ही देवोंने आकर उस शिलाको सुरम्य बना दिया था। वह शिला गोलाकार थी। उस शिलापर विशाल वृक्षों की शीतल एवं घनी छाया पड़ रही थी। चन्द्रकिरणोंसे भींगी सुरभित जलकी बूंदें उस शिलापर छिड़की हुई थीं। बहुमूल्य रत्नोंके चूर्ण द्वारा स्वयं इन्द्राणीके हाथसे उस शिलापर साथिये बनाये हुए थे। ऊपर कपड़ेका मण्डप बना हुआ था। उसमें ध्वजा एवं रङ्ग-बिरङ्गी सुन्दर मालाएं टंगी हुई थीं। चारों ओर धूप का सुगन्धित धुंआ फैल रहा था और पासमें अनेक मङ्गल द्रव्य सजाये हुए थे।

महावीर स्वामी उस सुन्दर स्वच्छ शिलापर उत्तराभिमुख बैठ गये और मनुष्योंके कोलाहल शान्त हो जाने पर देह इत्यादि की इच्छा से विरक्त एवं मुक्ति-साधन में तत्पर होकर शत्रु-मित्रादि के प्रति उत्तम समान भाव का चिन्तवन करने लगे। उन्होंने क्षेत्र इत्यादि चेतन एवं अचेतन रूप बाह्य दस परिग्रहोंका, मिथ्यात्व इत्यादि चौदह अन्तरङ्ग परिग्रहोंका, और वस्त्र, अलङ्कार एवं माला इत्यादि

वस्तुओं का परित्याग कर दिया तथा मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र होकर शरीरादि में निस्पृहतापूर्वक
आत्म-सुख की प्राप्तिमें लग गये। प्रथम उन्होंने पल्यंकासन लगा कर मोह-बन्धनमें फँसानेवाले केशोंका
लोंच किया (केश उखाड़ डाले)। बाद्में जिनेश्वर महावीर स्वामी सम्पूर्ण पाप-क्रियाओंसे निर्मुक्त
होकर अट्ठाईस मूल-गुणोंके पालन करनेमें तत्पर हो गये। आतापनादि योगसे उत्पन्न उत्तम उत्तरगुणोंको
एवं महाव्रत, समिति तथा गुप्ति आदिको उन्होंने धारण किया। वे सबमें समताको देखने लगे और सम्पूर्ण
दोषों से हीन एवं सर्वश्रेष्ठ सामायिक संयम को उन्होंने स्वीकार किया। अन्त में उन्होंने मार्गशीर्ष
कृष्णा दशमी तिथिके सायंकाल, हस्त एवं उत्तरा नक्षत्रके मध्यवाले शुभ समयमें, दुष्प्राप्य जिन-दीक्षा
को ग्रहण किया। यह जिन-दीक्षा मुक्ति-रूपी कामिनी की सहचरी (सखी) के समान थी। महावीर
स्वामीके मस्तकमें चिरकाल रहनेके कारण परम पवित्र उनके केशों को स्वयं इन्द्रने रत्न-जटित मंजूषा
(पिटारी) में अपने हाथों से संवार कर रखा। फिर इन्द्र ने केशों की पूजा की, उन्हें उत्तम बहुमूल्य
वस्त्रोंसे ढांका और समारोहपूर्वक क्षीर समुद्रके स्वभावशुद्ध जल में डाल दिया। जब केश जैसी हीन
वस्तु का भी, जिनेश्वरके संसर्ग में रहने के कारण, इतना अधिक सम्मान किया जा सकता है; तब जो
पुरुष साक्षात् जिनेश्वर भगवान की निरन्तर पूजा सेवा में लगे रहते हैं, उन्हें संसार में कौन-सी ऐसी
अलभ्य वस्तु है, जो नहीं मिल सकती ? उनकी सेवासे सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। इस संसारमें जिन
भगवानके कमल-रूपी चरणोंके आश्रयमें आ जाने से जिस प्रकार यक्षों को सम्मान प्राप्त हो जाता है,
उसी प्रकार प्रभु अरहन्त का जो लोग सहारा लेते हैं, वे चाहे नीच पुरुष ही क्यों न हों, उनकी पूजा
होती है और उन्हें अत्यन्त आदर की दृष्टिसे देखा जाता है। इसके बाद महावीर स्वामी ने दिगम्बर-
रूप को धारण किया। जब वे दिगम्बर हो गये, तब उनका शरीर तपाया हुआ स्वर्ण जैसा प्रकाशमान
एवं तेजस्वी दीखने लगा। मानो, वह कान्ति एवं दीप्तिका स्वाभाविक तेजोमय समूह ही हो ! इसके
बाद परम प्रसन्न इन्द्र, परमेष्ठी महावीर प्रभु का गुण-गौरव-गान (स्तुति) करने लगे।

हे देव ! इस संसार में सर्वश्रेष्ठ परमात्मा तुम्हीं हो ! इस चराचर जगत् के स्वामी तुम्हीं हो। तुम जगद्गुरु हो, गुण-सागर हो, शत्रु-विजेता हो और अत्यन्त निर्मल तुम्हीं हो ! हे प्रभो, जब आपके असंख्य एवं अनन्त गुणोंका वर्णन स्वयं गणधरादि देव नहीं कर सकते, तब मन्दमति मैं कहां तक आपके महान गुण एवं ऐश्वर्योंका वर्णन कर सकूंगा ? ऐसा सोच कर यद्यपि मेरी बुद्धि जड़ हो जाती है तथापि आपके प्रति हमारी अचल भक्ति ही आपकी स्तुति करनेके लिये मुझे निरन्तर प्रोत्साहित कर रही है। हे योगीन्द्र ! जिस प्रकार कि, मेघके आवरण हट जाने पर सूर्यकिरणों की स्वाभाविक छटा बिखर पड़ती है, उसी तरह आज आपके वाह्य एवं आभ्यन्तर मलोंके एकदम नष्ट हो जानेके कारण, आपके निर्मल गुण-समूह प्रकाशमान हो रहे हैं। स्वामिन्, यद्यपि आपने इन्द्रिय-विषयजन्य चञ्चल सुखों को क्षणस्थायी जान कर छोड़ दिया है, तथापि आपकी इच्छा अत्यन्त उत्कृष्ट आत्म-सुखकी प्राप्तिके लिये लालायित है। अतः आपको 'निस्पृह' (इच्छाहीन) कैसे कहा जा सकता है ? यद्यपि आपने स्त्रीके शरीरको नितान्त हेय, घृणित एवं अस्पृश्य समझ कर उस परसे अपना अनुराग (प्रेम) हटा लिया है, तथापि मुक्ति-रूपी स्त्रीमें तो आपका अनन्य अनुराग बना हुआ है। फिर आपको हम 'वीतराग' (प्रीति-रहित) भी कैसे कह सकते हैं? जिन्हें लोग 'रत्न' कहा करते हैं, यद्यपि उन पत्थरोंको आपने त्याग दिया है, तथापि सम्यक्दर्शन आदि रत्नत्रय को आपने धारण कर लिया है। फिर आपको त्यागी भी कैसे कहा जाय ? यद्यपि आपने क्षणभंगुर राज्य-सत्ताको पापका आश्रय जान कर छोड़ दिया है, तथापि नित्य, अनाशवान् एवं अनुपमेय त्रैलोक्य के विशाल राज्य पर एकाधिपत्य तो आपही स्थापित करने जा रहे हैं। फिर आप निस्पृह कैसे रहे ? (यह निन्दा-स्तुति है।) हे जगत् के स्वामी, आपने इस संसार की चञ्चला लक्ष्मी का परित्याग करके लोकोत्तर सम्पत्ति मोक्ष-लक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा की है, फिर आपको इच्छा-रहित कैसे समझा जाय ? हे देव, यद्यपि आपने अपने ब्रह्मचर्य-रूपी तीक्ष्ण वाणोंसे अपने शत्रु कामदेवको परास्त कर दिया है, तथापि कामदेव की स्त्री रतिको आपने विधवा भी बना दिया है। फिर आप कृपालु कहां रहे ? हे नाथ,

आपने अपने ध्यान-रूपी अस्त्रसे मोह-नृपतिके साथ ही साथ अन्य सब कर्म-रूपी शत्रुओंका नाश कर डाला है। फिर आपके हृदयमें दयालुता कहां रही? हे प्रभो, यद्यपि आपने अपने गिने गिनाये अल्पसंख्यक बन्धुओं का परित्याग कर दिया है, तथापि अब तो स्वयं अपने गुणोंके प्रभावसे सम्पूर्ण जगतको बन्धु बनाने जा रहे हैं; फिर आपको कैसे कोई बान्धवहीन कह सकता है? हे चतुर, आपने सांसारिक भोगोंको सर्पकी कांचुली के समान छोड़ कर शुक्ल-ध्यान-रूपी अमृत को पी लिया है; फिर आपका 'प्रोषध-व्रत' कैसे होगा?

हे स्वामिन्! आपकी इस दीक्षाको बुद्धिमानोंने आदर की दृष्टि से देखा है और इसने संसारके दाहको एकदम शान्त कर दिया है। आपकी यह परम पवित्र महादीक्षा पुण्यधाराके समान सदैव हम भव्य-जीवों की रक्षा करे। हे देव, मन, वचन एवं काय की विशुद्धतापूर्वक सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर देनेवाली दीक्षाको आपने ग्रहण किया है। इसी महादीक्षाके बल पर मोक्ष चाहनेवाले आपको नमस्कार है। आप शरीर आदिके सुखसे मुख मोड़ चुके हैं, मोक्ष-मार्गमें निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं, तप-रूपी लक्ष्मीसे प्रीति करनेवाले हैं, अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रहों को छोड़नेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

हे ईश! सम्यक्दर्शन ज्ञान, चारित्र-रूप तीन बहुमूल्य आभूषणोंसे अलंकृत, किन्तु अन्य पार्थिव आभूषणोंसे हीन, आपको नमस्कार है। आपने सम्पूर्ण वस्त्रोंका परित्याग कर शून्य दिशा-रूपी वस्त्रोंको धारण किया है, ईश्वरत्व प्राप्तिकी साधनामें सोत्साह प्रवृत्त हैं; अतः आपको नमस्कार है। हे जिनेश्वर, आप सकल परिग्रहोंसे हीन एवं गुण-रूपी सम्पत्तियोंसे युक्त हैं, आपको मुक्ति अत्यन्त प्यारी है; इसलिये आपको नमस्कार है। हे नाथ, आप इन्द्रियातीत अक्षय सुखमें चित्तको लगानेवाले विरक्त पुरुष हैं, उपवास करके शुक्ल-ध्यान-रूपी अमृतके भोक्ता हैं, आपको नमस्कार है। हे देव, आप दीक्षित होकर ज्ञान-रूपी चार नेत्रों के धारक हैं; बाल ब्रह्मचारी हैं, तीर्थेश हैं और स्वयं बुद्ध हैं; आपको नमस्कार है। आप कर्म-रूपी शत्रुओं की सन्तति के नाशकर्त्ता हैं, गुणसागर हैं, और श्रेष्ठ क्षमा इत्यादि शुभ-लक्षणों से युक्त हैं; आपको नमस्कार है। हे देव, इस संसारकी सम्पूर्ण आशाओं को पूर्ण करनेवाले हैं, परन्तु हम जो आपकी स्तुति

कर रहे हैं, वह संसारकी श्रेष्ठ सम्पत्तियों को पानेके लिये नहीं करते; किन्तु जिस शक्तिके प्रभाव से बाल्यावस्थामें ही आपने तप-दीक्षा ग्रहण की है, वही अतुलनीय शक्ति हमें भी प्राप्त हो। इस तरह देवोंके इन्द्रने महावीर भगवान् की पूजा, स्तुति एवं नमस्कार करके अपार पुण्य का उपार्जन किया।

इसके बाद महावीर स्वामीने निश्चेष्ट होकर अपने सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका अवरोध किया एवं कर्म-रूपी शत्रुओंके नाशक योग-क्रियाका अवलम्बन किया। उस समय वे चेष्टाशून्य, सुन्दर पत्थर की मूर्त्ति के समान जान पड़ते थे। उस परमोत्तम ध्यानके प्रभावसे चतुर्थ मनःपर्यय ज्ञान प्रादुर्भूत हुआ, जो कि महावीर प्रभुके लिये केवलज्ञान प्राप्त होने का निदर्शन था। मनुष्यादि योनियोंमें प्राप्त होनेवाली सुख-सम्पदाओं को महावीर प्रभुने निर्विकार होकर एवं उन्हें तुच्छ तृणके समान जान कर छोड़ दिया और अविलम्ब दीक्षा ग्रहण कर ली। उन अनुपमेय महान् गुणशाली श्री वीरनाथ की मैं स्तुति करता हूँ और नमस्कार करता हूँ।

त्रयोदश प्रकरण

ध्यान मग्न हो सोचते, मुक्ति-कामिनी सङ्ग।
निज गुण दें अर्हन्त प्रभु, बाधा-रहित निसङ्ग॥

अर्थात् परिग्रहसे हीन एवं निर्बाध होकर मुक्तिरूपिणी स्त्री से सुख-प्राप्ति की अभिलाषावाले और ध्यानमें तल्लीन महावीर प्रभुको मैं नमस्कार करता हूं। वे अपने वीर-जनोचित गुणोंको हमें प्रदान करें।

इसके बाद महावीर स्वामी यद्यपि छः मास पर्यन्त अनशन तप करनेमें पूर्ण योग्य थे; तथापि अन्य मुनीश्वरोंको चर्या-मार्गकी प्रवृत्ति दिखाने की इच्छासे उन्होंने 'पारणा' कर लेने का निश्चय किया। यह पारणा (उपवासके बादका आहार) शरीरकी स्थितिको शक्ति प्रदान करती है। महावीर प्रभु ईर्यापथकी शुद्धिको ध्यानमें रख कर विचारने लगे—आहार-दान देनेवाला निर्धन है या धनवान? इसका दिया हुआ आहार-दान पवित्र है अथवा अपवित्र? इस प्रकार वे अपने चित्तमें तीन प्रकारके वैराग्य का चिन्तवन करते हुए

अनेक दानियोंको अपने वचनसे सन्तुष्ट करते हुए स्वयं विशुद्ध आहार की खोजमें घूमने लगे। वे न तो
मन्दगतिसे चलते थे और न एकदम तीव्रगतिसे ही। साधारण-सी चालसे पैरोंको बढ़ाते हुए उन्होंने
'कूल' नामके एक सुन्दर नगरमें प्रवेश किया। उस नगरका राजा 'कूल' अत्यन्त परिश्रमके बाद प्राप्त हुए
प्रिय धन-कोश (खजाना) की तरह अनायास ही आये हुए जिनदेव जैसे उत्तम पात्र को देख कर परम
प्रसन्न हुआ। 'कूल' राजाने महावीर स्वामी की तीन प्रदक्षिणा दी और भूमि पर पांच अङ्गों को फैला
कर प्रणाम किया। बादमें आनन्दोल्लासके कारण 'तिष्ठ'-'तिष्ठ' (ठहरिये, ठहरिये) ऐसा कहा। धर्म-बुद्धि
राजाने प्रभुको एक पवित्र एवं ऊँचे स्थान पर बैठाया और उनके कमल जैसे सुन्दर एवं कोमल चरणों
को पवित्र जलसे धोया। उन प्रभुके पाद-प्रक्षालित जलको राजाने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें लगाया। इसके
बाद राजाने जलादि आठ प्रकारके प्रासुक द्रव्योंसे प्रभु की भक्तिपूर्वक पूजा की। राजाने अपने मनमें
विचारा कि आज घरमें सुपात्र उत्तम अतिथिके आ जानेसे मेरा गार्हस्थ्य-जीवन सफल हुआ। मैं पुण्य-
कर्मा हूं। इस पवित्र विवेकसे राजाका मन और भी विशेष पवित्र हो गया। 'हे देव, हे प्रभो, आज आपके
आगमनसे मैं धन्य हो गया, आपने मेरे घरको परम पवित्र बना दिया—ऐसा कहनेसे राजा का वचन
पवित्र हो गया। 'पात्र-दान करने से मेरा हाथ एवं शरीर पवित्र हो गया'—ऐसा सोचने से राजा की
काय-शुद्धि हो गयी। उसने कृत आदि दोषों से हीन प्रासुक अन्न से होनेवाले विमल आहार-दानसे
'एषणा' को शुद्ध किया। इस प्रकार उस 'कूल' राजाने नवधा-भक्ति द्वारा महान पुण्यका उपार्जन किया।

'यह परम दुर्लभ उत्तम पात्र मेरे ही भाग्यसे प्राप्त हुआ है; इसलिये मेरा यह आहार-दान सविधि एवं
पूर्णरूपेण सम्पूर्ण है'—ऐसा श्रेष्ठ विचार करके वह राजा अत्यन्त श्रद्धाशील बन कर अपनी शक्तिके
अनुसार पात्र-दानके महान् उद्योगमें लग गया। उस महादानके प्रभावसे उत्पन्न अजस्र रत्नवृष्टि एवं
कीर्तिकी अभिलाषा उस राजाने नहीं की। वह सेवा, पूजा इत्यादिके द्वारा प्रभुकी भक्तिमें लग गया और
धर्म-सिद्धिके निमित्त वह जो अन्य कर्मोंको किया करता था, उन सबको तिलाञ्जलि दे दी। उस राजाने

सोचा कि, यह प्रासुक आहार है और दान देनेका यही श्रेष्ठ समय है। यह संयमशील पुरुष उपवासोंके उन असह्य क्लेशोंको धैर्यपूर्वक सहन कर लेते हैं; इसलिये इन्हें उत्तम विधिसे आहार देना ही चाहिये। इस प्रकार राजाने महान् फलको देनेवाले श्रेष्ठदाताके उत्तम गुणोंको अपनेमें ग्रहण किया। इसके बाद राजाने हितकारक उत्तम पात्रको मनसा-वाचा-कर्मणासे पवित्र होकर श्रद्धा-भक्तिके साथ विधिपूर्वक क्षीर का आहार-दान दिया। वह विशुद्ध आहार प्रासुक एवं स्वादिष्ट था, निर्मल तपको बढ़ानेवाला था, और क्षुधा-पिपासाको शान्त करनेवाला था। उस राजाके दानसे देवता लोग बहुत प्रसन्न हुए और पुण्योदय के कारण राज-प्रासादके आंगनमें रत्नोंकी अविरल वर्षा हुई। उस रत्न-वर्षाके साथ ही साथ पुष्प-वृष्टि एवं जल-वृष्टि भी हुई। उसी समय आकाश-मण्डलमें 'दुन्दुभि' इत्यादि बाजोंकी गम्भीर तुमुल-ध्वनि हुई। उन वाद्योंके मधुर स्वरोंको सुननेसे ऐसा जान पड़ता था; मानो, वे राजाके पुण्य एवं उत्तम यश का गम्भीर स्वरमें गान कर रहे हों! उसी समय देव भी 'जय-जय' इत्यादि शुभ शब्दों का उच्चारण करते हुए कहने लगे—हे प्राणियो, यह परमोत्तम पात्र श्री महावीर प्रभु दाता को इस संसार-रूपी महा समुद्रसे अनायास ही पार उतार देनेवाले हैं। वह दाता निश्चय ही अत्यन्त भाग्यशाली एवं धन्य है, जिसके यहां जिनराज स्वयं पहुँच जांय। ऐसे उत्तम दानके प्रभावसे दाताको स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्त होता है। इस लोकमें तो तुम लोगोंने देखा ही होगा कि—उत्तम पात्रको दान देनेसे बहुमूल्य अपार रत्न-राशिकी प्राप्ति होती है एवं विमल यशका विस्तार होता है। वैसे ही परलोकमें भी स्वर्ग-संपदायें एवं भोग-विभूतियां प्राप्त होतीं हैं, जिनके द्वारा चिरकाल तक आनन्दोपभोग किया जाता है। रत्नवृष्टि के कारण राज-महलका आंगन भर गया। आंगनमें पड़ी हुई उन रत्नों की ढेर को देख कर बहुतसे लोग परस्परमें कहने लगे कि देखो, दानका फल कैसा उत्तम है? आँखोंसे देखते ही देखते यह राज-प्रासाद बहुमूल्य रत्नों की वर्षा से भर गया! दूसरे ने कहा—यहां क्या देखते हो! इस अत्यन्त सामान्य फलको ही तुम अपनी आँखों से देख रहे हो। उत्तम पात्र-दान से तो स्वर्ग एवं मोक्षके अक्षय सुख

अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। इन लोगों के कथोपकथन को सुन कर एवं अपनी आँखों से प्रत्यक्ष पात्र-दान की महिमा को देख कर बहुतसे जीव स्वर्ग एवं मोक्ष फलकी कल्पना करने लगे और पात्र-दान की महत्ता में विश्वास करने लगे।

आहार-दानके समय वीतराग श्री महावीर तीर्थङ्करने अपने शरीर की स्थितिके विचार से अञ्जलि-रूपी पात्रके द्वारा खीरका आहार ग्रहण किया और इस आहार-ग्रहणके उत्तम फलसे राजाको अनुग्रहीत एवं उसके घरको पवित्र कर पुनः वनको चले गये। राजाने भी अपने जन्म-गृह एवं धनको अप्रत्याशित पुण्य-प्रभावसे प्राप्त समझा और वे अपना अहोभाग्य समझने लगे। इस श्रेष्ठ दानका मन-वचन-काय द्वारा अनुमोदन करनेके कारण, अर्थात् दाता एवं पात्र की प्रशंसा करके बहुतसे लोगोंने दाताके समान ही उत्तम पुण्य का उपार्जन कर लिया।

उधर जिनेश्वर महावीर प्रभु नाना देशके अनेक नगर, ग्राम एवं वन-उपवनोंमें वायुकी तरह स्वच्छ गतिसे विचरने लगे। वे ममता-मोहसे रहित थे और योग-ध्यानादि की सिद्धि के लिये सिंहके समान निर्भय होकर रात्रिके समयमें भी पर्वत की अन्धेरी गुफामें, श्मशानमें और एकदम भयङ्कर निर्जन वनमें रहते थे। क्रमशः, छट्ठे और आठवें उपवाससे आरम्भ कर छः मास तकके अनशन तपको करते थे। किसी पारणाके दिन तो वे अवमौदर्य तप और किसी पारणाके दिन लाभान्तरायकी इच्छासे पापोंको दूर करनेके लिये 'चतुष्पक्षादिकी' प्रतिज्ञा करके व्रत-परिसंख्यान तप करते थे। कभी निर्विकारता पानेके लिये रस-त्याग तप करते थे एवं कभी उत्तम ध्यानके लिये वनादिके एकान्तस्थलमें शय्यासन तपको करते थे। वर्षाकाल में जब कि सारी प्रकृति झंझावातके उग्र आलोड़नसे थर्राती हुई दृष्टिगोचर हो रही थी, तब महावीर प्रभु धैर्य-रूपी-कम्बल को ओढ़ कर किसी वृक्षके नीचे समाधि लगाये रहते थे। शीतकालमें वे किसी चतुष्पथ (चौराहे) पर अथवा सरिता-तट पर ध्यानमें मग्न रहते थे। इस प्रकार कितने ही वृक्षोंको ज़ला देनेवाला भयंकर हिम-प्रपातको वे अपने ध्यान-रूपी अग्नि-अङ्गारसे जला दिया करते थे। ग्रीष्मकालमें

जब कि चारों ओर अग्नि-वर्षा हुआ करती थी, तब सूर्य की किरणोंसे भीषण तपे हुए पर्वतके शिला-खण्डों पर अपने ध्यान-रूपी शीतल अमृत-जलका सिंचन किया करते थे। इस प्रकार वर्षा, शीत एवं ग्रीष्म ऋतुओंमें शारीरिक सुखकी हानिके लिये कायक्लेश तप की साधनामें तत्पर रह कर नितान्त दुष्कर छः प्रकारके बाह्य तपोंका महावीर प्रभुने पालन किया। उन्हें प्रायश्चित्तादि तपकी कोई आवश्यकता नहीं थी; इसलिये महावीर प्रभु अपने प्रमादशून्य एवं विजितेन्द्रिय मनको विकल्प-रहित करके कायोत्सर्ग-पूर्वक कर्म-रूपी शत्रुओंका समूल नाश करनेके लिये आत्म-ध्यानमें ही लगे रहते थे। वह ध्यान, कर्म-रूपी वनको जला देनेके लिये प्रचण्ड अग्निके समान है, एवं परमानन्द का दाता है। इस आत्म-ध्यान में लीन होकर सम्पूर्ण आस्रवों को रोक देनेसे महावीर स्वामी के सब आभ्यन्तर तप तो पहले ही हो चुके थे। इस रीतिसे महावीर प्रभुने अपनी शक्तियोंके प्रकट हो जाने पर भी, चिरकाल तक दत्तचित्त होकर बारह प्रकारके श्रेष्ठ तपोंकी साधनामें तत्पर रहे। इसके बाद प्रभु महावीर क्षमा-गुणसे युक्त होकर पृथ्वीके समान अचल एवं प्रसन्न, विमल स्वभावके कारण निर्मल, स्वच्छ जलके समान शोभित हुए। वे दुष्ट कर्म-रूपी जङ्गलों को जलानेवाले अग्नि थे एवं कषाय तथा इन्द्रिय-रूपी शत्रुओं को मारनेवाले दुर्द्धर योद्धा थे। वे निरन्तर अपनी धार्मिक प्रवृत्तिके द्वारा धर्म-साधन में तत्पर रहते थे और इहलोक एवं परलोक में अपार सुखों को प्रदान करनेवाले क्षमा आदि दश लक्षणों से युक्त थे।

अतुलनीय पराक्रमशाली महावीर प्रभु ने भूख, प्यास आदि स्वाभाविक रोग से उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण कठिन परीषहोंको एवं वनके अत्युग्र उपद्रवोंको अपनी विलक्षण शक्तिके प्रभावसे जीत लिया और उत्तम ज्ञान-प्राप्तिके लिये अतिचार-रहित एवं भावना-सहित पञ्च महाव्रतोंका पालन किया। पांच समिति एवं तीन गुप्ति—इन आठ का नित्यशः पालन करते एवं इनके द्वारा कर्म-धूलि को नष्ट करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। वे महावीर प्रभु श्रेष्ठ निवेदनशील थे; इसलिये निरलस होकर सम्पूर्ण अन्यान्य गुणोंके साथ ही सारे मूल-गुणों की पालना में सचेष्ट होकर किसी भी दोष को स्वप्नमें भी

अपने पास नहीं फटकने देते थे। इस प्रकारके परमोज्वल चारित्रयुक्त महावीर प्रभु सम्पूर्ण पृथ्वी पर विहार करते हुए उज्जयिनी नाम की एक महानगरीके 'अतिमुक्त' नामक श्मशानमें जा पहुँचे। उस महा भयानक श्मशानमें पहुँच कर महावीर प्रभुने मोक्ष प्राप्तिके लिये शरीर का ममत्व छोड़ कर 'प्रतिमायोग' धारण कर लिया और पर्वतके समान अचल भावसे अवस्थित हो गये। सुमेरु पर्वतके उन्नत शृङ्गके समान एवं परमात्माके ध्यानमें लीन श्री जिनेन्द्र महावीर प्रभु को देख कर, उनके धैर्य की परीक्षा करने के लिये वहांके स्थाणु नामक अन्तिम रुद्र महादेव को, उपसर्ग करने की इच्छा हुई। इसी समय पूर्वकृत कुछ पापों का भी उदय जिनेन्द्रके होनेवाला था। वह स्थाणु रुद्र अनेक भयङ्कर एवं नाम-कृति स्थूलकाय पिशाचों को अपने संग लेकर महावीर स्वामीके ध्यानको भङ्ग करनेके लिये प्रस्तुत हुआ। रात्रिके समय में वह स्थाणुरुद्र अपने बड़े-बड़े रक्तवर्ण नेत्रों को फाड़ कर देखते हुए जिनेन्द्र प्रभु के सन्मुख आया। उस समय वह किलकारियां मार रहा था, नुकीले भयानक दांतों को दिखा-दिखा कर अट्टहास कर रहा था। भगवानका ध्यान भङ्ग करनेके लिये प्रचण्ड ताल, स्वर एवं लयमें गा-बजा कर नाच रहा था; साथ ही विशाल मुख-विवरको फाड़े हुए और हाथोंमें तीक्ष्ण आयुधोंको धारण किये हुए था। इस प्रकार के महा भयोत्पादक स्वरूपको लेकर वह महावीर स्वामीके सन्मुख आया और उनके ध्यानको भङ्ग करने के लिये उन पर बड़ा भारी उपसर्ग किया। परन्तु, इन उपद्रवों का महावीर प्रभु पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उनका ध्यान यथापूर्व अचल एवं अटूट बना रहा। जब इतना करने पर भी जिनेन्द्रके ध्यान को वह रुद्र भङ्ग नहीं कर सका, तब उसने दूसरे उपायों का अवलम्बन किया। स्थाणुरुद्र सर्प, सिंह, हाथी प्रबल वायु एवं अग्नि इत्यादिके रूपमें आकर तथा उत्पीड़क वचनों के द्वारा उग्र उपसर्गोंको आरम्भ किया। इन उपसर्गोंसे निर्बल-हृदयोंमें तो भयका संचार हो सकता था, किन्तु महावीर भगवानके हृदय में डर कहां? वे तो बराबर अचल ही बने रहे। उनका ध्यान भङ्ग होना तो दूर रहा, उत्तरोत्तर ध्यानकी गम्भीरता बढ़ती ही गयी। जब स्थाणुरुद्र को इतने पर भी सफलता नहीं

मिली, तब वह अन्य प्रकार के घोर उपसर्गों को करने लगा। भीलों के रूप धारण कर भयानक शस्त्रास्त्रोंको दिखा कर प्रभुके हृदयमें भय उत्पन्न करना चाहा, परन्तु इन अनेक उग्र उपद्रवोंसे प्रपीड़ित होते रहने पर भी जगत्स्वामी जिनेन्द्र महावीरस्वामी रञ्चमात्र चलायमान नहीं हुए एवं पर्वत के समान एकदम अचल बने रहे; किंचिन्मात्र भी खिन्नता का आभास उनके मुखाकृतिसे नहीं मिला। आचार्य ने कहा है कि—सम्भव है कि अचल पर्वत भी चलायमान हो जाय, परन्तु श्रेष्ठ योगियों का चित्त हजारों उग्र उपद्रवोंके द्वारा भी कदापि चलायमान नहीं हो सकता। इस संसारमें वे ही लोग धन्य हैं, जो कि ध्यानमग्न हो जाने पर, अनेक उग्र उपद्रवों के होते रहने पर भी विकारयुक्त होकर ध्यान भङ्ग कदापि नहीं होने देते।

इसके बाद जब जिनेन्द्र महावीर स्वामीके ध्यान को भङ्ग करने में स्थाणुरुद्रको कुछ भी सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं रही, तब हताश एवं लज्जित होकर वहीं उनकी स्तुति करने लग गया— "हे देव, इस संसारमें तुम्हीं बली हो, तुम्हीं जगद्गुरु हो एवं वीर-शिरोमणि हो; इसीलिये तुम्हारा नाम 'महावीर' है। तुम महाध्यानी हो, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हो, सकल परीषहोंके विजेता हो, वायु के समान निःसंग वीर हो एवं कूलाचल की तरह अचल हो। तुम क्षमामें पृथ्वीके समान, गम्भीरतामें समुद्रके समान और प्रसन्नचित्त होनेके कारण निर्मल जलके समान हो। कर्म-रूपी जङ्गलको नष्ट करने के लिये आप अग्नि-अङ्गार के समान हैं। हे प्रभो, तुम त्रिलोकी में वर्द्धिष्णु हो एवं श्रेष्ठ बुद्धिशाली होनेके कारण 'सन्मति' हो। तुम्हीं महाबली और परमात्मा हो। हे नाथ, आप निश्चल रूपके धारण करनेवाले हैं एवं प्रतिमा-योगके धारण करनेवाले हैं। आप परमात्मा-स्वरूप हैं, आपको सदैव नमस्कार है।" इस प्रकार स्थाणुरुद्रने महावीर प्रभु की स्तुति करके नमस्कार किया और भगवानके प्रति ईर्ष्या छोड़ कर अपनी प्रिय पत्नी पार्वतीके साथ आनन्दित होकर अपने स्थानको चला गया। जब महापुरुषों के योगजन्य साहस एवं शक्ति को देख कर दुर्जन भी परम आनन्दित हो जाते हैं, तब सत्पुरुषों का

तो कहना ही क्या ? सज्जनों का तो दूसरों के गुणों पर मुग्ध हो जाने का स्वभाव ही होता है।

इसके बाद किसी 'चेटक' नामके राजा की पुत्री, जिसका नाम चन्दना था एवं जो महा पतिव्रता थी, वह जब वन-क्रीड़ामें लीन थी, तब शीघ्र ही उसको उठा ले गया। बादमें उसे अपनी स्त्रीका ध्यान आया और स्त्रीके अमंगलके भयसे विद्याधरने सती चन्दनाको एक भयानक वनमें तत्क्षण छोड़ दिया। चन्दनाने निश्चय किया कि सम्प्रति उसके पाप-कर्मोंका उदय हुआ है; इसलिये वह पञ्च-नमस्कार मन्त्रों को जपती हुई धर्म-साधनामें तत्पर हो गयी। वहां पर एक भीलों का राजा आया। वनमें चन्दनाको देख कर धनप्राप्ति की इच्छा से उसे उठा कर वृषभसेन नामके एक सेठ को बेच दिया और बदले में प्रचुर धन पाया। उस सेठकी सुभद्रा नामकी एक स्त्री पहलेसे थी; जब उसने देखा कि एक अत्यन्त रूपवती युवती स्त्री यहां आयी है, तब उसने सोचा कि यह अवश्य ही मेरी सौत होने को आयी है। ऐसा सोच कर उस सेठानीने चन्दनाके आकर्षक रूपको ही बिगाड़ डालने की इच्छा की एवं इसलिये कोदोका भात मिट्टी के बर्तनमें रख कर उसको प्रतिदिन खाने देना आरम्भ कर दिया। खिला चुकनेके बाद वह चन्दनाको लोहे की सांकलसे बांध दिया करती थी। परन्तु इस दारुण यन्त्रणामें भी चन्दनाके मनमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं हुआ और अपने धर्म-कर्म पर वह सदा दृढ़ रही। यह कौशाम्बी नगरी की घटना है।

घटनाचक्रसे एक दिन उसी कौशाम्बी नगरी में राग-शून्य महावीर प्रभु काय की स्थिरताके लिये आहार-ग्रहण करने की इच्छासे वहां आये। उत्तम पात्र महावीर प्रभुको देखते ही चन्दना स्वयं बंधनमुक्त हो गयी। पुण्योदयके प्रभाव से एवं पात्र-दान की इच्छा से वह प्रभु के पास पहुँची। वस्त्राभूषणों से अलंकृत चन्दना सतीने प्रभुको विधिपूर्वक नमस्कार किया और बादमें भक्तिपूर्वक पड़गाहा।

आहार-दानके लिये उसके पास केवल कोदो का भात था, किन्तु उस सतीके शील की महिमासे कोदो का भात भी सुगन्धित एवं सुस्वादु चावलों का भात हो गया और वह मिट्टी का बर्तन एक सुन्दर सोने का पात्र हो गया। पुण्य-कर्म का प्रभाव ऐसा ही आश्चर्यचकित कर देनेवाला होता है।

वह पुण्य-प्रभाव असम्भव बात को भी अनायास ही सम्भव कर दिखाता है। निःस्सन्देह इसके द्वारा सभी तरहकी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जातीं हैं। इसके बाद उसने प्रसन्नतापूर्वक पुण्य-रूप नव प्रकार की भक्तियोंके साथ महावीर प्रभुको आहार-दान दिया। तत्क्षणोपार्जित आहार-दान-रूपी महा पुण्यके प्रताप सें सती चन्दनाको रत्न-वर्षा, पांच आश्चर्यप्रद वस्तुएँ एवं निज पारिवारिक कुटुम्ब प्राप्त हुए। देखो; श्रेष्ठ दानसे क्या नहीं मिलता ? सभी वस्तुएँ दानके प्रभावसे हाथ में आ सकतीं हैं। उत्तम दान के प्रभावसे चन्दना का निर्मल यश सम्पूर्ण संसारमें फैल गया और बान्धव-मिलन भी हो गया।

इसके बाद महावीर प्रभु छद्मस्थ अवस्थामें मौनी होकर विहार करने लगे। बारह वर्ष बीत जाने पर वे जृम्भिका नामके गांवके बाहर ऋजुकूला नामकी नदीके किनारे शाल-वृक्षके नीचे बहुमूल्य रत्नोंकी शिला पर प्रतिमायोग धारण कर षष्ठोपवासी हो गये और श्रेष्ठ ज्ञानकी सिद्धिके लिये ध्यानमें तत्पर हुए। उन्होंने शीलरूपी अठारह हजार कवचोंको धारण किया, चौरासी लाख गुणोंको अपना आभूषण बनाया, महाव्रत अनुप्रेक्षा शुभ भावना-रूपी वस्त्रोंसे वे सुसज्जित हुए, संवेग-रूपी महा गजराज पर आरुढ़ हुए और रत्नत्रय-रूपी महावाणोंको धारण कर चारित्र-रूपी समर-भूमिमें उतर पड़े। तप ही उनका धनुष था, ज्ञानदर्शन ही फणीच था। गुप्ति आदि सेनाओंसे वे घिरे हुए थे। इस प्रकार महावीर प्रभु यथार्थ में ही 'महावीर' (महान् योद्धा) होकर कर्म-रूपी दुष्ट शत्रुओंको मारनेके लिये अनवरत उद्योगमें तत्पर हो गये। सर्वप्रथम वे मोक्ष-प्राप्ति की अभिलाषा से सकल कर्मनाशक एवं शरीरहीन सिद्ध पुरुषों का सम्यक्त्वादि आठ गुणोंसे युक्त ध्यान करने लग गये। जो सिद्ध पुरुषोंके श्रेष्ठ गुणोंके अभिलाषी हैं, वे क्षायिक-सम्यक्त्व, अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु और अव्याबाध—इन आठ श्रेष्ठ गुणोंका सदैव ध्यान करते रहते हैं; क्योंकि उन्हें ऐसा ही करना चाहिये। इसके बाद विवेकशील महावीर प्रभु पवित्र मनसे आज्ञाविचय इत्यादि चार प्रकारके धर्म-ध्यानोंके चिन्तवन में लगे। पूर्वके चार कषाय, मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियां और देवायु, नरकायु एवं तिर्यंचायु—ये सब

कर्म-रूपी दस शत्रु प्रभुके चतुर्थसे सप्तम गुण स्थानमें अवस्थित होते ही स्वयं ही नष्ट हो गये । इन कर्म-
रूपी महाशत्रुओंको नष्ट करके विजयी महायोद्धाके समान महावीर प्रभु शुक्ल-ध्यान-रूपी विशाल आयुध
को अपने हाथोंमें ग्रहण कर मोक्ष-रूपी राज-प्रासादको प्राप्त करनेके लिये क्षपकश्रेणी-रूपी सीढ़ियों पर
चढ़ने लगे और मार्गके अन्य कर्म-रूपी शत्रुओंके नाशमें प्रवृत्त हुए । प्रथम अंशमें स्त्यानगृद्धि नाम के
दुष्ट-कर्म, निद्रा-अनिद्रा,प्रचला-प्रचला,नरकगति,तिर्यञ्चगति, एकेन्द्री-द्विइन्द्री-त्रिइन्द्री-चतुरिन्द्री-रूपी चार
जातियां, अशुभ नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म,
साधारण इत्यादि कर्म-रूपी सोलह शत्रुओं को महावीर प्रभुने पराक्रमी वीर की तरह नष्ट कर दिया ।
तदुपरान्त वे शुक्ल-ध्यान-रूपी तलवारको ग्रहण किये हुए और क्रमशः चारित्रके घातक आठ कषायों को
द्वितीय अंशमें, नपुंसक वेदको तृतीय अंशमें, स्त्री वेदको चतुर्थ अंशमें, हास्यादि छः को पञ्चम अंशमें,
पुरुष वेदको षष्ठ अंशमें, संज्वलन क्रोध को सप्तम अंशमें, संज्वलन मान को अष्टम अंशमें, संज्वलन
मायाको नवम अंशमें, अपने शुक्ल-ध्यान-रूपी आयुधसे इन सबोंका नाश कर दिया । इस प्रकार कर्म-
रूपी शत्रुओं की अनेक सन्ततियोंको नष्ट कर महावीर प्रभु दशवें गुणस्थान पर आरूढ़ हुए और वहां
उस शुक्ल-ध्यानके प्रभावसे संज्वलन लोभको नष्ट कर क्षीणकषायी हो गये । वे सेना सहित मोह-कर्म-
रूपी राजाको नष्ट कर शूर-शिरोमणिके समान शोभायमान हुए । बादमें ग्यारहवें गुण-स्थानको पार कर
वे बारहवें गुण-स्थान को प्राप्त हुए और वहां केवल-ज्ञानके उत्तम राज्यका अधिकार प्राप्त होने के लिये
प्रयत्नशील हुए । महावीर प्रभुने बारहवें गुण-स्थानके अन्तिम दो समयों में से पूर्व समय में निद्रा एवं
प्रचला—इन दोनों कर्मोंका नाश किया । इस कार्यमें उन्हें शुक्ल-ध्यानके दूसरे भागसे सहायता मिली ।
इसके बाद फिर जगद्गुरु महावीर स्वामी ने शुक्ल-ध्यान के दूसरे हिस्से से पांच ज्ञानावरण कर्म, चार
दर्शनावरण कर्म और पांच अन्तराय कर्मों का नाश कर दिया । जिस तरह कि तीक्ष्ण बाणसे कपड़े के
कई तहोंको छेद दिया जाता है, उसी तरह प्रभुने कर्मोंका नाश किया । वे बारहवें गुण-स्थानके अन्त
में तिरेसठ प्रकृतियों का नाश करके तेरहवें गुण-स्थान को प्राप्त हुए और उसी स्थानसे उन्होंने अति

उत्तम केवल-ज्ञान को प्राप्त किया जो अनन्त है, लोक-अलोक के स्वरूप का प्रकाशक है, अपरिमेय महिमाशाली है और अक्षय मोक्ष-राज्य को देनेवाला है।

जिनेन्द्र श्री महावीर प्रभुने वैशाख शुक्ला दशमीके दिन सायंकालके समय हस्त एवं उत्तरा-नक्षत्रके मध्यमें शुभ चन्द्र योग होने पर मोक्षप्रदाता क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यात संयम,(चारित्र), अनन्त केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन, क्षायिक-दान, लाभ, भोग, उपभोग एवं क्षायिक-वीर्य—इन श्रेष्ठ नौ क्षायिक लब्धियों को उपलब्ध किया। इस प्रकार जब महावीर स्वामीने घातिया-कर्म-रूपी महाशत्रुओं को जीत लिया और केवल-ज्ञान-रूपी अलभ्य सम्पत्तिको पा लिया, तब आकाशसे देवलोग 'जय-जयकार' करने लगे एवं दुन्दुभी आदि नाना प्रकारके मनोहर बाजे बजाने लग गये। अनेक देवोंके विमान-समूहसे सारा आकाश-मण्डल ढंक-सा गया। अजस्र पुष्प-वर्षा होने लगी। इन्द्रके साथ सब देवोंने महावीर स्वामी को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। आठों दिशाएँ और आकाश एकदम निर्मल हो गये। शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा बहने लगी, इन्द्रासन कम्पित होने लगा। इसी समय यक्षराज कुबेर महावीर प्रभुके अनुपमेय गुणोंसे मुग्ध होकर भक्तिवश उनके समवशरणके उपयुक्त महासम्पदा की रचनामें प्रवृत्त हुआ। जिस महावीर प्रभुने घातिया-कर्म-रूपी शत्रुओंको नष्ट करके अनन्त एवं अनुपम क्षायिक गुणोंको पा लिया है और सम्पूर्ण भव्य जीवोंको परम आनन्द प्रदान करते हुए केवल-ज्ञान-रूपी उत्तम राज्यको स्वीकृत किया है और जो भव्य जीवों के मुकुटमणि के समान शोभायमान हैं, उन त्रैलोक्य-तारण-समर्थ श्री महावीर प्रभुको, मैं उनके उत्तम गुणों की प्राप्तिके लिये, नमस्कार एवं उनकी स्तुति करता हूं।

चतुर्दश प्रकरण

केवल-ज्ञान प्रकाश से, दूर किये अज्ञान।
विश्व-अर्थ-उपदेश रत, प्रभु हैं परम महान॥

श्री वीरनाथ भगवान तीन जगत के स्वामी हैं, केवल-ज्ञान-रूपी सूर्य के समान अज्ञान-रूपी अन्धकार का नाश करनेवाले हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूं।

जब महावीर भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न होनेके प्रभावसे देवताओंके यहां स्वर्गमें स्वयं मेघ के
सदृश घंटोंका गम्भीर शब्द होना आरम्भ हो गया, तब देवगण भी आनन्दसे नाचने लगे। कल्पवृक्षमें
पुष्पांजलिके समान फूलोंकी वृष्टि होने से समस्त दिशायें स्वच्छ हो गईं, आकाश भी बादलोंसे रहित
हो पूर्ण निर्मल हो गया; इन्द्रों का आसन एकाएक चलायमान हो उठा, मानो केवलज्ञान प्राप्तिके
आनन्दोत्सव में उन्मत्त इन्द्रों का अभिमान वह सहन नहीं कर सकता; इन्द्रों के मुकुट स्वयं नम्रीभूत
हो गये। इस तरह स्वर्ग में जब ये आश्चर्यकारी घटनायें घटने लगीं, तब इन्द्र को निश्चय हो गया
कि भगवानको केवल-ज्ञानकी प्राप्ति हो गई है। इसके प्रभाव से वह आनन्दित हो उठा और अपने
आसनसे उठ कर प्रभु की भक्ति में अपने मन को लगाया।

उसी समय 'ज्योतिषी' जातिके देवोंके यहां सिंहनाद हुआ, सिंहासन भी कम्पायमान हो गया।
इसी तरह भवनवासी देवोंके यहां भी शङ्ख की ध्वनि होने लगी। व्यन्तर देवों के महलों में भी भेरी
अपने-आप गड़गड़ाने लगी; पूर्व की तरह अन्य आश्चर्यजनक और भी घटनायें हुईं। इस तरह की
महान आश्चर्यमयी घटनाओंको देख कर सब इन्द्रोंने मस्तक नवाकर भगवानको परोक्षमें ही नमस्कार
किया। ज्ञान-कल्याणक उत्सव मनानेके लिये सौधर्म इन्द्रके साथ देवों का समूह, बाजों-गाजोंके साथ
स्वर्ग से उतर कर भारत-वसुन्धरा की भूमि पर आया।

'बलाहक' नामके देवोंने, जो विमान बनाया था वह मोतियोंकी मालाओंसे अत्यन्त शोभायमान
हो रहा था, रत्नोंके दिव्य तेजसे चारों तरफ झिल-मिलाहट हो रही थी। छोटी-छोटी घंटियोंके हिलने
से जो शब्द हो रहा था, वह कानोंको बहुत ही प्रिय मालूम होता था। नागदत्त नामक अभियोग्य जातिके
देवने ऐरावत हाथीकी रचना कर दी; वह बहुत ऊंचा था, उसकी सूंड़ बहुत ही सुन्दर और सुहावनी
मालूम होती थी; उसका मस्तक ऊंचा और चौड़ा था, एवं वह बहुत बलवान था। उसका शरीर बहुत
स्थूल, अनेक सूंड़ोंसे सुशोभित था; वह इच्छित रूप बनानेवाला था तथा उसके श्वास उच्छ्वाससे सुगन्धि

निकलती थी। दुन्दुभी बाजोंकी तरह शब्द करता हुआ, कानरूपी चमरोंसे सुशोभित, दो बड़े-बड़े घंटे बंधे हुए वह बहुत ही मनोज्ञ मालूम होता था। गलेको घुंघरूकी मालायें सुशोभित कर रहीं थीं, वर्ण सफेद था, पीठ पर सोनेका सिंहासन बहुत ही दिव्य मालूम होता था। उस हाथीके ३२ दांत थे, हर-एक दांत पर ३२ तालाब जलसे भरे हुए थे। प्रत्येक तालाबमें एक-एक कमलिनी थी तथा हर कमलिनी के आस-पासमें बत्तीस कमल थे, प्रत्येक कमलके बत्तीस पत्ते थे। उन पत्तों पर नाचनेवाली सुन्दर अप्सरायें नृत्य करती थीं। वे अप्सरायें अपने हाव-भावसे दर्शकोंका मन मुग्ध करतीं थीं; सुरीले गाने गातीं थीं तथा शृङ्गार-रसके गानोंसे सबको प्रसन्न करती थीं। ऐसे ऐरावत हाथी पर अपनी इन्द्राणी सहित विराजमान होनेसे इन्द्र अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे।

वह इन्द्र श्री महावीर स्वामीके ज्ञान कल्याणको पूजाके निमित्त आया था, उसके अङ्ग परके आभूषणोंकी शोभा बहुत ही रमणीक थी, आभूषणोंके रत्नोंकी किरणोंसे वह प्रकाशमान सूर्यके सदृश मालूम होते थे। प्रतीन्द्र भी अपने परिवार सहित अत्यन्त विभूति के साथ अपनी सवारियों पर आरूढ़ होके साथ ही साथ निकले। इसके अतिरिक्त अन्य इन्द्रके सदृश साज-सामानवाले सामानिक जातिके चौरासी हजार देव भी निकले तथा पुरोहित, मन्त्री, अमात्यके समान तेतीस देव भी शुभ-प्राप्तिके लिये इन्द्रके साथ-साथ चलने लगे। आभ्यन्तर परिषद् बारह हजार देवोंकी थी; मध्यम सभा चौदह हजार देवों की तथा वाह्य सभा सोलह हजार देवों की थी। इस प्रकार यह तीनों देव-सभायें इन्द्रके चारों ओर घेरा डाल कर बैठ गईं। तीन लाख छत्तीस हजार देव शरीर-रक्षकके रूपमें इन्द्रके पास आये। कोतवाल के सदृश लोकको पालनेवाले चार 'लोकपाल' देव इन्द्रके सामने आये। सात वृषभोंकी सेनामेंसे चौरासी लाख उत्तम वृषभ (बैलरूप धारी देव) इन्द्र के आगे आये। दूसरी से लेकर सातवीं सेना तकमें प्रत्येक सेनामें दूने-दूने वृषभ (देव) सेनामें थे। इस तरह सात वृषभ-सेनायें इन्द्रके सामने उपस्थित हो गईं।

उसी तरह ऊंचे घोड़ों की सात सेना, मणिमय रथ, ऊंचे पर्वत की तरह हाथी, जल्दी चलनेवाली पैदल सेना, भगवानके गुणोंको दिव्य कण्ठसे गानेवाले गन्धर्व, जैन-धर्म सम्बन्धी गीत गाते हुए तथा

क्रमसे इन्द्रके आगे-आगे चलने लगीं।
वादित्रोंके लयके साथ-साथ नाचनेवाली अप्सरायें नियमानुसार क्रमसे इन्द्रके आगे-आगे चलने लगीं। दासकर्म करनेवाले आभियोग्य जातिके देव, अछूतों पुरवासियोंकी तरह प्रकीर्णक जातिके असंख्यात देव; सौधर्म इन्द्रके साथ उस महोत्सवमें सम्मिलित हुए। जैसा काम करनेवाले किल्विषिक जातिके देव, सौधर्म इन्द्रके साथ चलने लगा।

घोड़े पर सवार होकर अपनी विभूति सहित ईशान इन्द्र भक्ति-भावसे इन्द्रके साथ चलने लगा। सनत्कुमार सिंहकी सवारी कर रहे थे; माहेन्द्र स्वामी बैलों पर चढ़े थे; सारस की सवारी पर ब्रह्म इन्द्र था; लांतवेन्द्र हंस पर तथा शुक्रेन्द्र गरुड़ पर था। सामानिकादि देव अपनी देवियों सहित भगवानके केवल-ज्ञानकी पूजाके लिये निकले। आभियोग्य देवोंमेंसे 'शतार इन्द्र' भी मोरकी सवारी पर निकला। शेष आनत आदि कल्पोंके मालिक चार इन्द्र, पुष्पक विमान पर चढ़ कर पहुँचे। कल्प-स्वर्गोंके बारह इन्द्र, बारह प्रतीन्द्रों सहित अपनी सवारी पर चढ़ कर वहां पहुँचे। हजारों ध्वजा, पताकाओं, छत्र, चंवर आदि को लिये हुए एवं वादित्रों को बजाते हुए वे वहां पहुँचे। 'जय हो, जय हो!' के नारे लगाते हुए ज्योतिषी देवोंके पटलोंमें पहुंचे। चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारे-रूपी ज्योतिषी देव अपनी-अपनी सवारियों पर चढ़ कर हर्षसहित 'जय-जयकार' करते हुए स्वर्गसे पृथ्वी पर उतर आये। असुर जाति के २० देव तथा भवनवासी १० देवोंके इन्द्र भी अपनी देवियाँ सहित सवारी पर आरूढ़ हो रवाना हो गये।

पश्चात् प्रथम इन्द्र, किन्नर, किंपुरुष, तत्पुरुष, महापुरुष, अतिकाय, महाकाय, गीतरति, रतिकीर्ति, मणिभद्र, पूर्णभद्र, भीम, महाभीम, सुरूप, प्रतिरूप, काल, महाकाल आदि देव, आठ प्रकारके व्यन्तर देवोंके सोलह इन्द्र, सोलह प्रतीन्द्र देवोंके सहित भगवानके ज्ञान-कल्याणकमें सम्मिलित होनेको पृथ्वी पर उतरे। ये चार निकाय के इन्द्र और देव अपनी इन्द्रानियाँ और देवियाँ सहित सुशोभित थे। वे भगवान महावीरके दर्शनों की उत्कण्ठासे उनकी 'जय' बोलते हुए सभा-मण्डप के पास पहुँचे। वह मण्डप दूरसे ही चमक रहा था; समस्त ऋद्धियोंसे परिपूर्ण था; रत्नों की किरणोंसे चारों दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। ऐसे मण्डप को बनाने की सामर्थ्य सिवाय कुबेरके और किसीमें भी नहीं हो सकती। उस मण्डप की रचना का वर्णन गणधर देवके अतिरिक्त और किसी में भी करने की शक्ति

नहीं है। फिर भी भव्य जीवों को समझाने के लिये हम यथासाध्य समोशरण का वर्णन करना उचित समझते हैं। वह समोशरण एक योजनके विस्तारमें बनाया गया था, गोलाकार था, इन्द्र-नील मणियों की किरणोंसे चमक रहा था; पृथ्वीसे ढाई कोस ऊपर आकाश में था। सभाके चारों तरफ धूलिशाल नामका परकोट रत्नों की धूलिसे बनाया गया था। कहीं मूंगे का रंग, कहीं सोने का रंग, कहीं काला रंग, कहीं हरा रंग, कहीं इन्द्र-धनुष जैसा मिश्रित रंग सुशोभित हो रहा था। उसकी चारों दिशाओं में सोनेके खम्भे लगे हुए थे। वे खम्भे लटकती हुई सुन्दर रत्नों की मालाओंसे सुशोभित थे। उसके भीतर कुछ दूर जाकर चार वेदियां थीं, जिनमें पूजा की सामग्री सुशोभित थी। उनमें चार दरवाजे थे तथा वे तीन परकोटोंसे युक्त थीं, और उनमें सोने की १६ सीढ़ियां लगी हुई थीं। उसके बीच में सिंहासन थे, जिन पर जिनेन्द्र की प्रतिमायें विराजमान थीं। वे सब रत्नों के तेज से देदीप्यमान थे। उनके बीचमें चार छोटे-छोटे सिंहासन थे; उन वेदियोंके बीचो-बीच चार मानस्थम्भ थे। उनके देखने मात्र से मिथ्या-दृष्टियों का मान-भंग हो जाता था। वे मानस्थम्भ स्वर्ण के बने हुए थे और ध्वजा, घण्टाओंसे सुशोभित थे। उनके ऊपरी भाग में जिनेन्द्र की प्रतिमायें थीं। उनके पास की जमीन पर चार बावड़ियां कमलोंसे सुशोभित थीं। बावड़ियोंमें रत्नोंकी सीढ़ियां लगी थीं, जिससे उनकी सुन्दरता और भी बढ़ गई थी। उन बावड़ियोंके नाम नन्दोत्तरा आदि थे। उन बावड़ियोंके किनारे पर जलसे भरे हुए कुण्ड थे, जो कि यात्राके निमित्त आये हुए जीवों की थकावट दूर करने के लिये उनके पैर धुलानेका काम कर रहे थे। वहांसे आगे जाने पर जलसे भरी खाई थी। उनमें कमल फूल रहे थे तथा उन कमलों पर भ्रमर सदैव गुंजार किया करते थे। हवाके झोंकोंसे उन खाईओं में जो तरंगें उठती थीं और उस समय जो शब्द होता था, उससे यही ज्ञात होता था कि वह तरंगें भी भगवान के ज्ञान-कल्याणकका गुण-गान कर रही हैं। उस खाईका पृथ्वी-भाग छः ऋतुओंके फल-फूलोंसे सुशोभित था। वहां पर देव और देवियोंके लिये सुन्दर क्रीड़ा-स्थान (कुंज) बने हुए थे। चन्द्रकान्त-मणि की शीतल शिलायें जिस जगह रखी हुई थीं, वहां इन्द्र विश्राम करते थे। वहांका पर्वत फल-फूलोंसे भरा हुआ,

अशोक आदि महान वृक्षों सहित, भौंरोंकी गुंजारसे अत्यन्त शोभायमान हो रहा था। उसके थोड़े ही
आगे सोनेका एक परकोट था, वह बहुत ऊँचा था। उसमें चारों तरफ मोतियोंका जड़ाव था। उनको
देख कर ऐसा ज्ञात होता था; मानो, तारे ही चमक रहे हों। उस परकोटको देखनेसे कहीं मूंगा की
तरह रङ्ग की कान्ति, कहीं बादलके रङ्गत की तरह, कहीं नीले रतन की कान्ति के समान, और कहीं
इन्द्र-धनुषकी तरह नाना रङ्गोंसे वह शोभायमान हो रहा था। यह परकोट हाथी, व्याघ्र, मोर, मनुष्यों
के स्त्री-पुरुषके जोड़े तथा बैलोंके चित्रोंसे भरा हुआ था। ये चित्र ऐसे मालूम पड़ते थे कि हंस रहे हों।
उस कोटके चारों दिशाओंमें चार दरवाजे थे। वे तिमंजिले थे। वे दरवाजे स्वयं प्रकाशित होकर अपना
प्रभाव बता रहे थे। महामेरु-पर्वतके समान अत्यन्त ऊँचे, पद्मरागादि मणियोंके द्वारा बनाये गये दरवाजों
के गगनचुम्बी शिखर अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। उन विशाल दरवाजों पर बहुत से गायक, देव,
गन्धर्व आदि तीर्थङ्कर श्रीमहावीर प्रभुके उत्तम गुणोंका गान सुमधुर स्वरमें कर रहे थे। इस गुण-गानको
कुछ लोग तो सप्रेम सुन रहे थे, कुछ गुणों की श्रेष्ठताके सम्बन्धमें विचार कर रहे थे और कुछ देव-वृन्द
उमङ्गमें आकर नाच रहे थे। प्रत्येक द्वार पर भृङ्गार-कलश एवं दर्पण इत्यादि आठ मांगलिक द्रव्य
यथारीति रखे हुए थे। प्रत्येक द्वारों पर नानाविध रत्नोंके बने हुए सौ-सौ तोरण बंधे हुए थे और उनमें से
निकलती हुई विविध वर्णकी ज्योतियोंके मिलनेसे आकाश चित्रित-सा जान पड़ता था। उन तोरणोंमें लगे
हुए रत्नाभूषणोंको देख कर जान पड़ता था कि रत्नोंने प्रभुके सुन्दर शरीरको स्वभावतः ही देदीप्यमान
देख कर वहां पर अपने रहने की आवश्यकता नहीं समझी और उनकी शारीरिक कान्ति से पराजित
होकर इन तोरणोंमें आकर बंध गये हों। द्वार पर रखी हुई शङ्ख इत्यादि नौ निधियोंको देख कर ऐसा
जान पड़ता था मानो, अर्हन्त प्रभुके द्वारा तिरस्कृत हो जाने पर वे दरवाजे के बाहर आ गयी हैं और
यहीं पड़ी रह कर भगवान की सेवा करने के लिये अवसर की प्रतीक्षा कर रही हों।

उस दरवाजे के भीतर एक लम्बा-चौड़ा राज-पथ था और उसीके दोनों ओर दो नाट्यशालाएँ

बनी हुई थीं। इसी प्रकार चारों दिशाओंके चारों मुख्य द्वारोंके भीतर दो-दो नाट्यशालाएँ बनी हुई थीं। वे बहुत ऊँची तिमंजिली नाट्यशालाएँ मानो, अपने मस्तक को उठाये प्राणियों से कह रही हों कि, सम्यक्दर्शन इत्यादि तीनों स्वरूप ही मोक्षके मार्ग हैं। नाट्यशालाओं की दीवारें स्फटिक मणि की बनी हुई थी और उनके खम्भे सोने के बनाये गये थे। उन वैभवपूर्ण नाट्यशालाओं की रङ्ग-भूमि में अप्सराओंका नाच हो रहा था। वहां पर बहुतसे गन्धर्व देव अपने कोमल कण्ठसे प्रभुकी विजय-गीति एवं केवल-ज्ञानके समय होनेवाले श्रेष्ठ गुण गीतों को गा रहे थे। पूर्वोक्त राज-मार्ग की दोनों ओर सुगन्धित धूप से भरे हुए दो कलश (घड़े) रखे थे और जलते हुए धूपों की सुगन्धि से वायुमण्डल सुगन्धित हो रहा था। इस मार्गसे कुछ दूर आगे जाने पर चार उद्यान-वाटिकाएँ बनी हुई थीं। इनमें समस्त ऋतुओंके फल-पुष्प सदैव लगे रहते थे। इसलिये ये चार दूसरे नन्दन-वन ही जान पड़ते थे। उन उपवनों में वीथियां (गलियां) बनी हुई थीं। उनमें अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक एवं आम्रवृक्षकी क्रमशः चार-चार वन-श्रेणियां थीं, इनके वृक्षसमूह बहुत ऊँचे-ऊँचे थे। उन उपवनों के बीच-बीच में त्रिकोण एवं चतुष्कोण वापियां (बावड़ियां) बनी हुई थीं और बावड़ियोंमें सुन्दर-सुन्दर कमल सुशोभित थे। इनके अतिरिक्त कहीं नयनाभिराम राज-प्रासाद था, तो कहीं कीड़ा-गृह था, कहीं कौतुक-मण्डप था; कहीं आकर्षक चित्रशालाएँ थीं, कहीं कृत्रिम (बनावटी) पर्वत-श्रेणियां और कहीं बाहरके विचित्र दृश्योंको देखने के लिये गगनचुम्बी (बहुत ऊँची) अट्टालिकाएँ बनी हुई थीं। एक-मंजिले और दो-मंजिले मकानों की भी क्रमबद्ध पंक्तियां (कतार) बनी हुई थीं। उन उपवनोंकी प्रथम अशोक-वन-वीथीमें सुवर्ण की बनी हुई तीन कटनीदार ऊँची एवं मनोहर वेदिका बनी हुई थीं और उस सुन्दर वेदिका पर अशोक चैत्यवृक्ष था। वह तीन परकोटोंसे घिरा हुआ था और प्रत्येक परकोटमें चार-चार द्वार थे। उस अशोक चैत्यवृक्ष के ऊपर बजनेवाले घण्टोंसे युक्त तीन सुन्दर छत्र टंगे हुए थे। वह वृक्ष देव-पूजित जिन-प्रतिमाओंसे तथा ध्वजा, चमर एवं मङ्गलद्रव्य इत्यादिसे सुशोभित तथा ऊँचा होनेके कारण जम्बू-वृक्षके समान जान

पड़ता था। चैत्यवृक्षकी जड़के पास चारों ओर जिनेन्द्रदेवकी पवित्र प्रतिमाएँ थीं। सुरेन्द्र पुण्य-प्राप्तिकी इच्छा
से मनोज्ञ द्रव्योंसे उन प्रतिमाओंकी सदैव पूजा किया करते थे। इसी प्रकार सप्तपर्ण, चम्पक एवं आम्रवृक्ष
के तीनों वनोंमें भी ऐसे ही सुन्दर चैत्यवृक्ष थे। अर्हन्तकी प्रतिमाओंसे विभूषित होनेके कारण देवतालोग
उन चैत्यवृक्षोंकी पूजा किया करते थे। वहां माला, वस्त्र, मोर, कमल, हंस, गरुड़, सिंह, बैल, हाथी एवं चक्र
इत्यादि दस प्रकारकी अत्यन्त ऊँची ध्वजायें (पताकाएँ) सुशोभित हो रही थीं। ध्वजाएँ ऐसी जान पड़ती
थीं मानो, प्रभुने मोहनीय कर्मोंको जीत कर सम्पूर्ण जगतके ऐश्वर्यको एकत्रित कर लिया है। प्रत्येक
दिशामें पृथक्-पृथक् चिह्नवाली एकसौ आठ ध्वजाएँ थीं। वे आकाश-रूपी समुद्र की तरंगों के समान
जान पड़ती थीं। जब वायुके वेगसे इन ध्वजाओंमें कम्प एवं ध्वनि आ जाती थीं, तब ऐसा जान पड़ता
था मानो, वे सब भव्य जीवों को भगवान की पूजा करने बुला रही हों। माला-चिह्नित ध्वजाओं में
सुन्दर सुरभित एवं कोमल पुष्पोंकी मनोहर मालाएँ लटक रही थीं। वस्त्र-चिह्नयुक्त ध्वजाओं में सूक्ष्म
(पतले) वस्त्र लटक रहे थे। मयूर (मोर) चिह्नवाली तथा अन्यान्य चिह्नवाली ध्वजाओं में भी चतुर
देव-शिल्पियोंके द्वारा बनायी हुई सुन्दर मूर्तियां लगी हुई थीं। पूर्वोक्त समस्त चिन्हवाली ध्वजाओंकी
सम्मिलित संख्या एक दिशामें एक हजार अस्सी और चारों दिशाओंकी सम्मिलित संख्या चार हजार
तीन सौ बीस थी। उस चैत्यवृक्षसे आगे बढ़ने पर भीतरी भागमें एक दूसरा चाँदी का परकोट बना
हुआ था। इस चाँदीके परकोट का निर्माण (बनावट), आकार प्रकार और सजावट सभी कुछ प्रथम
परकोटके ही समान थी; दरवाजे भी थे। और उसी तरहके रत्नतोरण, नवनिधियां सम्पूर्ण मङ्गलद्रव्य
एवं मार्गके दोनों ओर धूपसे भरे हुए दो घड़े रखे हुए थे, जो स्वयं अपनी सुरभि से वायुमण्डल को
अपने वशमें कर रहा था। नाट्यशालाओं की विभूतियां भी पूर्ववत् ही थी। नृत्य, गान, वाद्य सभी
एक जैसे थे। इसके बाद कुछ और आगे बढ़ने पर उसी मार्गमें कल्पवृक्ष दृष्टिगोचर हो रहे थे। वे विविध
रत्नों की जगमगाहट से अत्यन्त शोभायमान दीख पड़ते थे। कल्पवृक्ष की अनेक उत्तम-उत्तम विपुल

विभूतियां किसी महान् राजाकी विभूतियोंसे कम न थीं। माला; वस्त्र, रत्न; आभूषण, दिव्य फल, पुष्प एवं शीतल छाया इत्यादि दुर्लभ विभूतियोंसे वह युक्त था। वे दस प्रकारके थे। इन दस विविध कल्पवृक्षों को देख कर यह सहज ही में जाना जा सकता था, कि स्वयं देवकुरु, उत्तरकुरु, भोगभूमि ही इन कल्पवृक्षों को साथ लेकर, जिनेन्द्र प्रभुकी सेवा करनेके लिये प्रस्तुत हों। कल्पवृक्षके फल आभूषणोंकी तरह दीख पड़ते थे, पत्ते वस्त्रके समान थे और शाखाओं (डालों) से लटकती हुई सुन्दर मालाएँ वटवृक्षकी जटाओंके समान जान पड़तीं थीं। उनमें से 'ज्योतिरांग' कल्पवृक्ष के नीचे 'जोतिष्क' जाति के देव रहते थे, 'दीपांग' कल्पवृक्षके नीचे 'कल्पवासी' देव और 'मालांग' कल्पवृक्षके नीचे भवनवासी इन्द्र स्वयं रहते थे। कल्पवृक्ष-वनके बीचमें अतिरम्य सिद्धार्थ-वृक्ष थे और उनके मूल में छत्र-चामरादि से अलंकृत प्रभु की प्रतिमाएँ थीं। पूर्वकथित चैत्यवृक्षके समान ही इनकी भी स्थितिकी भिन्नता केवल इतनी ही थी कि, वे कल्पवृक्ष अपनी इच्छानुसार अभीष्ट फलको देनेवाले थे। इस कल्पवृक्ष-वन को चारों ओर से घेरे हुए बहुमूल्य रत्नोंसे जड़ी हुई स्वर्णवेदिका बनी हुई थी और वह ज्योतियोंसे जगमगा रही थीं।

उसमें चाँदीके बने हुए चार दरवाजे थे। उनके शिखरों पर मोतियोंकी मालाएँ गूंथीं हुई थीं एवं घण्टियाँ लटक रहीं थीं; गान, वाद्य एवं नृत्य हो रहा था; पुष्पमाला इत्यादि मङ्गल की आठ वस्तुएँ धरीं हुईं थीं; प्रकाशमान रत्नोंके द्वारा बनाये गये तोरण लटक रहे थे। इन दरवाजोंके बाद राज-पथ पर स्वर्ण-स्तम्भके आगे अनेक प्रकारकी ध्वजाएँ लटक रहीं थीं और एक अद्भुत छटाको बिखेर रहीं थीं। रत्न-जटित पीठासन पर खड़े किये गये उन स्तम्भों को देख कर ऐसा जान पड़ता था मानो, वे खड़े होकर सम्पूर्ण भव्य जीवोंको—'प्रभुने कर्म-शत्रुओंको अनायास ही जीत लिया है'—इस बातको, सुनानेका प्रयत्न कर रहे हों। उन खम्भोंकी गोलाई अट्ठासी अंगुलकी थी। पच्चीस धनुष (पचास गज) की दूरी थी। इस प्रकार का वर्णन गणधर देवने किया। मानस्थम्भ, सिद्धार्थ, चैत्यवृक्ष, स्तूप, तोरण सहित प्राकार एवं वन-वेदिकाओंकी ऊँचाई तीर्थङ्करकी ऊँचाईसे बारह गुणी अधिक थी। बुद्धिमान पुरुषोंको इसीके

अनुकूल लम्बाई चौड़ाई का अनुमान कर लेना चाहिये। पूर्वोक्त वन-श्रेणी, राज-प्रासाद एवं पर्वतोंकी
ऊँचाईको भी इसीके अनुपातसे समझना होगा। इस प्रकार द्वादशांगके पढ़नेवाले गणधर देवने कहा।
पर्वत ऊँचाईसे अठगुने चौड़े और स्तूप ऊँचाईसे कुछ अधिक मोटे हैं। तत्त्ववेत्ता देवताओंके द्वारा पूजित
गणधर देवने वेदिका इत्यादिकी चौड़ाई, ऊँचाई की अपेक्षा चौथाई कही है। उन वनों के बीच-बीचमें
कहीं पर जल-भरी बहती हुई नदियां, कहीं बावड़ी, कहीं रेतीली जमीन और कहीं विशाल सभा-मण्डप
बने हुए थे। वनके विशाल राज-मार्ग पर ऊँची स्वर्ण-वेदिका बनी हुई थी, उसमें सुन्दर-सुन्दर चार दर-
वाजे बने हुए थे। इनमें भी रत्न-तोरण, आठ मङ्गल द्रव्य एवं आभूषण आदि वैभव तथा नृत्य, वाद्य
एवं गीत इत्यादि पूर्व-कथित द्वारों के जैसे ही विद्यमान थे। इन सबके बाद एक अत्यन्त विशद गली
थी, जिसे चतुर देवशिल्पियोंने बनाया था। इस गलीके दोनों बगलमें गृह पंक्तियां बनी हुई थीं। इन
भवनोंमें हीरक-जटित स्वर्ण-स्तम्भ थे और चन्द्रकान्त मणिकी बनी हुई दीवार थी। बीच-बीचमें अनेक
बहुमूल्य महारत्न जड़े हुए थे; इसलिये उनकी शोभा अत्यन्त विचित्र थी। उनकी जगमगाहटको देख
कर आँखें चौंधिया जाती थीं। उन दुमंजिले, तिमंजिले एवं चौमंजिले दिव्य-प्रासादों पर वाह्य-दृश्यों
को देखने के लिये अट्टालिकाएँ (अटारियां) बनी हुई थीं। सम्पूर्ण सुख-सामग्रियां उन भव्य-भवनोंमें
रखी हुई थीं, अतः अनेकों देव, गन्धर्वों के साथ कल्पवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, विद्याधर, भवनवासी
एवं किन्नरवृन्द प्रतिदिन उन महलोंमें क्रीड़ा करते रहते थे। उन लोगोंमें से कोई तो जिनेन्द्र प्रभुके
गुण-गौरव को गाते, कोई उल्लासपूर्ण नृत्य करते और कोई विविध वाद्यों को बजा कर भगवान की
सेवा में तत्पर रहते थे। धार्मिक विषयों की चर्चा भी वहां अहर्निश होती ही रहती थी।

विशाल राजपथके मध्यमें पद्मराग मणियोंसे बनाये हुए नौ रत्न-स्तम्भ खड़े थे और उनमें अर्हन्त
एवं सिद्ध भगवान की सुन्दर प्रतिमाएं विराजमान थीं। साथ ही उनमें विविध रत्नोंकी वन्दनवार बंधी
हुई थीं और उनके विविध वर्णके प्रकाशसे आकाश हरे, पीले, लाल, नीले आदि अनेक रंगोंसे रंगा हुआ-

सा दीख पड़ता था, जिसे देखकर लोगों को इन्द्र धनुषकी भ्रान्ति हो जाती थी। वे रत्न स्तम्भ पूजा द्रव्यों से और छत्रध्वजादि मांगलिक वस्तुओं से सुशोभित थे। इनका महत्व धर्ममूर्ति के समान था। वहां पर अनेक भव्य-जीव एकत्रित होते और उन प्रतिमाओं का प्रक्षालन, पूजा, प्रदक्षिणा एवं स्तुति किया करते थे। इस प्रकार सभी लोग उत्तम धर्मोपार्जनके कार्यमें दत्तचित्त रहते थे। इसके बाद कुछ और भीतर जानेपर स्वच्छ स्फटिकमणि का बना हुआ परकोटा था, जो अपनी शुभ्र ज्योत्स्नासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। उस परकोटेके सब द्वार पद्मराग मणियोंसे बनाये हुए थे और भव्य-जीवोंके एकत्रित अनुराग की तरह आकर्षक थे। इन द्वारोंपर भी पूर्ववत् तोरण, आभूषण, नौ निधियां, थीं तथा गान-वाद्य-नृत्य हो रहे थे और चमर, बीजना, दर्पण, ध्वजा, छत्र, झारी एवं कलश इत्यादि आठों मङ्गलद्रव्य प्रत्येक द्वार पर रखे हुए थे। उन परकोटों के दरवाजों पर क्रमशः व्यन्तर, भवनवासी एवं कल्पवासी देव गदा एवं कृपाण आदि आयुधोंसे सुसज्जित होकर पहरा दिया करते थे। उस स्फटिक-मणिवाले परकोटेसे लेकर प्रथमपीठ पर्यंत लम्बी सोलह दीवारें बनी हुई थीं। उस स्फटिकमणि-निर्मित परकोटे के ऊपर रत्न-स्तूपों के सहारे स्फटिक-मणियों का ही श्रीमण्डप बना हुआ था। वह यथार्थतः श्री (सम्पत्तियों) का ही मण्डप है। वहां पर जगत्के लक्ष्मीपात्र सज्जन एकत्रित हुआ करते हैं। उनकी भीड़से वह मण्डप सदैव ठसाठस भरा हुआ रहता था। जिस प्रकार अर्हन्त प्रभु की वाणी से धर्म की उपलब्धि होती है, उसी तरह वहां पर आकर धर्म-चर्चाके निर्णयरूपी धर्म-साधना के अनुष्ठान से सब मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त कर लेते थे। उस श्रीमण्डप के बीच में बैडूर्यमणि के द्वारा बनायी प्रथम पीठिका थी, वह ऊँची थी और उसके प्रकाशमें दिशाएं आलोकित हो रही थीं। पीठिका पर सोलह स्थानों में अन्तर दे दे कर सोलह सीढ़ियां बनी हुई थीं। सभा-प्रकोष्ठ के प्रत्येक के बारह द्वार थे और चार पीठिका, चारों दिशाओं में विशाल रूप में बनी हुई थीं। प्रथम पीठिका पर आठ प्रकार के मङ्गल द्रव्य रखे गये थे। प्रथम पीठिका के ऊपर सुवर्णनिर्मित द्वितीय पीठ रखा हुआ था जो अपनी

दीप्तिसे सूर्य एवं चन्द्रमाके प्रकाशको भी तिरस्कृत कर रहा था। उस द्वितीय स्वर्णपीठके ऊपरी हिस्से
में चक्र हाथी, बैल, कमल, वस्त्र, सिंह, गरुड़ एवं मालाके चिन्हवाली आठ ध्वजाएँ थीं, जो पुरुषों के
आठ गुणके समान जान पड़ती थीं। उसी पीठ पर एक तीसरा रत्नपीठ रखा हुआ था, जो बहुमूल्य
रत्नोंके द्वारा बनाया गया था। इसी तृतीय रत्नपीठसे एक प्रकारकी विचित्र किरणें निकल रही थीं और
सारा अन्धकार दूर हो गया था। वह रत्नपीठ प्रखर किरणों एवं अपनी मांगलिक सम्पत्तियों से स्वर्ग-
लोकके वैभवमय प्रकाश को तुच्छ समझ कर मुसकुराता-सा जान पड़ता था। इसी तृतीय रत्नपीठ के
ऊपर उत्तम गन्धकुटी बनी हुई थी और वह एक तेजोमयी मूर्ति-सी जान पड़ती थी। वह अनेक प्रकारके
दिव्य गन्ध, महाधूप, सुरभित पुष्पमाला एवं अनवरत पुष्प-वृष्टिसे सम्पूर्ण दिशाओं के वायुमण्डल को
सुगन्धित करते रहने के कारण यथार्थमें ही 'गन्धकुटी' हो रही थी। उस गन्धकुटी का निर्माण, दिव्य
आभूषण, मोतियोंकी माला, सुवर्ण की पालियां एवं निविड़ अन्धकार को दूर कर देनेवाले प्रकाशमान
महारत्नोंके द्वारा, कुवेरने किया था। इसका वास्तविक वर्णन श्री गणधर देवके अतिरिक्त अन्य कोई
बुद्धिशाली नहीं कर सकता। इसी गन्धकुटी के मध्यभागमें बहुमूल्य एवं ज्योतिपूर्ण महारत्नों के द्वारा
एक अलौकिक स्वर्ण-सिंहासन का निर्माण किया गया था। प्रचण्ड मार्तण्ड की प्रखर किरणें भी उस
स्वर्ण-सिंहासनके प्रकाशके सामने फीकी-सी जान पड़ती थीं। कोटि सूर्यके समान प्रभावशाली, तीनों
लोकके भव्योंसे घिरे हुए, जिनेन्द्रदेव श्री महावीर प्रभुने उस सिंहासन को सुशोभित किया। परन्तु
भगवान की महिमा अपार है! वे अपनी महिमा के ही कारण स्वर्ण-सिंहासन से चार अंगुल ऊपर
निराधार अन्तरीक्षमें ही अवस्थित रहे। वे सम्पूर्ण भव्योंके उद्धार करनेमें समर्थ थे। देव-निर्मित वाह्य
विभूतियोंसे युक्त, जगदादरणीय श्री महावीर प्रभु को सब भव्य जीवों ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नमस्कार
किया। वे प्रभु संसारके मुकुटमणि हैं; अनुपम, असंख्य एवं उत्तम गुणोंसे युक्त हैं, और केवलज्ञान-
रूपी महासम्पत्तिसे विभूषित हैं। उन जिनेन्द्र महावीर प्रभुके चरणारविन्दोंको मैं आदरपूर्वक नमस्कार

करता हूँ। प्रभु तीनों लोकके जीवों का उद्धार करने में समर्थ हैं, अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं, कर्म-रूपी महाशत्रुओंके नाशकर्ता हैं, बारह सभाओंमें बैठ कर धर्मोपदेशमें प्रयत्नशील रहते हैं, अकारण बन्धु हैं, अनन्त चतुष्टयसे युक्त हैं। उनकी अतुलनीय गुण-सम्पत्तियोंको पानेके लिये, उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ। वे अत्यन्त विशिष्ट गुणों की खान हैं, केवलज्ञान-रूपी दिव्य दृष्टिवाले हैं, त्रिलोकके स्वामी इन्द्र, धरणेन्द्र एवं चक्रवर्तियों के द्वारा सेव्य हैं; सबके कल्याण करनेवाले अद्वितीय बन्धु हैं, सम्पूर्ण दोषोंसे हीन हैं, धर्म-तीर्थके प्रवर्त्तक हैं। उपर्युक्त महागुणोंसे युक्त श्रीमहावीर प्रभुकी भक्तिपूर्वक स्तुति मैं मोक्ष-गुणों को प्राप्तिके लिये करता हूँ।

पञ्चदश प्रकरण

"श्रीमते केवलज्ञान-साम्राज्य-पद-शालिने।
नमोव्रताय भव्योघै धर्म-तीर्थ प्रवर्त्तिने ॥ १ ॥"

अर्थात् जो केवलज्ञान-रूपी साम्राज्य को पाकर शोभायमान हैं और भव्य-जीवों के समूह से घिरे हुए हैं, उन धर्म-तीर्थ-प्रवर्त्तक एवं श्रीसम्पन्न महावीर अर्हन्त को नमस्कार है।

जिस प्रकार मेघ जलवृष्टि किया करते हैं, उसी प्रकार उस समय देवसमूह जिनेन्द्रके चारों ओर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। आकाशसे गिरते हुए फूलों की मनमोहक सुगन्ध पर भौंरे आकृष्ट होकर गुंजार कर रहे थे मानो, जगत्स्वामी जिनेन्द्र प्रभुके यशों को मधुर स्वर में गा रहे हों। भगवान के पास ही शोकों को दूर करनेवाला यथार्थनामा एक सुन्दर एवं अत्यन्त ऊँचा अशोकवृक्ष था। उस अशोकवृक्षके फूल रत्नोंके जैसे विचित्र वर्णके और अत्यन्त मनोहर थे। वायुवेगसे प्रकम्पित एवं चञ्चल शाखाओंमें हिलते हुए मरकत मणियोंके हरे पत्ते बहुत रमणीक मालूम हो रहे थे। उनके हिलने से ऐसा जान पड़ता था मानो, वे भव्य जीवोंको भगवानके पास बुला रहे हों। महावीर स्वामीके मस्तक पर तीन श्वेत छत्र तने

हुए थे। मानो, प्रभुने तीनों लोकोंके आधिपत्यको पा लिया है, इस बातकी सूचना दे रहे हों। उन छत्रोंके चारों ओर चमकीले मोती लटक रहे थे। उनसे उज्ज्वल प्रकाश छिटक रहा था और छत्र-दण्ड में भी अनेक बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे। रत्नोंसे युक्त छत्रकी शोभा इतनी विशेष थी कि उसके सामने चन्द्रमा की किरणें भी कुछ फीकी-सी जान पड़ती थी। क्षीर-समुद्रके उज्ज्वल जलके सदृश श्वेत चौंसठ चमरों को हाथमें लेकर यक्षलोग ढुला रहे थे। वे वाह्य एवं आभ्यन्तर शोभा से युक्त होकर अत्यन्त सुन्दर दीख पड़ते थे और मुक्ति-स्वरूपी स्त्रीके अनन्यतम वर जान पड़ते थे। इसी समय मेघके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले साढ़े बारह करोड़ प्रकारके बाजोंको देवोंने जोरसे बजाना आरम्भ किया। उन वाद्योंका तुमुल रव इस बातको सूचित करता था; मानो, कर्म-रूपी महाशत्रुओंको ललकारते हुए अपने नाना प्रकारके शब्दोंसे, भव्योंके सामने जिनोत्सवको प्रकट कर रहा हो। अत्यन्त उज्ज्वल और दिव्य औदारिक शरीरसे निकलता हुआ देदीप्यमान प्रभा-पुंज करोड़ों सूर्यकी रश्मि-राशिसे भी अधिक प्रखर था। वह प्रकाशमण्डल सब पापियोंके नेत्रोंको प्रिय था और उज्ज्वल यशका एक समष्टिभूत रूप था। वह सम्पूर्ण बाधाओंको दूर करनेवाला और तेजका अक्षय कोष था। जिनेन्द्र श्रीमहावीर स्वामीके मुख से नित्यशः जो दिव्य-ध्वनि निकला करती थी, वह सबका कल्याण एवं हित करनेवाली होती थी। वह अलौकिक वाणी तत्त्व-स्वरूप एवं धर्म-स्वरूपको विशद प्रकारसे बतानेवाली थी। जिस प्रकार मेघों द्वारा बरसाया हुआ जल पहले एक ही रूप रहता है और फिर पात्र-भेदसे नाना नाम, रूप एवं रंग में बदल जाता है, उसी तरह प्रभु की दिव्यध्वनि भी प्रथम तो 'अनक्षरी' एक-रूप ही निकलती है और बादमें विभिन्न देशोंमें उत्पन्न मनुष्य, देव एवं पशुओंकी अक्षरमयी विभिन्न भाषामें रूपान्तरित होकर सन्देहों को दूर कर देनेवाले धर्म का उपदेश करनेवाली हो जाती है।

रत्नमयी त्रिपीठके ऊपर सिंहासनारूढ़ श्रीमहावीर प्रभु धर्मराजके समान जान पड़ते थे। वे महान एवं अलौकिक आठ प्रातिहार्योंसे अलंकृत होकर सभा-मण्डपमें विराजमान थे और उनकी अतुलनीय

शोभा अवर्णनीय थी। महावीर प्रभु की पूर्व दिशासे लेकर सभा-मण्डप के प्रथम कोष्ठ पर्यन्त अनेक गणधर एवं मुनीश्वर क्रमवद्ध होकर बैठे हुए थे। दूसरे प्रकोष्ठमें कल्पवासिनी इन्द्राणी इत्यादि देवियां बैठी हुई थीं। तीसरे प्रकोष्ठमें अर्जिकाएं एवं श्राविकाएं थीं। चौथेमें ज्योतिषी देवोंकी देवियां बैठी हुई थीं। पांचवेंमें व्यन्तरोंकी देवियां, छट्ठे में भवनवासियोंकी पद्मावती इत्यादि देवियां, सातवेंमें भवन निवासी धरणेन्द्र इत्यादि देव, आठवेंमें इन्द्रोंसे युक्त व्यन्तर देव, नवेंमें इन्द्रोंसे युक्त चन्द्र-सूर्य इत्यादि ज्योतिषी देव, दशवें में कल्पनिवासी देव, ग्यारहवेंमें विद्याधर एवं मनुष्य इत्यादि और बारहवें प्रकोष्ठ में सिंह-हिरण इत्यादि तिर्यञ्च बैठे थे। इस प्रकार बारहों सभा-मण्डपके प्रकोष्ठोंमें जीव-समूह श्रेणीवद्ध होकर पृथक्-पृथक् त्रिलोकीनाथ महावीर प्रभुके सामने हाथ जोड़े हुए, विनम्र भावसे प्रभु के उपदेश-रूपी अमृतको पीकर पापाग्निके सन्ताप को शान्त करने की इच्छासे बैठे हुए थे। सभा-मण्डप में उन सम्पूर्ण जीव-समूहोंसे घिरे हुए जगत्पति श्री महावीर प्रभु धर्मात्माओं के बीच में साक्षात् धर्म-मूर्ति के समान विराजमान थे और उनके अलौकिक आकर्षणसे सभी लोग प्रभावित थे।

इसके बाद देवोंसे युक्त इन्द्र धर्म-रूपी उत्तम रस-प्राप्तिकी इच्छासे अत्यन्त विनम्र रूपसे 'जय-जयकार' करने लगे और प्रभुके सभा-मण्डपकी तीन बार प्रदक्षिणा करके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उन जगद्गुरु भगवान के दर्शनकी इच्छासे सभा-मण्डपमें प्रविष्ट हुए। वह समवशरण-भूमि भव्य जीवोंके लिये शरण-स्वरूप थी। वहां पर पहुँच जानेके बाद इन्द्रादि देवोंने मानस्तम्भ, महान् चैत्यवृक्ष एवं अन्य स्तूपों में प्रति-विम्बित जिनेन्द्र और अनेक श्रेष्ठ सिद्ध पुरुषोंकी मूर्तियोंका पूजन पवित्र प्रासुक जल आदि पूजा-द्रव्यों से भक्तिपूर्वक किया। देवोंके द्वारा अत्यन्त उत्तमतापूर्वक रची गई समवशरण-रचना को देख कर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और देवोंके प्रकोष्ठमें प्रविष्ट हुए। उस ऐश्वर्यशाली सभा-मण्डपमें उत्तम स्थान पर रखे हुए श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान कोटि-कोटि गुणोंसे युक्त एवं परम तेजस्वी चतुर्मुख श्री महावीर प्रभुको इन्द्रने निर्निमेष नेत्रों से देखा। तदनन्तर देवताओं के साथ इन्द्र ने श्रद्धापूर्वक घुटनों को टेक

कर कर्म-विनाशके लिये प्रभुको नमस्कार किया। साथ ही अनेक अप्सराओं के सहित इन्द्राणी आदि देवियोंने भी प्रसन्नतापूर्वक त्रिलोकपति श्रीमहावीर प्रभुको नमस्कार किया। जब देवोंके साथ इन्द्रादिने प्रभुको प्रणाम किया, तब उनके मुकुटकी मणियोंकी प्रभा प्रभुके चरण-कमलों पर पड़ी और इस विचित्र आभाके स्पर्श से उनके चरण अत्यन्त शोभायमान हुए। प्रभु के गुणों पर अनुरक्त होकर इन्द्रादि देव अनेक उत्तम एवं अलौकिक पूजा-द्रव्यों से प्रभु की पूजा करने के लिये प्रस्तुत हुए। एक दैदीप्यमान स्वर्ण-कलशके मुखसे निर्मल जल-धाराको प्रभुके पवित्र चरणों पर गिराने लगे और इस तरह वे अपने पापोंकी शुद्धि करने में प्रवृत्त हुए। पाद-प्रक्षालन कर चुकने के बाद इन्द्र ने उत्कट भक्ति के वशीभूत होकर घिसे हुए स्वर्गीय सुगन्धयुक्त चन्दनसे भगवानके दिव्य सिंहासनके अग्रभागका, भोग एवं मोक्ष प्राप्तिके निमित्त, पूजन किया। आकाश-मण्डल को अपनी किरणोंसे श्वेत कर देनेवाले दिव्य मोतियों के पांच अक्षत-पुञ्ज को अक्षय सुख की प्राप्ति-कामना से प्रभुके आगे चढ़ाया और कल्पवृक्ष से उत्पन्न स्वर्गीय पुष्पोंको चढ़ा कर इन्द्रने सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली पूजा की। रत्ननिर्मित थालीमें अमृत-पिण्डसे बनाये गये नैवेद्य पदार्थों को इन्द्रने प्रभुके सन्मुख उपस्थित किया और अपने सुख एवं कल्याणकी कामना की। उन्होंने अन्धकार को दूर कर देनेवाले रत्नमय दीपकों को भी ज्ञान-प्राप्ति की इच्छासे प्रभुके आगे रखा। कृष्ण, अगर आदि अनेक उत्तम सुगन्धित द्रव्यों से बनायी हुई धूपवर्त्तिका से इन्द्रने धर्म-प्राप्तिके लिये प्रभुके चरण-कमलों की पूजा की। धूपके धूएंसे दशों दिशायें सुरभित हो उठीं। इसके बाद कल्पवृक्ष आदि सुरतरुओंमें उत्पन्न एवं नयनाभिराम उत्तम फलोंके द्वारा इन्द्रने फल-प्राप्ति की अभिलाषासे प्रभुकी पूजा की और पूजाके अन्तमें असंख्यात पुष्पोंकी पुष्पांजलिसे प्रभुके चारों ओर पुष्प-वृष्टि की। इसी समय इन्द्राणीने प्रभुके सन्मुख पञ्च-रत्नोंके चूर्ण द्वारा अपने हाथोंसे उत्तम साथिया बनाया।

पूजा कर चुकने के बाद इन्द्रने हाथ जोड़ कर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और मधुर स्वरमें प्रभु के गुणोंकी स्तुति करना आरम्भ किया। देव! तुम सम्पूर्ण जगतके स्वामी हो। तुम्हीं गुरुओंके भी श्रेष्ठ

गुरु हो, पूजनीयोंके भी परम पूज्य हो, एवं वन्दनीयोंके वन्द्य हो ! योगियों में सर्व-श्रेष्ठ योगी हो, गुणियोंमें उत्तम गुणवान् हो और सभी धर्मात्माओंमें परमादरणीय धर्मात्मा हो । ध्यानियोंमें महाध्यानी, यतियोंमें बुद्धिमान् यति, ज्ञानियोंमें महान् ज्ञानी और स्वामियोंके भी स्वामी तुम्हीं हो। तुम जितेन्द्रिय हो । जिनोंमें जिनोत्तम होनेके कारण ध्येय एवं स्तुत्य तुम्हीं हो । दाताओं में उत्तम दानी तुम्हीं हो और हितेच्छुकों में परम हितैषी तुम्हीं हो । संसारके भयसे त्रस्त पुरुषों के रक्षक, शरण-हीन जीवोंके शरणदाता और सम्पूर्ण कर्म-जाल के नाशक तुम्हीं हो । मोक्ष के पथ-प्रदर्शक, जगत् के कल्याणकर्त्ता और बान्धव-विहीन जीवोंके अनन्यतम बन्धु तुम्हीं हो ।

तीन लोकके उत्तम राज्य की इच्छाके कारण महान् 'लोभी' एवं मुक्तिरूपिणी स्त्री की अभिलाषा करने के कारण अत्यन्त 'रागी' आप हैं । सम्यक् दर्शनादिक रत्नों का संग्रह आपने किया है, इसलिये आप 'महापरिग्रही' हैं, कर्म-रूपी शत्रुओं को नष्ट कर डालने के कारण 'महाहिंसक' तथा कषाय एवं इन्द्रियोंको जीत लेनेके कारण आप महान् 'विजयी' हैं । आप शरीरादिके विषयमें इच्छाहीन होकर भी लोकाग्र शिखर को चाहनेवाले हैं, देवियोंके मध्यमें रह कर भी परम ब्रह्मचारी हैं और आप एकमुख होकर भी अतिशयके कारण चार मुखवाले दिखलायी पड़ते हैं । इस लोकमें श्रेष्ठ लक्ष्मीसे युक्त होने पर भी आप निर्ग्रन्थराज हैं, और जगद्गुरु होनेके कारण अनुपमेय गुणोंके प्रधान आप ही हैं । हे देव, आज हमारा जीवन सफल हुआ और हम धन्य हुए । आपके दर्शनों के लिये हमें जो पद-यात्रा करनी पड़ी, इससे हमारे दोनों पैर कृतकृत्य हो गये । आपकी पूजा करनेसे हाथ, और चरण-कमलोंके दर्शन करने से हमारे नेत्र आज सफल हो गये ।

प्रणाम करने के कारण हमारा मस्तक, सेवा करनेके कारण हमारा शरीर एवं आपके गुणोंके वर्णन करनेके कारण हमारी वाणी सफल एवं पवित्र हो गयी । हे नाथ, आपके अनुपमेय गुणोंके विचार करने के निमित्त हमारा मन भी निर्मल एवं पवित्र हो गया । हे प्रभो, जब आपके असंख्य गुणों की प्रशंसा

गौतम आदि गणधर भी पूर्णरूपेण नहीं कर सकते, तब मुझ जैसा मूढ़मति भला, आपकी स्तुति क्या कर सकता है ? इसलिये मैं आपकी स्तुति क्या करूं ? प्रभो, आप अनन्त गुणवाले हैं, सर्व-प्रधान हैं जगद्गुरु हैं; आपको कोटिशः प्रणाम है । आप परमात्म-स्वरूप हैं, लोकोंमें उत्तम हैं, केवल-ज्ञानरूपी महाराज्यसे अलंकृत हैं; अनन्त दर्शन-स्वरूप हैं; अतः आपको बार-बार नमस्कार है । आप अनन्त सुख-रूप हैं, अनन्त वीर्यरूप हैं और तीनों जगत्के भव्य जीवोंके मित्र हैं; अतः आपको पुनः पुनः नमस्कार है । आप लक्ष्मीसे बढ़े हुए हैं, सबका मङ्गल करनेवाले हैं, अत्यन्त बुद्धिमान हैं, श्रेष्ठ योद्धा हैं, तीनों जगत्के स्वामी हैं और स्वामियों के भी परम श्रद्धेय स्वामी हैं, आप लोकातिशय सम्पत्ति से युक्त हैं, चमत्कारपूर्ण हैं, दिव्य देह एवं धर्मरूप हैं; आपको कोटि-कोटि नमस्कार है । आप धर्म-मूर्ति हैं, धर्मोप-देशक हैं, धर्मचक्रके प्रवर्त्तक हैं; अतएव हम आपको पुनः पुनः नमस्कार करते हैं । हे नाथ, इस प्रकार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक की गयी आपकी स्तुति और नमस्कारसे आप हम पर प्रसन्न हों और आपकी समस्त गुण-राशि हमें प्राप्त होकर कर्म-शत्रुओंका नाश करे तथा साथ ही समाधि-मरणरूपी श्रेष्ठ मृत्युको भी प्रदान करें ।

इस प्रकार देवोंके सहित इन्द्र श्रीमहावीर प्रभु की स्तुति, नमस्कार एवं भक्तिपूर्वक इष्ट-प्रार्थना करके धर्मोपदेश सुनने के लिये अपने-अपने प्रकोष्ठ में बैठ गये तथा अन्य भव्य एवं देवियां भी कल्याण-कामना से (हित प्राप्तिके लिये) जिनेन्द्र प्रभुके सामने बैठ गयीं ।

जब इन्द्रने देखा कि बारह प्रकारके जीव-समूह उत्तम धर्म सुननेकी इच्छा से अपने-अपने प्रकोष्ठ में बैठे हुए हैं और तीन प्रकारका समय व्यतीत हो जाने पर भी अर्हन्तकी ध्वनि नहीं निकल रही है, तब उसने सोचा कि किस कारणसे ऐसा हो रहा है ? ध्वनिमें कौन-सी बाधा उपस्थित हो गयी है ? जान पड़ता है, अवधिज्ञानके प्रभावसे कोई भी मुनीश्वर गणधर-पदके उपयुक्त नहीं है । ऐसा सोच कर इन्द्र पुनः सोचने लगा कि कैसी आश्चर्य की बात है कि इन बहुसंख्यक मुनीशों में कोई भी ऐसा सुयोग्य मुनीन्द्र नहीं है, जो प्रभुके मुखसे बहिर्भूत रहस्यमय पदार्थोंको सुन कर 'गणधर' हो जाय और सम्पूर्ण

द्वादशांग शास्त्र की रचना में कृतकार्य हो सके।

इसके बाद इन्द्रको ज्ञात हुआ कि इसी नगरमें गौतम-कुल-भूषण 'गौतम' नाम का श्रेष्ठ ब्राह्मण है और वह गणधर होनेके योग्य है। ऐसा विदित हो जानेपर वह सौधर्मेन्द्र इन्द्र परम प्रसन्न हुआ और उस द्विजश्रेष्ठ गौतमको सभा-मण्डपमें लाने के लिये कोई उत्तम उपाय सोचने लगा। अन्तमें इन्द्रने मनमें विचार किया कि वह गौतम तो विद्याभिमानी है। यदि ब्रह्मपुरमें उसके पास जाकर गूढ़ अर्थवाले कुछ काव्य पूछे जांय तो जब उन गूढ़ श्लोकों का अर्थ उसे नहीं मालूम होगा, तब शास्त्रार्थकी इच्छासे वह स्वयं ही यहां आ जायगा। ऐसा सोच कर बुद्धिमान इन्द्रने वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और हाथमें लाठी लेकर टेकता हुआ गौतम ब्राह्मणके पास जा पहुँचा। ब्राह्मण-भाषी इन्द्रने गौतमसे कहा—हे ब्राह्मण, तुम तो बहुत विद्वान् जान पड़ते हो, तुम्हारे सदृश दूसरा कोई विद्वान् यहां नहीं दिखाई पड़ता। मेरे गुरु श्रीमहावीर इस समय मौन धारण किये हुए हैं, इसलिये एक काव्यके अर्थको पूछनेके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूं; विचार कर इसका अर्थ मुझे बताओ। इस काव्यके वास्तविक अर्थको समझ लेनेसे मेरा जीविका-निर्वाह होगा, कितने ही भव्य-पुरुषों का उपकार होगा और आप भी यश के भाजन होंगे। छद्मवेषी इन्द्रके बचन को सुन कर विद्वान् ब्राह्मण गौतमने कहा—ऐ वृद्ध, यदि मैं तेरे काव्यका उचित अर्थ शीघ्र ही कर दूं, तो तू इसकी प्रतिक्रियामें क्या करेगा? इस बातके उत्तर में इन्द्र ने कहा—यदि मेरे काव्यकी समुचित व्याख्या तुम कर दोगे, तो मैं विधिपूर्वक तुम्हारा शिष्यत्व (चेलापन) स्वीकार कर लूंगा। परन्तु यदि तुम यथार्थ भाव नहीं बतला सके तो? इन्द्र की बात सुन कर गौतम ब्राह्मणने उत्तर दिया—ऐ वृद्ध पुरुष! मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम्हारे काव्यका यदि मैं उचित व्याख्यान नहीं कर पाऊंगा तो इस पांच सौ शिष्यों की मण्डली एवं अपने दोनों भाइयों के साथ मैं भी अपना जगत्प्रसिद्ध एवं वेद-प्रतिपादित सनातन मतको छोड़कर, तुम्हारे गुरुका शिष्य बन जाऊंगा। मेरी प्रतिज्ञा कभी असत्य और अन्यथा नहीं हो सकती। फिर मेरे वचनके दो साक्षी भी तो हैं। ये इस नगरके स्वामी हैं और

यह कश्यप नाम का ब्राह्मण है। गौतम की बात सुन कर उन दोनों ने कहा कि, ठीक है; कदाचित् मेरु पर्वत भी चलायमान हो सकता है, परन्तु इस विद्वान ब्राह्मणके सत्य वचन तुम्हारे श्रीमहावीर प्रभु की ही तरह अटल हैं। जब दोनों ही परस्पर वचनबद्ध हो चुके और अन्य प्रकार की समस्त बातें तय हो गयीं, तब इन्द्र ने गम्भीर स्वर में निम्नलिखित काव्य कहा—

"त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं सकल गतिगणा सत्पदार्था नवैवः।
विश्वं पञ्चास्ति कायाः व्रत समिति चिदः सप्ततत्वानि धर्माः ॥
सिद्धेर्मार्गः स्वरूपं विधिजनित फलं जीवषट्काय लेश्या।
एतान् यः श्रद्दधाति जिन वचन रतो मुक्तिगांभीरु भव्यः ॥ २ ॥"

इन्द्रके कहे हुए उपरोक्त काव्यको सुन कर विद्वान गौतम आश्चर्य-चकित हो गया। श्लोकका कुछ भी अर्थ उसकी समझमें नहीं आया। प्रतिज्ञा भंगकी आशंकासे वह अपने मनमें ही तर्क-वितर्क करने लगा—यह काव्य तो बहुत ही कठिन है, कुछ समझमें ही नहीं आता। श्लोकमें 'त्रैकाल्यं' शब्द है, तो तीन काल कौन-कौनसे हो सकते हैं? इस त्रिकालमें उत्पन्न सभी वस्तुओंको जाने, वही सर्वज्ञ है और वही इस काव्यका अर्थज्ञाता भी है। मैं भला, क्या जानूं? 'द्रव्यषट्कं' में छः द्रव्य कौन-कौन से हैं? 'सकल गति गणाः' ये सम्पूर्ण गतियां कौन-कौन-सी हैं? उनका स्वरूप क्या है? 'सत्पदार्था नवैव' में उत्तम नव पदार्थ कौन-कौनसे हैं? इसके पूर्व तो मैंने नव पदार्थोंके विषय में कुछ भी नहीं सुना। 'विश्वं' में विश्व क्या है? यह सब विश्व ही तो है? या तीनों लोक विश्व हैं? कुछ निश्चय नहीं है। 'पञ्चास्ति कायाः' में पांच अस्तिकाय क्या हैं? 'व्रत समिति चिदः' में व्रत क्या है? समिति किसे कहते हैं? ज्ञान का क्या स्वरूप है? इस सबका फल क्या है? और 'सप्त सत्वानि' में सात तत्व कौन-कौन से हैं? 'धर्माः' में धर्म क्या है? 'सिद्धेर्मार्गा' में सिद्धि अथवा कार्य-निष्पत्ति क्या है? उसका मार्ग क्या है? एक है अथवा अनेक मार्ग हैं? 'स्वरूपं' में स्वरूप क्या है? 'विधिजनित फलं' में विधि क्या है? उससे

उत्पन्न फल क्या है ? 'जीव षट्काय लेश्या' में छः प्रकारके जीव-निकाय कौन-कौनसे हैं ? छः लेश्या क्या हैं ? इन सब बातोंको तो मैंने कभी नहीं सुना । फिर इन सबका लक्षण एवं स्वरूप मैं क्या जानूं ? ये बातें तो हमारे वेद एवं स्मृति-ग्रन्थोंमें कहीं नहीं हैं । उफ् ! इस छोटेसे काव्यमें तो सब सिद्धान्त ही भरे पड़े हैं । यह बुड्ढा तो सिद्धान्त-समुद्र का सारा रहस्य ही हमसे काव्य के बहाने पूछ रहा है । अब मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि, इस छोटेसे काव्य का गूढ़ार्थ, उस सर्वज्ञ एवं उसके सुयोग्य शिष्य के सिवा दूसरा कोई कदापि नहीं कह सकता है । यदि मैं इस वृद्धको अर्थ नहीं बताता, तो प्रतिष्ठा घटती है । इसलिये इसके गुरुसे ही शास्त्रार्थ करना चाहिये । ऐसा सोच कर गौतम ब्राह्मणने इन्द्रसे कहा—मैं इस विषय में तुमसे विवाद न कर तुम्हारे गुरु से ही शास्त्रार्थ करूँगा । ऐसा कह कर 'काललब्धि' (उत्तम भवितव्यता) के वशीभूत होकर गौतम विप्र अपने पांच सौ शिष्यों एवं दोनों भाइयोंके साथ श्रीमहावीर प्रभुसे शास्त्रार्थ करने के लिये सभा-मण्डपमें जाने के लिये घरसे निकल पड़ा ।

वह बुद्धिमान् गौतम ब्राह्मण मार्ग में जाते हुए सोचता जाता था कि, जब यह वृद्ध ब्राह्मण ही दुर्जेय है, तब इसका गुरु तो और भी महा असाध्य होगा । कुछ भी हो, अब तो चलना ही चाहिये । उस महापुरुषके संसर्गसे भला ही होगा, हानि क्या होगी ? ऐसा विचारता हुआ वह क्रमशः संसार को आश्चर्य-चकित कर देनेवाले अत्यन्त उन्नत मानस्तम्भके समीप आया । उस मानस्तम्भके दर्शनसे ही गौतमकी मानलिप्सा इस तरह नष्ट हो गयी, जिस तरह वज्रपातसे पर्वत-श्रेणियां शतधा विभक्त होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं । उसके शुभ मृदु-परिणाम प्रादुर्भूत हुआ । इसके बाद उस गौतम ब्राह्मणने अति विशुद्ध परिणामोंसे युक्त होकर सभा-मण्डपकी विपुल विभूतियोंको देखा और आश्चर्यचकित होकर वह उस अलौकिक सभा-मण्डपमें प्रविष्ट हुआ । जब सभा-मण्डपमें प्रविष्ट होकर उस उत्तम विप्रने प्रभु को अनेक ऋद्धियों एवं जीव-समूहोंसे घिरे हुए रत्न सिंहासन पर बैठे हुए देखा, तब वह अनुराग से अभिभूत हो गया और भक्तिपूर्वक जगद्गुरु महावीर प्रभुकी तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया ।

फिर अञ्जलिवद्ध होकर अपनी सिद्धि के लिये प्रभु के सार्थक नामों से उनकी स्तुति करने लगा—
"हे भगवन्, तुम जगत् के स्वामी हो; एक हजार आठ नामोंसे अलंकृत होने पर भी नाम-रूपी कर्मके नाशक हो। सम्पूर्ण अर्थोंका ज्ञाता, बुद्धिमान् पुरुष, यदि विशुद्ध अन्तःकरण होकर आपके एक ही नाम से आपकी स्तुति करता है, तो वह भी आपके ही समान गुणोंसे युक्त होकर शीघ्र ही आपके सम्पूर्ण नामों को और उनके फलों को पा सकता है। इसलिये हे प्रभो! मैं आपके एक सौ आठ सुन्दर नामोंसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करता हूं।"

"हे भगवन्, आप धर्मराजा, धर्मचक्री, धर्मा, धर्माग्रणी, धर्मतीर्थ-प्रवर्तक, धर्मनेता और धर्मेश्वर हैं। तथा धर्मकर्ता, सुधर्माढ्य, धर्मस्वामी, सुधर्मवित्, धर्माराध्य, धर्मीश, धर्मीढ्य, धर्मबान्धव, धर्मि-ज्येष्ठ, अतिधर्मात्मा, धर्मभर्ता, सुधर्मभाक्, धर्मभागी, सुधर्मज्ञ, धर्मराज, अतिधर्मधीर, महाधर्मी, महादेव, महानाद, महेश्वर, महातेजा, महामान्य, महापूत, महातपा, महात्मा, महोदान्त, महायोगी, महाव्रती और महाध्यानी हैं एवं महाज्ञानी, महाकासविक, महान्, महाधीर, महावीर, महार्चाढ्य, महेशिता, महादाता, महात्राता, महाकर्मा, महाधीर, जगन्नाथ, जगद्भर्ता जगत्पति, जगज्ज्येष्ठ, जगन्मान्य, जगत्सेव्य, जगन्नुत, जगत्पूज्य, जगत्स्वामी, जगदीश, जगद्गुरु, जगद्बन्धु, जगज्जेता, जगन्नेता, जगत्प्रभु, तीर्थकृत, तीर्थभूतात्मा, तीर्थनाथ, सुतीर्थवित्, तीर्थङ्कर, सुतीर्थात्मा, तीर्थेश, तीर्थकारक, तीर्थनेता, सुतीर्थज्ञ, तीर्थार्ह्य, तीर्थनायक, तीर्थराज, सुतीर्थाङ्क, तीर्थभूत, तीर्थकारण, विश्वज्ञ, विश्वतत्त्वज्ञ, विश्वव्यापी, विश्ववित्, विश्वाराध्य, विश्वेश, विश्वलोकपितामह, विश्वाग्रणी, विश्वात्मा, विश्वार्च्य, विश्वनायक, विश्वनाथ, विश्वेड्य, विश्वधृत, विश्वधर्मकृत्, सर्वज्ञ, सर्वलोकज्ञ, सर्वदर्शी, सर्ववित्, सर्वात्मा, सर्वधर्मेश, सार्व, सर्वबुधाग्रणी, सर्वदेवाधिप, सर्वलोकेश, सर्वकर्महृत्, सर्वविद्येश्वर, सर्वधर्मकृत्, सर्वशर्मभाक् आप ही हैं।"

"हे त्रिजगत्पति, इन पूर्वोक्त अष्टोत्तरशत (१०८) नामोंसे मैंने आपकी स्तुति की। आप हमारे ऊपर दया करें और अपने समान बनावें। हे देव, तीनों लोकमें स्वर्ण एवं रत्नोंकी जितनी भी कृत्रिम-

अकृत्रिम प्रतिमाएँ आपकी हैं, उन सबकी सदैव मैं स्तुति, पूजा एवं स्मरण किया करता हूँ। हे प्रभो, जो प्राणी भक्तिपूर्वक आपकी पूजा, स्तुति एवं नमस्कार किया करते हैं, वे त्रिलोकीके स्वामी हो जाते हैं। जो कि साक्षात्मूर्त्ति आपकी ही स्तुति, पूजा एवं नमस्कार और अहर्निश सेवा किया करते हैं, उन भव्य श्रेष्ठोंको कितना अधिक फल मिलता होगा, इसकी इयत्ता मैं नहीं बतला सकता। हे नाथ, इस लोकमें जितने भी श्रेष्ठ एवं स्निग्ध परमाणु-पुंज हैं, उन सबको एकत्र करके ही आपके अलौकिक सुन्दर शरीरका निर्माण हुआ है। आपका यह उत्तम शरीर सम्पूर्ण जगत्को अत्यन्त प्रिय है और कोटि सूर्यके बराबर तेज-पुंजके प्रकाशसे सकल दिशाओंको आलोकित किया करता है। यह आपका दैदीप्यमान मुख-मण्डल निर्विकार एवं साम्यसूचक होकर मन की अत्यन्त आन्तरिक विशुद्धि को बतला रहा है। हे जगद्गुरो! इस पृथ्वीके जिस-जिस स्थान पर आपने अपना चरणारविन्द रखा है, वे सब संसार के पवित्र तीर्थ-स्थान हो गये हैं और सदैव उस स्थान की वन्दना मुनि-देवलोग किया करते हैं। इसी तरह, हे नाथ! जिन क्षेत्रोंमें आपके जन्म-कल्याणोत्सव मनाये गये हैं, वे सब अति पवित्र एवं श्रद्धास्पद तीर्थ-स्थान हो गये हैं। वे देश और काल धन्य हैं, जिनमें आपका गर्भादिकल्याणक एवं केवलज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। आपका यह केवलज्ञान सम्पूर्ण संसारके लिये अज्ञेय एवं अव्यापक हैं। इसलिये आकाश मात्र ही में व्याप्त होकर वह स्थित है। इसलिये संसारके भव्योंके द्वारा आप सर्वज्ञ एवं संसार के सम्पूर्ण रहस्यों को जाननेवाले तथा इस अनन्त विश्वके स्वामी माने गये हैं। हे स्वामिन्, आपका केवलज्ञान अनन्त है और आप जगवन्द्य हैं। हे प्रभो, आपका अनन्त वीर्य सकल दोषोंसे वर्जित है। सारे पदार्थोंके दर्शन होने पर भी यह अनुपम बना हुआ है। देव! आपका अक्षय एवं परमोत्तम सुख 'निर्वाण' है। वह इन्द्रियातीत एवं अनुपमेय होनेके कारण सांसारिक जीवोंके लिये अनुभवगम्य नहीं हो सका। हे महावीर प्रभु, आपके ये चारों अनन्त गुण अनन्य एवं असाधारण हैं; केवल मात्र आपमें ही ये गुण हैं। यद्यपि आप कामना-शून्य हैं, तथापि संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में श्रेष्ठ प्रातिहार्यादि

हैं। इनके अतिरिक्त आपके
आठ सम्पदाएँ आपके पास अतिशय शोभा-सम्पन्न होकर विराज रही हैं। इनके अतिरिक्त आपके
और भी अन्य असंख्य गुण तीनों लोकमें अद्वितीय हैं; फिर हमारे जैसे मूढ़मति एवं स्वल्पज्ञानी आपके
उन अनुपम गुणों की प्रशंसा किस प्रकार सफलतापूर्वक कर सकते हैं ? हे प्रभो ! जैसे कि मेघों की
जलधारा की, आकाश के तारामण्डल की, समुद्रके तरंगों की एवं सांसारिक जीवों की गणना कदापि
नहीं की जा सकती है, वैसे ही आपके गुण भी असंख्य एवं अनन्त हैं; इसलिये आपकी स्तुति मैं किस
प्रकार कर सकता हूं ? आपके गुणों की यथास्थितिको तो गणधर भी नहीं जान पाते; फिर दूसरों को
वे क्या बतला पायेंगे ? आपकी यथार्थ स्तुति तो हमसे होगी नहीं, फिर व्यर्थ प्रयाससे क्या लाभ ?
हे देव ! आपको नमस्कार है। प्रभो, आप दिव्यमूर्ति हैं, सर्वज्ञ हैं और अनन्त गुणस्वरूप हैं; आपको
बार-बार नमस्कार है। आप दोषहीन, परम-बन्धु, मङ्गल-स्वरूप, लोकोत्तम, जगत्-शरण एवं मन्त्रमूर्ति हैं;
आपको कोटिशः प्रणाम है। आप वर्द्धमान स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप महावीर हैं, सन्मति
हैं, विश्वके हितस्वरूप हैं, तीनों जगत्के गुरु हैं, अनन्त सुखके समुद्र हैं, इसलिये आपको अनन्य बार
नमस्कार है। इस प्रकार परम भक्तिपूर्वक मैं आपकी स्तुति एवं पुनः पुनः कोटिशः प्रणाम करके आपसे
त्रैलोक्य की सम्पत्ति को नहीं मांगता। हे नाथ ! मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि, आप अपने ही
समान हमें भी सारी सम्पदाओंसे युक्त कर दें। आपकी अलौकिक सम्पदाएँ कर्म-नाशसे उत्पन्न हुई हैं,
अक्षय सुखको देनेवाली हैं; अनाशवान् और संसारके द्वारा नमस्कृत हैं।

आप इस धरणी-तल पर अत्यन्त उदार परमदाता हैं और मैं अत्यन्त लोभी हूँ; आप प्रसन्न होकर
मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करें जिससे मेरी अभिलाषा सफल हो। आपके ही चरण-कमलोंकी पूजा इन्द्र
किया करते हैं, आप धर्म-तीर्थके उद्धारक हैं, आप कर्म-रूपी महाशत्रुओंके नाशक हैं; आप ही महायोद्धा
हैं और सम्पूर्ण संसार को स्वच्छ प्रकाश देनेवाले रत्नमय दीपक हैं। त्रिलोकीके तारनेमें आपही समर्थ
एवं चतुर हैं एवं आपही उत्तमोत्तम गुणोंके आगार (खजाना) हैं। इसलिये हे प्रभो, मैं संसार-सागर

में निरवलम्ब होकर डूब रहा हूँ। कृपा कर आप मेरी रक्षा करें।"

इस प्रकार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गौतम ब्राह्मणने जिनपति महावीर प्रभु की स्तुति करके उनके चरण-कमलोंको प्रणाम किया और अपने को कृतकृत्य समझा। इसके अनन्तर वह गौतम ब्राह्मण इन्द्रोंका पूज्य होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-रूपी रत्नको पाकर, श्रेष्ठ धर्मके उत्तम-मार्गका चतुर ज्ञाता हो गया तथा जघन्य कर्म-रूपी शत्रुओं का नाशक हुआ।

षोड़ष प्रकरण

केवल-ज्ञानी सूर्य सम, जगत् प्रकाशक वीर।
अन्धकार अज्ञान को, दूर करं मति धीर ॥ १ ॥

इसके बाद उन गौतम स्वामीने श्रीतीर्थनायक महावीर स्वामीको नतमस्तक होकर प्रणाम किया। भव्य-जीवोंकी और अपनी कल्याण-कामनासे, अज्ञानके नाश एवं ज्ञानकी प्राप्तिके लिये, उन्होंने सर्वज्ञ जिनेन्द्र प्रभुसे निम्नोक्त प्रश्न-माला को पूछा—

"हे देव, जीव-तत्व का क्या लक्षण है ? उसकी अवस्था कैसी है, इसके भेद एवं गुण कितने हैं ? पर्याय कौन हैं ? कितने पर्याय सांसारिक पुरुषों के लिये गम्य हैं ? इनके अतिरिक्त अजीव-तत्व के भेद, स्वरूप एवं गुण कौन-कौन से हैं ? अन्य आस्रवादि तत्वों में कितने गुण-कारण एवं कितने दोष-कारण हैं ? तत्त्व क्या वस्तु है ? उसका कर्ता कौन है ? तत्व का लक्षण (स्वरूप) और फल क्या है ? संसार में किस तत्व के द्वारा क्या सिद्ध किया जाता है ? किन दुराचारों से पापी जीव नरकगामी होता है ? किन जघन्य कर्मोंके कारण जीव दुःखदायक तिर्यञ्चादि गतियोंमें चले जाते हैं ? किन-किन श्रेष्ठ आचरणोंके द्वारा जीव स्वर्गगामी होता है ? किस दानके फलसे शुभ परिणामवाले जीव भोगभूमि को प्राप्त होते हैं ? किन आचरणोंके द्वारा जीवको स्त्री-लिंगत्वकी प्राप्ति होती है ? क्या करने से स्त्रियों को पुरुष-पर्याय की प्राप्ति होती है ? क्या कारण है कि, कुछ जीव नपुंसक हो जाते हैं ?

लंगड़े इत्यादि विविध प्रकार से अङ्गहीन
किन-किन पापाचरणोंके कारण जीव पगले, अन्धे, गूंगे, लूले, होकर अनेक दुःखोंको भोगते रहते हैं ? किन-किन कर्मोंके करनेसे जीव रोगी एवं निरोग, रूपवान एवं
कुरूप, सौभाग्यशाली एवं दुर्भाग्यशाली, हुआ करते हैं ? किस कारणसे मनुष्य मूर्ख और पण्डित, कुबुद्धि
और बुद्धिमान, शुभ परिणामी और अशुभ अन्तःकरणवाले हुआ करते हैं ? तथा पापात्मा और धर्मात्मा,
भोगशाली और भोगहीन, धनवान् और निर्धन इत्यादि विषम परिस्थितिवाले लोग कैसे हो जाया
करते हैं ? अपने कुटुम्बियोंका एवं इष्ट जनोंका वियोग क्यों हो जाता है ? फिर कभी इसका संयोग
क्यों हो जाता है ? किस कारणसे पिताके रहते पुत्र मर जाता है ? किसीके पुत्र होता ही नहीं क्यों ?
कोई स्त्री वन्ध्या हो जाती है, इसका कारण क्या है ? किस कर्मके करनेसे ऐसा होता है ? किसीके पुत्र
चिरजीवी होते हैं, कोई कायर होता है, इसका क्या कारण है ? किन कर्मों के प्रभाव से निन्दा तथा
विमल कीर्ति प्राप्त होती है ? सुशीलता और दुःशीलता कैसे प्राप्त हो जाती है ? भव्य-जीवोंको किस
कारणसे सुसंगति एवं दुःसंगति प्राप्त होती है ? विवेकशीलता एवं जड़ता कैसे प्राप्त हो जाती है ? उच्च
कुल एवं नीच कुल क्यों मिल जाता है ? किस कर्मके द्वारा मिथ्या-मार्गमें प्रवृत्ति होती है ? जिन-धर्म
के प्रति महान् प्रेम किस कर्मके कारण जाग्रत होता है ? किसीको निर्बल तथा किसीको अति बलवान्
शरीर क्यों मिल जाता है ? मोक्षका मार्ग कौन-सा है—लक्षण एवं फल क्या है ? मुनियों का श्रेष्ठ
धर्म कौन है ? गृहस्थोंका धर्म क्या है ? दोनों धर्मोंके अनुष्ठानका उत्तम फल क्या मिलता है ? धर्मके कारण
एवं भेद कौन कौन हैं ? और शुभ आचरण क्या है ? छः कालोंका स्वरूप क्या है ? तीनों लोक की स्थिति
कैसी है ? इस धरणी-तल पर शलाका यानी पदवीधारक पुरुष कौन हैं ? इन सबके सम्बन्धमें आप कृपया
संक्षेपमें उपदेश प्रदान करें और साथ ही भूत, भविष्य, वर्त्तमान—इन तीनों कालके विषयमें, द्वादशांग
से उत्पन्न आपके सम्पूर्ण ज्ञानका उपदेश भव्य-जीवोंके उपकारके लिये, एवं स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्तिके लिये,
अपनी अनुपम गम्भीर ध्वनिसे करनेकी कृपा करें । गौतम ब्राह्मणकी इस प्रश्नावली को सुन कर भव्य-

जीवोंकी भलाईके लिये, सतत प्रयत्नशील तीर्थराज महावीर प्रभुने मोक्ष-पथको दिखला कर उसमें प्रवृत्त करानेकी इच्छासे, तत्वादि प्रश्नोंका सम्यक् उत्तर, गम्भीर ध्वनिमें देना आरम्भ किया। उन्होंने कहा—

"हे बुद्धिमान् गौतम, तू अपनी अभीष्ट पूर्ति कर देनेवाले प्रश्नोत्तरोंको स्थिर-चित्त होकर अन्यान्य उपस्थित प्राणियोंके साथ सुन। इस उपदेशसे सभीका कल्याण होगा।" प्रभुने जब अपने मुखारविन्द से दिव्य उपदेशकी मधुर ध्वनि निकाली, तब उनके ओष्ठ इत्यादिका परिचालन एकदम ही नहीं हुआ। वह ध्वनि पर्वत-गुफाओंसे निकली प्रतिध्वनिके समान थी, अत्यन्त कर्णप्रिय थी और नाना सन्देहों को नष्ट करनेवाली थी। धन्य है, तीर्थराजोंकी उस योगजन्य अद्भुत शक्तिको, जिसके द्वारा सांसारिक भव्योंका महान् उपकार होता है। भगवान कहने लगे—हे गौतम, बुद्धिमान् लोग जिसको यथार्थ सत्य कहते हैं; वह सर्वज्ञ-प्रतिपादित-पदार्थोंका स्वरूप ही है। इस बातको तुम सर्वथा निर्भ्रान्त समझो। जीव दो प्रकारके होते हैं—एक मुक्त (सिद्ध) पुरुष और दूसरे संसारी। प्रथम मुक्त जीवोंमें तो कोई भेद नहीं; परन्तु संसारियों में कई प्रकार के भेद हैं। जो आठ कर्मों से रहित हैं, तथा आठ गुणोंसे शोभित हैं, सर्वदा एक स्वरूप हैं, समान सुखवाले हैं एवं सम्पूर्ण दुःखों से हीन हैं, उन्हीं को सिद्ध अथवा मुक्त कहा जाता है। ऐसे सिद्ध महापुरुष संसारके उच्चतम शिखर पर विराजमान होकर निर्बाध एवं अनन्त ज्ञानयुक्त होते हैं और उनका शरीर भी अलौकिक होता है। संसारी जीवों की विभिन्न श्रेणियां और भेद हैं। वे स्थावर और त्रसके भेदसे दो प्रकार है; एकेन्द्री, विकलेन्द्री एवं पंचेन्द्रीके भेद से तीन प्रकारके हैं और नरकादिक भेदसे चार प्रकारके हैं। दयालु श्रीजिनेन्द्र भगवान्ने, प्राणियोंको इन्द्रियोंकी अपेक्षा एकेन्द्री, दो इन्द्री, ते इन्द्री, चौ इन्द्री एवं पंचेन्द्रीके भेदसे पांच तरह का कहा है। त्रस एवं स्थावर जीव छः प्रकार के होते हैं। इन छः काय जीवों की रक्षाके लिये ही जिनेन्द्र प्रभु की आज्ञा है। पृथ्वी इत्यादि पांच स्थावर के साथ विकलेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय मिला कर जीवों का सात भेद हो जाता है। पांच स्थावर, विकलेन्द्रिय, संज्ञी एवं असंज्ञी जीवों की—ये आठ जातियां हैं।

इस प्रकार जिनागममें जीवोंके नौ भेदोंको कहा
पांच स्थावर, दो इन्द्री, ते इन्द्री, चौ इन्द्री, पंचेन्द्री—इस प्रकार जिनागममें जीवोंके नौ भेदोंको कहा
गया है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति, साधारण वनस्पति, दो इन्द्री, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय,
पंचेन्द्री—इस प्रकार जीवोंके दस भेद कहे गये हैं। स्थावरके सूक्ष्म, बादर इत्यादि दस भेदोंमें ग्यारहवां
त्रस मिला देने पर जीवोंके ग्यारह भेद हो जाते हैं। ऐसा ही बुद्धिमानोंको जानना चाहिये। दस स्थावर
में विकलेन्द्र एवं पंचेन्द्री मिला देनेसे जीवोंके बारह भेद हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति—
ये पांच स्थावर एवं बादरके भेदसे दस प्रकारके होते हैं। विकलेन्द्री, असंज्ञी पंचेन्द्री, पंचेन्द्री संज्ञी
और पंचेन्द्री के साथ जीवों के तेरह भेद हो जाते हैं। सूक्ष्म बादर भेद दो प्रकार एकेन्द्री, दो इन्द्री,
ते इन्द्री, चौ इन्द्री और समनस्क (मन सहित) एवं अमनस्क (मन रहित) भेद से दो प्रकार का
पंचेन्द्री—इस तरह इनके सात भेद होते हैं। ये सातों 'अपर्याप्त' एवं 'पर्याप्तके' भेदसे चौदह प्रकार
के हो जाते हैं। अर्थात् जीव समान यानी जीवों का भेद चौदह प्रकार का हुआ।"

इसी प्रकार अनेक जीव-जातियोंके भेदादिको श्रीमहावीर प्रभुने गौतमादि गणधरोंसे कहा। पृथ्वी,
जल, अग्नि, वायुकाय एवं नित्य-निगोद और इतर-निगोदके भेदसे दो प्रकार के साधारण वनस्पति—
ये छहो पृथक्-पृथक् सात-सात लाख, दस लाख प्रत्येक वनस्पति, छः लाख विकलेन्द्री, पंचेन्द्री, तिर्यंच
और नारकी; देव बारह लाख, तथा चौदह लाख मनुष्योंकी जातियां हैं। सब मिला कर चौरासी लाख
योनियां हुईं। इन जीवोंका करोड़ों कुल है। इस बातको भी श्रीमहावीर प्रभुने गणधरोंसे तथा उपस्थित
जीव-समूहोंसे कहा। चार गति, पांच इन्द्रिय-मार्गणा और छः काय मिल कर पन्द्रह योग हुए। स्त्री-वेद
आदि तीन वेद हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि पचीस कषायें हैं। पांच सुज्ञान एवं तीन कुज्ञान मिला
देनेसे आठ प्रकारके ज्ञान हैं। शुभ एवं अशुभ रूप छः प्रकारकी लेश्याएँ हैं। भव्य एवं अभव्यके भेद
से दो प्रकारके जीव हैं; छः प्रकारके सम्यक्त्व हैं। संज्ञी एवं असंज्ञी भेदसे दो तरहके और आहारक एवं
अनाहारक भेदसे भी दो प्रकारके जीव हैं। इस प्रकारसे चौदह प्रकारके मार्गणा (अन्वेषण-पद) कहे

गये हैं। संसारिक जीवोंको इन्हीं चौदह मार्गणाओंमें दर्शन-विशुद्धिके लिये ज्ञानियोंको खोजते रहना चाहिये। जिनेन्द्र महावीर प्रभुने मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत, देश संयत, अप्रमत्त, अधःकरण, अपूर्व करण, अनिवृत्ति करण, सूक्ष्म सांपराय, उपशान्त कषाय, क्षीण कषाय, सयोगी जिन, अयोगी जिन—इन चौदह गुण-स्थानों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। इन्हीं चौदहों गुण-स्थानों के द्वारा भूतकाल में भव्य-जीवोंने निर्वाण-पदको प्राप्त किया है, वर्तमान कालमें प्राप्त कर रहे हैं और भविष्य काल में भी प्राप्त करेंगे। मोक्ष प्राप्तिका और कोई अन्य मार्ग नहीं है। ग्यारह अङ्गोंके अर्थोंको जान लेना पर एवं अभव्यके सदैव दीक्षित हो जाने पर भी, पहले मिथ्यात्व गुण-स्थान ही आता है, अन्य नहीं। जिस प्रकार कि मिश्री मिले हुए मीठे दूधको पीकर भी महाविषैला काला सांप अपने स्वाभाविक विषको नहीं छोड़ सकता, उसी तरह अभव्य भी आगम-रूपी अमृतका पान करने पर भी मिथ्यात्वको नहीं छोड़ता। अतः, शेष तेरह गुणस्थान पार्श्ववर्ती भव्योंके ही हो पाते हैं। अभव्य एवं दूरवर्ती भव्यों को कदापि नहीं होते। इस प्रकार श्रीमहावीर प्रभुने जीवतत्वकी व्याख्या पहले तो आगम (पारमार्थिक) भाषा में की; पुनः उसी तत्व (उपदेश) का व्याख्यान अध्यात्म (व्यवहारिक) भाषामें उन्होंने किया। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—ये तीन प्रकार के जीव, गुण और दोष की अपेक्षा के लिये कहे गये हैं। बहिरात्मा वही है, जो तत्व-अतत्व, गुण-अगुण, सुगुरु-कुगुरु, धर्म-पाप, शुभ-अशुभ, शास्त्र-कुशास्त्र, देव-कुदेव एवं हेय-उपादेय के विश्लेषण की परीक्षा में असमर्थ एवं विचारहीन है। जो बिना विचार किये ही, अपनी इच्छाके अनुसार सब वस्तुओंको ग्रहण कर लेता है, वही मूर्ख पहला बहिरात्मा है। ग्रहण किया गया यथार्थ असत्य हो अथवा सत्य, इसका विचार न कर जो जड़मति महाविषके समान नाश-कारी विषयजन्य सुखको ग्राह्य समझ कर सेवन करता है, वही बहिरात्मा है। जो बुद्धिहीन, जड़ शरीर एवं चैतन्य-रूप जीवको परस्पर सम्बद्ध हो जाने से एक ही मान लेता है, वह ज्ञानसे बहुत दूर है—निरामुख है और कुछ भी नहीं जानता। बहिरात्मा जीव अपनी दुर्बुद्धि के कारण उलटा समझता है।

वह पापोंको पुण्य समझ कर उनका आचरण करता है और अनेक प्रकारके कष्टों को पाकर दुःखित
होता है। ऐसे लोग इस संसार-रूपी महा घोर वन में सदैव भटका ही करते हैं। जो कि तप, श्रुत
एवं व्रतोंसे युक्त होने पर भी आत्म-स्वरूप एवं पर-स्वरूप का अच्छी तरह विचार नहीं कर पाता, वह
आत्म-ज्ञानसे वञ्चित है। इसलिये बुद्धिमानों को चहिये कि इन बहिरात्माओं के संसर्ग से सदैव बचे
रहें। बहिरात्मा जघन्य पथके पथिक होते हैं, स्वप्न में भी इनका संसर्ग कल्याणकारी नहीं होता है।

अन्तरात्मा वे हैं, जो कि बहिरात्मा के विपरीत हैं। इनकी बुद्धि विवेकशील होती है। ये जिन-
सिद्धान्तके धर्म-सूत्रोंको जानते हैं और तत्व-अतत्व, शुभ-अशुभ, देव-कुदेव, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म
तथा मिथ्यामर्ग एवं मोक्षमार्गके यथार्थ भेदों को अच्छी तरह जानते हैं। जिनमें ऐसी भेदज्ञानात्मक
शक्ति है, उसको जिनेन्द्र महावीर प्रभुने 'अन्तरात्मा' कहा है। जो कि अपने-आपको निष्फल एवं सिद्धों
के समान समझ कर, योगियों की तरह ध्यान-मग्न रहता है अर्थात् चिंतवन किया करता है और
आत्म-द्रव्य एवं पर-देह इत्यादि वस्तुओंमें वास्तविक भेदोंको समझता है, उस महाज्ञानीको 'अन्तरात्मा'
कहते हैं। थोड़े शब्दोंमें ऐसे कहा जा सकता है कि जिसका पवित्र एवं श्रेष्ठ मन उत्तम-अधमके विचार
कर लेने में कसौटी के समान होकर निर्णय कर डालता है, वही अन्तरात्मा या परम ज्ञानी है। ऐसा
जान कर आत्मा की तरफसे सम्पूर्ण जड़ता को हटा ले और परमात्मपद पाने की इच्छासे उसके पहले
अन्तरात्मपद को प्राप्त करे।

परमात्मा सकल विकलके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। जो दिव्य शरीरमें अवस्थित रहता है,
वह 'सकल परमात्मा' यानी अर्हंत प्रभु हैं। जो शरीर-रहित हैं—ऐसे सिद्ध महापुरुष 'निकल परमात्मा'
कहे जाते हैं। जो घातिया कर्मों का एकदम नाश कर उनसे रहित हो गये हैं, नव केवल-लब्धिवाले
मोक्षके अभिलाषी हैं, तीनों जगत्के मनुष्य एवं देवोंके द्वारा सदैव ध्यान करनेके योग्य हैं और संसार-
सागरमें डूबते हुए भव्य-प्राणियोंको अपने धर्मोपदेश-रूपी कोमल करोंसे उबारनेके लिये सतत प्रयत्नशील

रहते हैं तथा अत्यन्त बुद्धिमान् महापुरुषों के गुरु हैं, धर्म-तीर्थ प्रवर्तक हैं, साक्षात् तीर्थङ्कर स्वरूप हैं, सामान्य केवली स्वरूप हैं, सर्ववन्द्य हैं, अलौकिक औदारिक शरीर में शोभायमान हैं और सम्पूर्ण लोकातिशय सम्पत्तियोंसे युक्त होकर संसारमें सबको स्वर्ग एवं मोक्ष-रूपी उत्तम फल प्राप्त कराने की इच्छासे अनवरत धर्मोपदेश-रूपी अमृत की वर्षा किया करते हैं, उन्हींको 'सकल परमात्मा' कहते हैं। वे ही जगत्के स्वामी हैं और जिनेन्द्रपद के अभिलाषी हैं। उन्हें चाहिये कि किसी अन्य की शरणमें न जाकर, इन्हीं सकल परमात्मा प्रभु की सेवा करें। ऐसा ही नियम है। पूर्व के लोग ऐसा ही करते आये हैं। जो सम्पूर्ण कर्मोंसे रहित, शरीरादि मूर्तियोंसे हीन, परम ज्ञानमय, अतिशय महान् तीनों लोकमें श्रेष्ठतम, आठ गुणोंसे अलंकृत, तीनों लोकके बड़े-बड़े स्वामियोंके द्वारा सेवित, मोक्षाभिलाषियों द्वारा वन्दनीय तथा संसारके मुकुटमणि के समान विराजमान हैं वे ही निकल परमात्मा कहे गये हैं। यही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध परमेष्ठी अति निश्चल मनसे मुमुक्षुओं के द्वारा सदैव ध्यान करने के योग्य हैं। ऐसा ध्यान करनेसे क्रान्ति हीन योगीकी तरह परमात्मा-रूप मोक्षको सब लोग सहज ही में पा लेते हैं। प्रथम गुणस्थानमें उत्कृष्ट बहिरात्मा, दूसरे गुणस्थान में मध्यम और तीसरे में जघन्य बहिरात्मा कहा गया है। इसी तरह जघन्य अन्तरात्मा चौथे गुणस्थान में और उत्कृष्ट अन्तरात्मा बारहवें गुणस्थानमें कहा गया है। इससे अनन्त केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। दोनों के बीच में जो शेष सात शुभ गुणस्थान हैं, उनमें मोक्षमार्ग पर अवस्थित मध्यम अन्तरात्मा है। अन्तिम तेरहवें एवं चौदहवें गुणस्थानमें तीनों जगत्के जीवोंके द्वारा परमसेव्य परमात्मा अयोगी एवं सयोगी रूपसे वर्तमान हैं।

जो भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान तीनों काल में 'द्रव्यभाव' प्राणों से जीवन-धारण करने की शक्ति रखता है, वही यथार्थ 'जीव' है। पांच इन्द्रिय, मन-वचन-काय, आयु एवं उच्छ्वास-निःश्वास—संज्ञी-जीवोंके ये दस प्राण हैं। असंज्ञी-जीवोंके 'मन' को छोड़ कर शेष नौ प्राण होते हैं—ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है। चौ-इन्द्रिय जीवोंके आठ ही प्राण कहे गये हैं, उनमें कर्णेन्द्रिय और मन की कमी हो

होते हैं।
जाती है। इसी प्रकार ते इन्द्रिय जीवोंके सात प्राण (नेत्र, कर्ण तथा मनको छोड़ देनेसे) होते हैं।
दो इन्द्रिय जीवों के (नेत्र, कर्ण, नासा, मन छोड़ कर) छः प्राण और एकेन्द्रिय जीवों के तो (नेत्र,
कर्ण, नासा, जिह्वा, मन तथा वचन छोड़ कर) चार ही प्राण कहे गये हैं। इस जीवको, बुद्धिमानोंने
निश्चय तपके द्वारा उपयोगमयी चेतनास्वरूप, कर्म, नो कर्म, बन्ध-मोक्षका अकर्त्ता, असंख्यात-प्रदेशी,
अमूर्त्त, सिद्ध-समान और परद्रव्यसे रहित, कहा है। अशुद्ध निश्चय नय के द्वारा यही जीव रागादि
भाव-कर्मों का कर्त्ता और आत्मज्ञानसे हीन होकर कर्म-फलों का भोक्ता है। व्यवहार नयके द्वारा यह
जीव आत्म-ध्यानसे रहित होकर कर्म एवं शरीरादि नो कर्मोंका कर्त्ता है। यही सांसारिक जीव अपने
इन्द्रियों द्वारा ठगे जाने पर 'असद्भूत' एवं 'उपचरित' व्यवहार नय से घट-वस्त्र प्रभृति वस्तुओं का
निर्माता है। यह आत्मा समुद्घातके बिना संकोच एवं विस्तार-शक्तिसे प्राप्त शरीरके बराबर है। दीपक
से इसकी तुलना की जा सकती है। वेदना, कषाय, वैक्रियक, मारणान्तिक, तैजस, आहारक एवं
केवली-समुद्घात—ये सात प्रकार के 'समुद्घात' कहे गये हैं। इनमें से तीन तैजस, आहारक एवं
केवली-समुद्घात योगियोंके होते हैं और शेष चार समुद्घात सम्पूर्ण सांसारिक जीवोंके हो सकते हैं।
इस जीवके स्वभाव-गुण 'केवल-ज्ञानादि' हैं और विभाव-गुण 'मतिज्ञानादि' हैं। तथा इस जीवके नर,
नरक एवं देवादि पर्याय, विभाव-पर्याय और शरणहीन शुद्धप्रदेश स्वभाव-पर्याय हैं। पूर्वशरीरके विनाश
एवं अन्य शरीरकी उत्पत्ति-कालमें एक ही आत्मा है, अतएव उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य तीन भेद कहा
गया है।" इस प्रकार जिनेन्द्रदेव श्रीमहावीर प्रभुने अनेक नय-भेदोंके द्वारा गणधर गौतम की दर्शन-
विशुद्धिके लिये जीवतत्त्व का उपदेश किया। इसके बाद जिनेन्द्र प्रभुने पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश
एवं काल के पांच भेदयुक्त अजीवतत्त्व का व्याख्यान आरम्भ किया। रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्शवाले
पुद्गलद्रव्य अनन्त हैं और 'पूरण गलन-स्वभाव' होने के कारण उनका नाम सार्थक है। साधारणतः
पुद्गलके 'अणु' एवं 'स्कन्ध-रूप' दो भेद हैं। इन दोनोंमें जो कि अविभागी है, वह अणु कहा जाता

है और स्कन्धोंके तो अनेक भेद हैं। अथवा वही पुद्गल सूक्ष्म-सूक्ष्म भेदसे छः प्रकार के हो जाते हैं। उनमेंसे परमाणुरूप एक तो सूक्ष्म-सूक्ष्म है, जो नेत्रोंसे नहीं देखा जा सकता। आठ द्रव्य-कर्म-रूप पुद्गल स्कन्ध, सूक्ष्म-पुद्गल हैं। शब्द, स्पर्श, रस एवं गन्ध सूक्ष्म-स्थूल पुद्गल हैं। छाया, चाँदनी, धूप इत्यादि स्थूल-सूक्ष्म हैं। जल, अग्नि इत्यादि बहुतसे स्थूल पुद्गल हैं। पृथ्वी, विमान, पर्वत, गृह इत्यादि स्थूल-स्थूल पुद्गल हैं—ये पुद्गल के छः भेद हुए। स्पर्शादि बीस निर्मल गुण परमाणुमें हैं। ये 'स्वभाव-गुण' कहे जाते हैं। स्कन्धमें 'विभाव-गुण' कहा गया है। शब्द, अनेक तरहका बन्ध, अपेक्षा से स्थूल-सूक्ष्म, छः प्रकारके संस्थान, अन्धकार, छाया, आतप, उद्योत इत्यादि पुद्गलोंके विभाव-पर्याय हैं। परमाणुओं में स्वभाव-पर्याय ही रहते हैं। इसी प्रकार शरीर, मन, श्वासोच्छ्वास एवं इन्द्रियां भी पुद्गलके पर्याय-स्वरूप हैं। ये सभी पुद्गल-पर्याय, जीवन-मरण एवं सुख-दुःख आदि रूप में जीवों का अनेक उपकार किया करते हैं। स्कन्धमें अर्थात् एकत्रित परमाणु-पुंजमें काय-व्यवहारकी बहुत अपेक्षा है तथा परमाणु में उपचारसे कारण होने की अपेक्षा 'कायपना' कहते हैं।

जो जीव-पुद्गल की गमनक्रियामें सहायक हैं, वही धर्म-द्रव्य हैं। धर्म-द्रव्य मूर्त्तिहीन, क्रियाहीन एवं नित्य है। जिस प्रकार जल मछलियोंकी सहायता ही करता है, प्रेरणा नहीं; वही अवस्था इसकी भी है। पथिकोंको छायाके समान जो जीव-पुद्गल की संस्थिति में सहायक होता है, वह अधर्म-द्रव्य है। यह अधर्म-द्रव्य भी मूर्त्तिहीन, क्रियाहीन एवं नित्य है। आकाश-द्रव्य, लोक और अलोकके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। यह सम्पूर्ण द्रव्योंको स्थान देनेवाला है और यह भी वैसा ही मूर्त्तिहीन है। जितने परिणाम स्थानमें धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल एवं जीव रहते हैं, उतने स्थानको लोकाकाश कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य द्रव्योंसे रहित केवलमात्र जो आकाश है, उसको अलोकाकाश कहते हैं। यह अलोकाकाश अनन्त, अमूर्त, क्रियाहीन एवं नित्य है। इसे सर्वज्ञोंने देखा है। जो द्रव्योंकी नवीन एवं प्राचीन अवस्था को बदल देनेवाला है, वह समयादि-स्वरूप व्यवहारकाल है। लोकाकाश के विभिन्न

प्रदेशों पर रत्नराशिके समान जो एक-एक अणु पृथक्-पृथक् क्रियाहीन होकर स्थिररूपेण अवस्थित हैं, उन असंख्य कालाणुओंको जिनेन्द्र प्रभुने 'निश्चय काल' कहा है। धर्म, अधर्म, जीव एवं लोकाकाशके असंख्य प्रदेश हैं। कालके प्रदेश नहीं हैं; क्योंकि वह स्वयं एक-प्रदेशी है। इसलिये कालको छोड़ कर शेष पांच द्रव्य-अस्तिकाय कहे गये हैं। इन पांचोंमें छट्ठे कालको मिला देनेसे जिनमतके छः द्रव्य पूर्ण हो जाते हैं। द्रव्यों की इतनी ही संख्या निश्चित की गयी हैं। एक पुद्गल परमाणु जितने आकाश-क्षेत्रको व्याप्त कर ले उतने ही स्थान को 'एकप्रदेश' कहते हैं। संसारी जीवोंके कर्म, जिस रागादि-रूप मलिन परिणामसे आते हैं, उसको 'परिणाम-भावास्रव' कहा जाता है। बुरे परिणामवाले जीवके जिन-जिन कारणों द्वारा पुद्गलोंका कर्म-रूपमें आना है, वह 'द्रव्यास्रव' हैं। आस्रवके मिथ्यात्व आदि कारण विस्तारपूर्वक पहलेके अनुप्रेक्षा प्रकरणमें कह आये हैं। इनके भेद एवं तत्वको वहीं समझ लेना चाहिये। जिस राग-द्वेष-रूप आत्माके परिणामसे कर्मजाल फैला है, वह परिणाम-भाव-बन्ध है। भाव-बन्ध ही के कारण जीव एवं कर्मका परस्पर बंध जाना 'द्रव्य-बन्ध' है। वह द्रव्य-बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग एवं प्रदेश नाम के द्वारा चार भागों में विभक्त है। इस बन्ध को अशुभ एवं अनर्थोत्पादक कहा गया है। बन्ध-योगों से प्रकृति और प्रदेश तथा स्थिति एवं अनुभाग-बन्ध—ये दो दुष्टबन्ध कषायों के द्वारा होते हैं। इस निर्णय को स्वयं मुनीश्वरोंने ही कहा है।

जीवों के मतिज्ञानादि उत्तम गुणों को 'ज्ञानावरण' कर्म ढँक देते हैं। जिस तरह कि किसी देव-प्रतिमाको वस्त्रादि आवरणसे ढँक दिया जाता है, जिस प्रकार अपने कार्यके निमित्त राज-दरबारमें जाने पर द्वारपाल रोक देता है, उसी प्रकार नेत्रादिके दर्शन कर्मको 'दर्शनावरण' कर्म रोक देते हैं। मनुष्योंके वेदनीय-कर्म मधुसे लिपटी हुई तलवारके समान है। इसके द्वारा सुख तो अत्यल्प सरसोंके बराबर मिलता है और बादमें मेरु पर्वतके समान भयङ्कर एवं महान् दुःख आ घेरता है। जिस प्रकार मदिराको पीकर मदोन्मत्त जीव किसीको कुछ भी नहीं समझता, उसी तरह अज्ञानी जीवों को 'मोहनीय-कर्म' सम्पूर्ण दर्शन,

ज्ञान, विचार एवं चारित्रादि धर्म कार्यों से एकदम उपेक्षित और पथ-भ्रष्ट बना देता है। वे नितान्त उन्मत्त हो उठते हैं। जिस प्रकार कारागारसे कैदी को बाहर निकलने में हाथ-पांवोंमें बंधी हुई लौह-शृङ्खला (बेड़ी) बाधा उपस्थित कर देती है, उसी प्रकार 'आयु-कर्म' काम-रूपी कारागारमें बन्द जीव-रूपी कैदी को कायके बाहर निकलनेसे सदैव रोके रहता है। वह कायमें ही जीवोंको दुःख, शोकादि नाना प्रकार की आपदाएँ भोगनेके लिये बाध्य करता है। 'नाम-कर्म' चित्रकारके समान जीवोंके अनेक रूप बनाया करता है। कभी बिलाव, कभी सिंह, कभी हाथी, कभी मनुष्य और कभी देव। जिस प्रकार कुम्हार अपने बर्तनोंको नाना आकृति का बनाता है, उसी प्रकार अनेक प्रकार की आकृति प्रदान करना 'नाम-कर्म' का ही कार्य है। 'गोत्र-कर्म' कभी सर्वश्रेष्ठ गोत्र (कुल) और कभी अति निन्दनीय गोत्र प्रदान कर देता है। उसी प्रकार जिस प्रकार कोषाध्यक्ष अपने स्वामी को दान करने से रोकता है, अन्तराय-कर्म भी दान-लाभादि पांच कर्मोंमें सदैव विघ्न उपस्थित किया करता है। इसके अतिरिक्त और भी अन्य कर्मोंको इसी प्रकार जान लेना चाहिये। वे स्वभाव जीवोंके कर्म आनेके कारण है। दर्शनावरण, ज्ञानावरण, वेदनीय एवं अन्तराय—इन चार कर्मों की उच्चतम स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर की है। मोहनीय-कर्मकी उच्चतम स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर की है। इसी प्रकार नाम-कर्म एवं गोत्र-कर्म की स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर की है। आयु-कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरकी है—इसी प्रकार जिनेन्द्रदेवने आठ कर्मों की अत्यन्त उत्कृष्ट स्थिति को बतलाया है। वेदनीय-कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है। नाम एवं गोत्र-कर्म की आठ मुहूर्त तथा अन्य शेष पांच कर्मों की अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति है। सब कर्मों की मध्यम स्थिति कई एक प्रकार की है और प्रमाण भी उनका मध्यम ही है। अशुभ कर्मोंका अनुभाग निम्ब, कांजी, विष एवं हलाहल ये चार प्रकार है। शुभ कर्मों का अनुभाग गुड़, खांड़, मिश्री एवं अमृत—ये चार प्रकार है। प्रतिक्षण उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंका अनुभाग अनेक प्रकार का है और सांसारिक जीवों को क्षण-क्षण सुख दुःख प्रदान करता रहता है। सांसारिक

जीवोंके सम्पूर्ण आत्म-प्रदेशोंमें अनन्तानन्त सूक्ष्म कर्म-परमाणु सब जहां परस्पर मिल कर एक हो जांय, उन कर्म-परमाणुओं के बन्ध को 'प्रदेश-बन्ध' कहते हैं। इस प्रदेश-बन्धमें दुःख ही दुःख भरे पड़े हैं। यह दुःखोंका समुद्र ही है। इन चार प्रकारके बन्धोंको अपना वैरी समझ कर बुद्धिमानोंको चाहिये कि इन्हें दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तप-रूपी वाणों से नष्ट कर डालें। इन्हें सम्पूर्ण दुःखों का मूल-कारण समझना चाहिये। राग-द्वेषहीन होकर जो चैतन्य-परिणाम कर्मोंके आस्रवको रोकनेवाला है, वह परिणाम भाव-संवर है। योगीजन जिन महाव्रतादि उत्तम ध्यानोंसे सम्पूर्ण कर्मास्रवोंका निरोध करते हैं, उनको सुखदायक 'द्रव्य-संवर' कहते हैं।

संवरके कारण महाव्रतोंके द्वारा परिषहों के जीतने के विषयमें पहले कहा जा चुका है; इससे पुनः पिष्ट-पेषण करना ठीक नहीं। जिज्ञासुओंको वहींसे जान लेना चाहिये। सविपाक एवं अविपाकके भेद से जीवों की निर्जरा दो प्रकार की होती है। इन दोनों में से मुनीश्वरों की 'अविपाक' एवं अन्य सब सांसारिक जीवोंकी 'सविपाक' निर्जरा होती है। इसके पूर्व भी निर्जराका वर्णन विस्तारशः कर दिया गया है। पुनरुक्ति दोषके भयसे पुनः यहां उल्लेख नहीं किया जा रहा है। जो परिणाम, मोक्षाभिलाषी जीवों के सम्पूर्ण कर्मों के नाशक हों, वही अतिशुद्ध परिणाम है। उसी को जिनेश्वर महावीर प्रभु ने 'भावमोक्ष' कहा है। अन्तिम शुक्ल-ध्यानके प्रभाव से ज्ञानमय आत्मा का सम्पूर्ण कर्म-जालसे पृथक् हो जाना ही 'द्रव्य-मोक्ष' है। जिस प्रकार बन्धनोंसे आपादमस्तक बंधे हुए पुरुषको समस्त बन्ध खुल जाने पर अत्यन्त हर्ष एवं सुख प्राप्त होता है, उसी प्रकार असंख्य कर्म बन्धनोंसे जकड़े हुए जीव की मोक्ष मिल जाने से वह जीव निराकुल होकर अनन्त एवं अक्षय सुख को प्राप्त करता है। कर्मोंसे छूट जाने के बाद यह मूर्तिहीन, ज्ञानवान्, अति निर्मल आत्मा स्वभावतः ऊर्ध्वगति होने के कारण, ऊपर सिद्धालयमें जा पहुँचता है। वहां जाकर निर्बाध होकर अनुपम, आत्मजन्य, विषयातीत, आकुलताहीन, वृद्धि-हानि-रहित, नित्य, अनन्त एवं सर्वोत्तम सुखों का भोग वह ज्ञान-शरीरी सिद्ध-परमात्मा

करता है। अहमिन्द्र इत्यादि देव, चक्रवर्ती, विद्याधर, भोगभूमिया इत्यादि मनुष्य, व्यन्तरादि जघन्य देव, सिंहादि पशु——ये सभी, जिन विषय-सुखों को भोगते हैं अथवा भविष्यकाल में भोगेंगे, उन सबके सम्मिलित विषय-सुखोंको यदि एकत्रित किया जाय, तो उस एकत्रित विषय-सुखोंके समूहसे अनन्तगुणा अधिक सुख कर्महीन सिद्ध भगवान् एक ही समयमें भोगते हैं। उनका सुख अनन्त एवं निर्विषय है। ऐसा समझ कर ऐ मतिमान पुरुषो, तुमलोग प्रमाद एवं आलस्य को छोड़ कर विषय-जन्य सुख से अनन्तगुणा अधिक सुख-प्राप्तिकी इच्छासे तप एवं रत्नत्रय इत्यादिके द्वारा मोक्षको प्राप्त करो। इस प्रकार इन्द्र, विद्याधर एवं मनुष्योंके द्वारा पूजित जिनेन्द्र श्रीमहावीर प्रभुने सब भव्य-जीवों को तथा गणधरों को अपनी दिव्य मधुर वाणी से सात तत्वों का उपदेश दिया। ये ही पूर्वोक्त सात तत्व मोक्षज्ञान के कारण हैं, दर्शनज्ञानके बीज-रूप हैं और भव्य-जीवोंके परम उपादेय हैं।

सप्तदश प्रकरण

तीन जगतके नाथ जो, केवल-ज्ञान निकेत।
विश्वबन्धु वीरेश वे, विश्व-तत्व कहि देत॥

इसके बाद सम्यक्त्व एवं ज्ञानके कारण नौ पदार्थोंको कहा जाता है। सात तत्वोंमें पाप और पुण्य को मिला देनेसे नौ पदार्थ हो जाते हैं। तीर्थेश श्रीमहावीर प्रभुने भव्य-जीवोंके संवेग (संसार-भय) उत्पन्न करनेके लिये, पाप-पुण्यके कारण एवं उनके फलोंको कहना प्रारम्भ किया। एकान्त आदि पांच मिथ्यात्व, दुष्ट कषाय, असंयम निन्दनीय प्रमाद, कुटिलयोग, आर्त्त-रौद्र-रूप बुरे ध्यान, कृष्णादि तीन बुरी लेश्याएँ तीन शल्य, मिथ्या गुरु, देव का सेवन, धर्मावरोध एवं पापोपदेश करने से तथा अन्यान्य घृणित आचरणोंके द्वारा उत्कृष्ट पाप होता है। जिनका मन दूसरोंकी स्त्री, धन एवं वस्त्रकी अभिलाषा में लगा है, रागसे दूषित है, क्रोध-मोहादि-रूप अग्निसे सन्तप्त है; विवेकहीन, दयाहीन, मिथ्यात्वव्याप्त,

पाप-शास्त्र-प्रवृत्त एवं नाना प्रकार के विषयों से व्याकुल है, वे महा उग्र पापके करनेवाले होते हैं। जो पर-निन्दक, आत्म-प्रशंसक और असत्य-युक्त पाप कर्मों को करते रहते हैं, मिथ्या-शास्त्राभ्यास में तत्पर रहते हैं, धर्ममें दोष लगाया करते हैं, तथा जो वचन जिन-सिद्धान्त-सूत्र के विरुद्ध हैं, वे पाप-संग्रह में प्रवृत्त करानेवाले होते हैं। जिन लोगों का शरीर जघन्य कर्मों का करनेवाला है, दुष्ट-रूप है, मारने, बांधनेके कर्ममें लगा रहता है, बेकार-रूप है, दान-पूजादि से हीन है, स्वेच्छाचारी है, तप एवं व्रत से रहित है, ऐसे लोग नरकके कारण महान् पापोंकी ओर बढ़ते हैं। जिनेन्द्र देव, जिन-सिद्धान्त, निर्ग्रंथ गुरु, जिन-धर्मी आदिकी निन्दा करनेसे बड़ा भारी पाप लगता है। इस प्रकार जिनेन्द्र देवने भव्य-जीवोंको संसारसे विरक्त होनेके हेतु महापापको उत्पन्न करनेवाले, निन्दनीय कर्मोंके त्याग करने का उपदेश दिया।

दुःशीला स्त्री, लोकगर्हित एवं शत्रुके समान भाई, दुर्व्यसनी पुत्र, प्राणनाशक परिवार, रोग, कष्ट, दारिद्र्य, बध एवं बन्धन इत्यादि दुःख, पापोदय होनेके कारण, पापियोंको होते रहते हैं। पापहीके फल से लोग अन्धे, गूंगे, बहरे, पगले, कुबड़े, अङ्गहीन, कुरूप और सुखहीन होते हैं। इसी तरह दूसरों के दास (नौकर), दीन, दुर्बुद्धि, निन्दनीय पाप-कर्मोंमें तत्पर एवं पापाशास्त्रोंके अभ्यास करनेवाले भी पूर्व पापोदयके कारण ही होते हैं। यह सब पापका ही फल है। ऐसे पापीलोग परलोकमें भी अत्यन्त उग्र क्लेशों को भोगते हैं। वे ही भयङ्कर दुःखोंसे व्याप्त सातों नरकोंमें जन्म-ग्रहण करते हैं। जहां सुखका लेश मात्र भी नहीं, ऐसी दुःखोंकी खानि तिर्यंच-योनिमें उत्पन्न होते हैं। चण्डालकुल एवं म्लेच्छ जाति आदिको भी ऐसे ही पापीलोग पाया करते हैं। अधोलोक, मध्यलोक एवं ऊर्ध्वलोकमें जो चरम दुःख है, क्लेश है, दुर्गति है, वे सब पापके उदय होनेसे पापियोंको ही मिलते हैं। इसीलिये सुखको चाहनेवाले पापोंके बुरे फलोंको जान लेते हैं एवं प्राण निकल जाने पर भी पापकी ओर प्रवृत्त नहीं होते। इस प्रकार अर्हन्त प्रभु भव्य-जीवोंको पापके महा भयानक फलोंको सुना कर पुण्यके कारणोंको कहनेमें प्रवृत्त हुए।

उपर्युक्त सम्पूर्ण पाप-कारणोंके विपरीत शुभ आचरणोंका अनुष्ठान करनेसे, सम्यक्दर्शन, ज्ञान एवं

चारित्रसे, अणुव्रत-महाव्रतोंसे, कषाय-इन्द्रिय-योगों को रोकनेसे, नियम आदिसे, श्रेष्ठदानसे, अर्हन्तके पूजनसे, गुरु-भक्ति एवं सेवा करनेसे, सद्भावनापूर्वक ध्यान एवं अध्ययनादि शुभ-कार्योंसे एवं धर्मोपदेशसे बुद्धिमान पुरुषोंको उत्कृष्ट पुण्यकी प्राप्ति हुआ करती है। जिनका मन वैराग्ययुक्त है, धर्ममें अनुरक्त है, पापसे दूर रहता है, पर-चिन्तासे रहित होकर आत्म-चिन्तामें लीन है, देव-गुरु एवं शास्त्रोंकी परीक्षा करने में पूर्ण समर्थ एवं कृपासे परिपूर्ण है—वे उत्कृष्ट पुण्यों का उपार्जन करते हैं। जिनके वचन, पांच परमेष्ठियोंके जप-स्तोत्र करनेवाले एवं गुणोंको कहनेवाले हैं, आत्म-निन्दासे युक्त एवं पर-निन्दासे हीन होते हैं, कोमल स्वरमें धर्मोपदेशको करनेवाले हैं, तथा इष्ट-सत्य, मर्यादा-रूप शुभ-कर्मोंके दाता हैं, ऐसे ही लोग शुभ-वचनोंके प्रभावसे परम पुण्यको प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार जो लोग कायोत्सर्ग (पद्मासन) रूप से जिनेन्द्र भगवान् की पूजामें सदैव तत्पर रहते हैं, गुरु की सेवामें प्रयत्नशील रहते हैं, पात्र को दान देनेवाले हैं, विकारहीन होकर शुभ-कार्योंको करनेवाले हैं, एवं समानताको प्राप्त हैं, ऐसे ही बुद्धिमानों को शारीरिक पुण्य-कार्योंके प्रभावसे सम्पूर्ण आश्चर्यजनक सुखों को देनेवाले महापुण्य प्राप्त होते हैं। जो वस्तु अपनेको अनभिप्रेत है, अनिष्ट है—ऐसी वस्तुओंको दूसरोंके लिये भी अनिष्ट ही समझना चाहिये। जो ऐसा समझता है, वह निश्चयरूपेण पुण्यशाली है। इस प्रकार तीर्थराज श्रीमहावीर प्रभु ने उपस्थित जीव-समूहोंके एवं गणधरोंके सामने 'संवेग' होनेके लिये पुण्यके अनेक प्रकारके कारणोंको कह कर पुण्य-फलों को कहना आरम्भ किया।

सुशीला एवं सुन्दरी स्त्री, कामदेवके समान रूपवान् पुत्र, मित्रके समान भाई, सुख देनेवाले परिवार, पर्वतके समान हाथी आदि वैभव, कवियोंके द्वारा भी अवर्णनीय सुख, अतुलनीय भोगोपभोग, सौम्य शरीर, मधुर वचन, दयापूर्ण मन, रूप-लावण्य तथा अन्यान्य दुष्प्राप्य सुख-सम्पदाएँ पुण्योदयके प्रभावसे ही प्राप्त हुआ करती हैं। तीनों लोकमें दुर्लभ, अनेक पुण्य-कर्मोंको करनेवाली लक्ष्मी स्वयं ही पुण्योदय के प्रभावसे गृहदासीके समान धर्मात्माओं के अधीन हो जाती है। त्रैलोक्यपति के द्वारा पूजनीय एवं

पुण्योदयसे ही उत्पन्न होता है। इस इन्द्र-
भव्य-जीवोंकी मुक्तिका कारण उत्कृष्ट सर्वज्ञका वैभव भी पुण्योदयसे ही उत्पन्न होता है। इस इन्द्र-
पदको भी, जो सम्पूर्ण देवोंके द्वारा पूज्य है, सकल प्रकारके भोगोंका श्रेष्ठस्थान है एवं अनेक उत्तम-
उत्तम सम्पदाओं से सुशोभित है, बुद्धिमान पुरुष पुण्योदयसे ही प्राप्त करते हैं। निधि एवं बहुमूल्य
रत्न-राशियोंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके सुखोंको देनेवाली, छः खण्डोंकी लक्ष्मी भी ऐसे ही पुण्यात्माओं
को पुण्ययोगसे मिल जाती है। इस संसार में अथवा तीनों जगत में जो कुछ भी सारभूत परमोत्तम
वस्तु है, चाहे वह अत्यन्त दुर्लभ ही क्यों न हो, पुण्योदयके प्रभाव से तत्क्षण ही प्राप्त हो जाती है।
इसलिये ऐ प्राणियो! यदि तुम लोग भी सुख-प्राप्ति की अभिलाषा रखते हो, तो पूर्वोक्त पुण्यों के
अनिर्वचनीय अनेक उत्तमोत्तम फलोंको समझ कर, प्रयत्नपूर्वक उच्चतम पुण्य-कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाओ!
इस प्रकार पाप-पुण्यके सहित सात तत्वोंका स्पष्ट व्याख्यान कर चुकने के बाद जिनेश्वर श्रीमहावीर प्रभुने
सम्पूर्ण सांसारिक जीवोंके हेय (त्याज) एवं उपादेय (ग्राह्य) वस्तुओं का उपदेश करना आरम्भ किया।
सम्पूर्ण भव्य-जीवोंके हितेच्छु अर्हन्त आदि पांच परमेष्ठी हैं। इसलिये जीव-समूहके द्वारा वे उपादेय
हैं। निर्विकल्प पद पर पहुँचे हुए मुनियोंके लिये तो गुणसागर एवं सिद्ध पुरुषोंके समान ज्ञानवान् अपनी
आत्मा ही उपादेय है। व्यवहार-दृष्टिसे पृथक् हुए बुद्धिमान पुरुषोंके लिये, शुद्ध निश्चयनयके द्वारा सभी
जीव उपादेय हैं। व्यवहार दृष्टिसे सम्पूर्ण मिथ्यादृष्टी अभव्य तथा विषय-सुखोंमें लीन पापी एवं धूर्त
जीव हेय (त्याज्य) कहे गये हैं। रागयुक्त जीवोंके लिये धर्म-ध्यानके निमित्त अजीव-पदार्थ कहीं तो
उपादेय कहे गये हैं; परन्तु विकल्पहीन योगियोंके लिये तो सकल अजीव-तत्त्व ही हेय है। इसी तरह
पुण्य-कर्मका आस्रव एवं बन्ध रागयुक्त जीवोंके लिये पाप-कर्मकी अपेक्षा उपादेय कहे गये हैं और मुमु-
क्षुओं (मोक्ष चाहनेवालों) के लिये आस्रव एवं बन्ध दोनों ही हेय हैं। पापके जो आस्रव एवं बन्ध हैं,
वे तो सर्वथा हेय हैं; क्योंकि इनसे विविध प्रकारके दुःखों की उत्पत्ति होती है और स्वयं भी ये अपने
आपही उत्पन्न हो जाते हैं। संवर एवं निर्जरा सब अवस्थामें सर्वथैव उपादेय होते हैं। इसके अतिरिक्त

मोक्षतत्व तो अनन्त एवं अक्षय सुखोंका समुद्र है; इसीलिये यह सर्वतोभावेन उपादेय है। इस प्रकार हेय एवं उपादेय वस्तुओंको अच्छी तरह जान कर बुद्धिमान पुरुषोंको चाहिये कि यत्नपूर्वक हेय वस्तुओं से सदैव दूर रहें और सम्पूर्ण उत्कृष्ट उपादेय वस्तुओंका ग्रहण करें। प्रधानतया पुण्यास्रव, पुण्यबन्ध का करनेवाला, सम्यक्दृष्टी, गृहस्थ, व्रती एवं सराग-संयमी होता है। कभी-कभी मिथ्यादृष्टी गृहस्थ भी कर्मोंके मन्द उदय होनेके कारण काय-क्लेशपूर्वक भोग प्राप्तिको अभिलाषासे पुण्यभूत आस्रव-बन्धको करने लग जाता है। मिथ्यादृष्टी जीव दुराचारी होनेके कारण कोटि-कोटि जघन्य कार्यों का आचरण करके मुख्यतया पुण्यास्रव एवं पापबन्ध का करनेवाला होता है। इस धरातल पर केवलमात्र योगी ही संवर आदि तीन तत्वोंके करनेवाले जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमान होकर रत्नत्रय से सुशोभित हो पाते हैं। भव्य-जीवोंको संवर आदिकी सिद्धि (प्राप्ति) के लिये अपना विकल्प-रहित आत्मा एवं पांच परमेष्ठी कारण होते हैं। पापास्रव एवं पाप-बन्धका और अपना तथा अन्यान्य अज्ञानियोंका कारण मिथ्यादृष्टी ही है। सम्पूर्ण बुद्धिमान् भव्य-जीवोंके सम्यक्दर्शन एवं ज्ञानका कारण पांच प्रकारका अजीव-तत्व है। पुण्यास्रव एवं पुण्य-बन्ध सम्यक्दृष्टिवालों के लिये तीर्थङ्कर की विमल विभूतियों को देते हैं तथा मिथ्यादृष्टिवालोंके लिये ये दोनों संसारके कारण हो जाते हैं। पापास्रव और पाप-बन्ध अज्ञानियों को होते हैं। ये दोनों संसारके कारण और सम्पूर्ण दुःखोंके कर्त्ता हैं।

संवर एवं निर्जरा मोक्षके कारण हैं और मोक्ष अनन्त सुख-रूपी समुद्र का कारण है। इस प्रकार जिनेन्द्र प्रभु सब पदार्थोंके कारण एवं फलादि को कह कर प्रश्नों का उत्तर देने लगे। जो जीव सात प्रकारके दुर्व्यसनों में आसक्त हैं, पर-स्त्री एवं पर-धन की कामना करनेवाले हैं, बहुत अधिक कार्यों को आरम्भ करनेमें जिनका उत्साह रहता है, अतुल सम्पत्ति एकत्रित करनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं, निन्दनीय कार्यों को किया करते हैं, अवांच्छनीय-स्वभाव हैं, दुष्ट प्रकृति एवं क्रूरहृदय होते हैं, जिनके चित्त में दया नही होती है, सदैव बीभत्स एवं रौद्र वस्तुके ध्यानमें लीन रह कर विषय-रूपी मांसके लिये लोलुप

हैं, जैन-मतके निन्दक हैं, जिनदेव, जिनधर्मी एवं जैन-साधुओं के प्रतिकूल रहते हैं, मिथ्या-शास्त्रों के
अभ्यासमें तत्पर रहते हैं, मिथ्यामतके घमण्ड में उद्दण्ड हो गये हैं, कुदेव या कुगुरुके भक्त हैं, कुकार्य
तथा पापोंकी प्रेरणा करनेमें तत्पर रहते हैं, दुर्जन हैं, अत्यन्त मोहसे युक्त हैं, पाप-कर्ममें पण्डित यानी
धूर्त हैं, धर्मद्वेषी, दुःशील, दुराचारी, सब व्रतोंसे परांमुख, कृष्णलेश्या-रूप परिणामोंसे युक्त, पांच महापापों
के करनेवाले तथा इसी तरहके और भी अन्यान्य बहुतसे पाप-कर्मोंसे उत्पन्न पापोदय के कारण हैं, वे
रौद्र-ध्यानसे मर कर पापियोंके गृह-रूप नरकमें जाते हैं। पाप-कर्मोंके भीषण फलों को देनेवाले सात
नरक हैं। वे सम्पूर्ण दुःखों के खजाना हैं, वहां अर्धनिमेष मात्र भी सुख नहीं प्राप्त हो सकता। जो
भव्य जीव मायावी, अत्यन्त कुटिल करोड़ों कार्योंके करनेवाले, परधनापहारी, अष्टजाम-भोजी (आठों
पहर खानेवाले), महामूर्ख, मिथ्या-शास्त्रोंके ज्ञाता, पशु-वृक्षोंके सेवक, प्रतिदिन अधिक बार स्नान करनेवाले,
शुद्ध होने की अभिलाषासे कुतीर्थों की यात्रा करनेवाले, जिन-धर्म को नहीं माननेवाले, व्रत एवं शील
इत्यादिसे हीन, अत्यन्त निन्दनीय कापोत लेश्यावाले, सदैव आर्त्तध्यान करनेवाले तथा अन्यान्य नीच-
कर्मों में प्रीति रखनेवाले अज्ञानी जीव अन्तमें दुःखको प्राप्त होकर आर्त्तध्यानसे मरते हैं और तिर्यंचगति
(पशुगति) को प्राप्त करते हैं। पशुगति अति उग्र सम्पूर्ण दुःखोंकी खानि है, आयु कम होनेके कारण
जल्दी-जल्दी जन्म-मरण होता रहता है और एकदम पराधीन है, वहां सुखका लेश भी नहीं है। जो
जीव नास्तिक हैं, दुराचारी हैं, परलोक, धर्म, तप, चारित्र एवं जिनेन्द्र, शास्त्र आदि को नहीं मानते,
दुर्बुद्धि, अत्यन्त विषय-वासनाओंमें आसक्त, एवं उग्र मिथ्यात्वसे युक्त अज्ञानी हैं; वे अनन्त दुःखोंके
अपार सागर निगोदमें जाकर उत्पन्न होते हैं और वे वहां पर अपने दुष्ट पापोंके उदय होनेसे वचनके
द्वारा जन्म-मरण-रूपी अनिर्वचनीय भीषण दुःखों को चिरकाल भोगते हैं।

जो जीव तीर्थङ्कर की, श्रेष्ठ गुरुओं की, ज्ञानियों की एवं धर्मात्मा महात्माओं की श्रद्धा-भक्तिपूर्वक
सेवा एवं पूजा सदैव करते रहते हैं, महाव्रतोंका, अर्हन्तदेव एवं निर्ग्रन्थ गुरुकी आज्ञाओंका तथा सम्पूर्ण

अणुव्रतोंका पालन किया करते हैं, अपनी शक्तिके अनुसार बारह तपोंको करते हैं, कषाय एवं इन्द्रिय-रूपी चोरोंकी समुचित दण्ड-व्यवस्थामें तत्पर एवं जितेन्द्रिय होकर आर्त-रौद्रध्यानोंका परित्याग कर देते हैं तथा धर्म-रूपी शुक्लध्यानोंके चिन्तनमें प्रयत्नशील रहते हैं, शुभलेश्या परिणामवाले हैं, वे धर्म करते हैं। इनके अतिरिक्त जो कि सम्यक्दर्शनको अपने हृदयमें हारकी तरह धारण किये रहते हैं, ज्ञानको कुण्डल मान कर कानोंमें ग्रहण किये हुए हैं, चारित्रको मुकुट (शिरोभूषण) मान कर मस्तकमें बांधे हुए हैं, संसार, शरीर एवं भोग के विषय में संवेग का सेवन किया करते हैं, सदैव विशुद्ध आचरण के लिये सद्भावनाओं का चिन्तवन करते रहते हैं, अहर्निश (दिन-रात) क्षमा आदि दश प्रकारके लक्षणवाले धर्मका पालन किया करते हैं, तथोक्त धर्मकी पालनाके लिये दूसरोंको भी धर्मका उपदेश किया करते हैं, वे इन सब कार्योंसे तथा अन्यान्य शुभ आचरणोंके द्वारा महान् धर्मका उपार्जन करते हैं। पूर्वोक्त कर्मों के करनेवाले मुनि हों, अथवा श्रावक, सभी भव्य-जीव शुभ-ध्यानके द्वारा मर कर स्वर्गको प्राप्त हो जाते हैं। स्वर्ग सम्पूर्ण इन्द्रिय-सुखोंका समुद्र है। वहां दुःखका लेश भी नहीं है। पुण्यात्मा हो वहां रह सकते हैं। जो कि सम्यक्दर्शनसे अलंकृत हैं, वे बुद्धिमान् पुरुष नियमानुसार 'परमकल्प' नामक स्वर्गको प्राप्त करते हैं; किन्तु व्यन्तरादि भवनत्रिक देवोंमें वे कदापि नहीं उत्पन्न होते। जो अज्ञानी पुरुष अज्ञान-तपस्या के द्वारा काय-क्लेश करते हैं, वे व्यन्तरादिक देव-गतिको प्राप्त हो जाते हैं। जो कि स्वभावतः कोमल-स्वभावी हैं, सन्तोषी हैं, सदाचार-परिणामी हैं, सदैव मन्दकषायी हैं, सरलचित्त हैं, तथा जिनेन्द्रदेव, गुरु, धर्म एवं धर्मात्माओंकी प्रार्थना करनेवाले होते हैं तथा और अन्यान्य शुभ आचरणोंसे अलंकृत रहते हैं, वे उत्तम जीव पुण्योदयके कारण आर्यावर्त्तके किसी उच्च कुलमें, राज्य लक्ष्मी इत्यादिके सुखोंसे युक्त मनुष्य-गतिको प्राप्त करते हैं। जो जीव उत्तम पात्रको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रेष्ठ आहार-दान करते हैं, वे अपरिमित भोगों को प्राप्त करने के लिये सुख-सामग्रियोंसे परिपूर्ण भोगभूमिमें जन्म ग्रहण करते हैं।

जो मायापूर्ण काम-सेवनसे अतृप्त हैं, विकारोत्पादक स्त्री-वेषके ग्रहण करनेवाले हैं, मिथ्यादृष्टी हैं,

रागान्ध हैं, शीलतासे हीन हैं एवं अज्ञानी हैं; वे मरने पर स्त्री-वेदके उदय होने से स्त्री-पर्यायको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जो स्त्रियां विशुद्धाचरणवाली होती हैं, मायाचारी कुटिलता से हीन होती हैं, विवेकशील, दान-पूजा आदि शुभ-कर्मोंमें तत्पर, अल्प विषय-सुखसे ही सन्तुष्ट हो जानेवाली एवं दर्शन-ज्ञानसे युक्त होती हैं, वे स्त्रियां मर जानेके बाद पुंवेद-कर्मके उदय होनेसे पुरुष-पर्याय प्राप्त करती हैं। जो विशेष-रूपसे कामोपभोग में ही लगे रहते हैं, पर-स्त्रियोंके पीछे पागल हुए फिरते हैं और सर्वदा (दिन-रात) काम-क्रीड़ामें ही तल्लीन रहते हैं, वे नपुंसकोंके चिह्न से युक्त होते हैं। जिन्होंने पशुओंके ऊपर अत्यन्त अधिक बोझ लाद दिया है, मार्गमें चलते हुए अनेक जीवोंको बिना देखे ही अपने पैरों तले मार डाला है, कुतीर्थोंमें पाप-कर्म करनेके निमित्त भटकता हुआ अनेक पापोंको कमाया है, वे दयाहीन शठ पुरुष मरनेके बाद 'अङ्गोपाङ्ग' कर्मके उदय होनेसे पंगु (लूले) होते हैं। संसार में ऐसे लोगों का तिरस्कार होता है और निन्दा होती है। जिन लोगों ने मूर्खतावश दूसरे के दोषों को बिना जाने ही स्वीकार कर लेनेका अपना स्वभाव बना लिया है, ईर्ष्यावश पर-निन्दा सुननेका एक कार्यक्रम बना रखा है, हेय शास्त्रोंकी कुत्सित कथाओंको सुनने का अभ्यास-सा बना रखा है, तथा केवली, शास्त्र-संघ एवं धर्मात्माओंको दोष लगा देनेका काम ठान लिया है, वे 'ज्ञानावरण' कर्मके उदय होने के फलसे बहरे होते हैं। जो बिना देखे ही दूसरेके दोषोंको 'आँखों देखा' बतलाते हैं, कटाक्षके लिये नेत्रोंके विकार उत्पन्न करते रहते हैं, पर-स्त्रीके स्तन-भगादि गुप्तांगोंको टकटकी बांध कर देखते-देखते भी नहीं अघाते, कुतीर्थ, कुदेव एवं कुलिंगियोंका आदर करते हैं, वे दुष्ट नेत्रवाले पुरुष 'दर्शनावरण' कर्मके उदय होनेके फलसे अन्धे होकर अत्यन्त दुःखोंको भोगते हैं। जो लोग व्यर्थ में ही स्त्री-चर्चा आदि विकथाओं को प्रतिदिन कहा करते हैं, दोषहीन अर्हतदेव, शास्त्र, सच्चा गुरु, तथा धर्मात्माओंमें दोष लगाते फिरते हैं, पाप-शास्त्रों को पढ़ते-पढ़ाते हैं, अपने इच्छानुकूल यश एवं प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये अस्थिर-चित्त होकर श्रद्धा एवं विनयसे रहित होकर जैन-शास्त्रों को स्वयं बांचते हैं, धर्म-सिद्धान्तके परमोत्तम तत्त्वार्थों को

कुतर्कोंके द्वारा दूसरों को समझाने की दुश्चेष्टामें तत्पर रहते हैं, वे ज्ञान-रहित मूर्ख 'ज्ञानावरण' कर्मके उदय होनेके फलसे बोलनेमें असमर्थ मूक (गूंगे) होते हैं। जो स्वेच्छावश हिंसादि पांच पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त रहते हैं, श्रीजिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये सम्पूर्ण पदार्थों को बिना विचार किये मदोन्मत्त होकर ग्रहण करने के लिये तत्पर हो जाते हैं तथा देव, शास्त्र, गुरु एवं धर्मके विषय में सत्यासत्य का भेद न समझ कर समभावसे श्रद्धाशील होकर उन्हें पूजते रहते हैं, वे 'मति-ज्ञानावरण' कर्मके उदय होनेके फलसे विकलेन्द्रिय हो जाते हैं। जो व्यक्ति व्यसनशील, मिथ्यादृष्टिवाले पुरुषोंसे मित्रता करते हैं, साधु-महात्मा पुरुषोंसे सदैव दूर रहते हैं, वे पाप-परायणसे नरकादि गतियोंमें पर्यटन करते हुए पुनः दुर्व्यसनों में लीन होकर महा उग्र पापों का उपार्जन करते हैं। जो विषय-सुखों में आसक्त होकर धर्म-हीन हो जाते हैं और तप, यम, व्रतादिसे रहित होकर विविध भोगोंके द्वारा अपने शरीरको पुष्ट किया करते हैं, रात्रिकाल में भी अन्नादि का आहार करते हैं, अखाद्य (न खाने योग्य) वस्तुओं को भी खा लेते हैं; अकारण ही अन्य-जीवोंको क्लेश दिया करते हैं, वे निर्दयी पापी 'असातावेदनीय' कर्मके उदय होनेके कारण रोगी होकर अनेक रोगों की उग्र वेदनासे व्याकुल होते हैं।

जो अपने शरीर की मोह-ममता छोड़ कर तप-रूपी धर्माचरणमें लीन रहते हैं, वे अन्य सब जीवों को भी अपने ही समान जान कर कदापि किसी को नहीं सताते हैं। वे—'यह अपना है, यह पराया है'—ऐसा नहीं कहते फिरते और शुभ-कर्मोंके उदयसे दुःख, शोक एवं रोग-रहित होकर सुख-शान्ति को प्राप्त करते हैं। जो अपने शरीरको अलंकार इत्यादिसे सजाने की आवश्यकता नहीं समझते और तप, नियम एवं योग इत्यादिसे कायलेश-रूपी व्रत किया करते हैं, तथा अत्यन्त श्रद्धापूर्वक जिनेन्द्रदेव तथा महात्मा योगियोंके चरणारविन्दकी सदैव सेवा करते हैं, वे शुभ कर्मोदयके प्रभावसे अलौकिक-रूप, गुण एवं लावण्यसे सुशोभित होते हैं। जो पशुओंके समान अज्ञानी हैं, वे शरीरको अपना समझ कर सदैव स्वच्छ एवं सुन्दर बनाने की चेष्टामें लगे रहते हैं, अनेक प्रकारके आभूषणोंसे उसको सजाते हैं

और शुभ-प्राप्तिकी अभिलाषासे कुगुरु, कुदेव एवं कुधर्मकी चाटुकारितामें व्यस्त रहते हैं, वे अशुभ-कर्म के उदय से भयानक कुरूप होते हैं। जो जिनेन्द्रदेव, जैन-शास्त्र एवं निर्ग्रन्थ योगियों की भक्ति में अहर्निश तत्पर रहते हैं; तप, धर्म, व्रत एवं नियमादिके पालनमें दत्तचित्त रहते हैं, देह की ममता का परित्याग कर समस्त इन्द्रिय-रूपी महाबलवान् राक्षसोंको जीत लेते हैं, वे सौम्य-कर्मके उदयसे सबके नयनाभिराम होते हैं एवं भाग्यशाली कहे जाते हैं। जो अपने रूप-लावण्य आदिके अभिमानसे मुनियों के मलयुक्त शरीर को देख कर उनसे घृणा करते हैं, पर-स्त्रीकी अभिलाषामें रत रहते हैं, असत्य बोल कर अपने पारिवारिक बन्धुओंसे द्वेष मान बैठते हैं, वे 'दुर्भग' नाम-कर्मके उदयसे सर्वनिन्दनीय, दुर्भग (दरिद्र) होते हैं। जो दूसरों को धोखा देकर ठगा करते हैं, ठगने के लिये दूसरों को सलाह देते हैं, देव, गुरु एवं शास्त्रके विषयमें बिना तथ्यातथ्यका निर्णय किये ही, अपना धर्म समझ कर उनकी पूजा-भक्तिमें तत्पर रहते हैं, वे 'मतिज्ञानावरण' कर्मके उदय होने से निन्दनीय, कुबुद्धि और मूर्ख होते हैं। जो तप आदि धर्म कार्योंमें अन्य लोगोंको अपनी इच्छानुसार सलाह दिया करते हैं, अतत्त्व एवं तत्त्वों का विचार विनयपूर्वक किया करते हैं, तथा इसके बाद साररूप धर्मादि वस्तुओं का ही ग्रहण किया करते हैं, संसारकी समस्त वस्तुओंका परित्याग कर देते हैं, वे सुयोग्य एवं चतुर पुरुष श्रेष्ठ 'मतिज्ञानावरण' के क्षयोपशम के कारण महाविद्वान् हो जाते हैं। जो दुष्ट-प्रकृति पुरुष ज्ञानाभिमानवश पढ़ाने योग्य व्यक्तियोंको भी नहीं पढ़ाते हैं, जानते हुए भी जघन्य कर्मोंमें प्रवृत्त रहते हैं, कल्याणकारक जिनागम को छोड़ कर अन्य कुशास्त्रोंकी विद्या को पढ़ते हैं, तथा शास्त्र-निन्दित, कटु एवं परपीड़क एवं धर्महीन असत्यपूर्ण वचनोंको बोला करते हैं, वे 'श्रुतज्ञानावरण' कर्मके फलसे अत्यन्त निन्दनीय और महामूर्ख होते हैं। जो लोग स्वयं तो श्रीजिनागमको सदैव पढ़ते ही हैं, साथ ही दूसरोंको भी पढ़ाते हैं तथा काल इत्यादि आठ प्रकार की विधियोंसे जैन-शास्त्रों का व्याख्यान किया करते हैं, धार्मिक उपदेश के द्वारा अनेक भव्य-जीवोंको ज्ञान प्रदान करते रहते हैं एवं स्वयं भी निशिदिन धर्म-कार्यमें तत्पर रहते हैं,

कल्याणकारी सत्य वचनोंको कहते हैं, असत्य वचनका प्रयोग कदापि नहीं करते, वे श्रुतज्ञानावरण-कर्म के मन्द हो जानेसे जगदादरणीय विद्वान् हो जाते हैं। जो लोग इस संसार, शरीर एवं सम्पूर्ण भोगों से विरक्त होकर जिनेन्द्रदेव तथा गुरुके श्रेष्ठ वचनोंके प्रभावसे उत्तमोत्तम गुणों का एवं परम-धर्म का अपने मनमें निरन्तर चिन्तवन किया करते हैं, आर्जव-धर्मके अतिरिक्त कुटिलता इत्यादिको अपने हृदय में कदापि स्थान नहीं देते, वे शुभ-कार्योंके करने के कारण शुभ-परिणामी कहे जाते हैं।

जो कुटिल परिणामी, पर-स्त्री-हरण आदिके विषयमें हमेशा विचार किया करते हैं, पुण्यात्माओंका अकल्याण चाहते रहते हैं, मूर्खों के जघन्य आचरणों को देख कर मन ही मन प्रसन्न हुआ करते हैं, वे अशुभ कर्मोदय से पापार्जन के लिये अशुभ-परिणामी होते हैं। जो तप, व्रत एवं क्षमा प्रभृतिसे, श्रेष्ठ पात्र-दान एवं पूजा इत्यादिसे, तथा दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र से सर्वदा धर्म-तत्पर रहते हैं, वे सम्यक्दृष्टी स्वर्गादिके उत्तम सुख-भोगों को भोग चुकने के बाद पुण्योदयसे उच्च पद की प्राप्ति की अभिलाषावश धर्म कार्योंको करनेवाले धर्मात्मा होते हैं। जो लोग हिंसा और असत्य सम्भाषणादिके द्वारा पाप-कर्म किया करते हैं, अपनी दुर्बुद्धिके कारण विषय-सुखोंमें लीन होकर मिथ्यात्वी देवादिकों की भक्ति में श्रद्धा रखते हैं, वे नरकादि स्थानों में चिरकाल रह कर अनेक यन्त्रणाओं को भोगते हैं। इसके बाद भी पापोदयसे पुनः नरक-निवास पानेके लिये पाप-कर्ममें प्रवृत्त रह कर पापी ही बने रहते हैं। इसके विपरीत जो लोग परम भक्तिपूर्वक प्रत्येक दिन उत्तम पात्रों को आहारादि का दान करते हैं, श्रीजिनेन्द्रदेव, गुरु एवं जैन-शास्त्रों की श्रद्धापूर्व पूजा स्तुति किया करते हैं, वे धर्म-कार्योंके प्रभाव से उत्तमोत्तम भोग-सामग्रियोंको प्राप्त करते हैं। धर्म-सिद्धिके निमित्त जो लोभ भाग्यसे प्राप्त धन-सम्पत्ति को ठुकरा देते हैं, स्थिर-चित्त होकर धर्म-साधना में प्रवृत्त रहते हैं, वे भी अन्त में परमोत्तम भोग्य सम्पदाओं को प्राप्त करते हैं। जो अपने अन्यायपूर्ण कार्योंके द्वारा सुख-भोगों की अभिलाषा करते हैं, भोगोपभोग के बाद भी असन्तुष्ट ही रह जाते हैं, स्वप्नमें भी जिनेन्द्रदेव की पूजा और उत्तम पात्र-

दान नहीं करते, तथा लोभवश लक्ष्मी पा लेना चाहते हैं, वे धर्म-व्रत से हीन होने के कारण पाप के भयङ्कर फलोंसे दुःखित होते हैं और अनेक जन्म पर्यन्त धनहीन दरिद्र होते हैं। जो लोग पशु, पक्षी और मनुष्योंका अपने बाल-बच्चोंसे एवं बन्धु-बान्धवोंसे वियोग उत्पन्न करा देते हैं तथा दूसरोंकी स्त्री, धन और अन्यान्य वस्तुओं को बलपूर्वक हड़प लेते हैं, वे दुःखशील पापात्मा अशुभ-कर्म के उदय से निश्चयरूपेण अपने पुत्र, स्त्री, भाई और अन्य इष्ट-जनोंसे भी वियोग हो जानेके कारण समय-समय पर दुःख भोगते हैं। इसके प्रतिकूल जो लोग पशु आदि जीवों की ताड़ना इत्यादि नहीं करते और उनके परस्पर वियोगके कारण नहीं बनते, वे कदापि दुःखोंको प्राप्त नहीं हो सकते। जो सन्नद्ध होकर सर्वदा जैनमतानुकूल ही जैनियोंका पालन उनकी अभिलषित सम्पत्तिके द्वारा करते हैं, दान और पूजा आदि धर्मानुष्ठान विधिपूर्वक करते हैं, तथा इस पुण्य के फलस्वरूप मोक्ष के अतिरिक्त अन्य और किसी प्रकारसे स्त्री, पुत्र, धनादि की किंचितमात्र भी इच्छा नहीं करते, उन पुण्यात्माओंके पुण्योदयसे अभीष्ट स्त्री, पुत्र एवं स्वजनादि का संयोग अपने आपही अप्रत्याशित रूप से हो जाता है तथा धन इत्यादि सुख सम्पदाएँ भी स्वयं ही प्राप्त हुआ करती हैं।

जो धर्मप्रिय पात्रों को दान किया करते हैं, जिन-प्रतिमा, जिन-मन्दिर, जैन-विद्यालय आदि की संस्थापनामें धर्म-सिद्धिकी इच्छासे श्रद्धापूर्वक धन व्यय किया करते हैं, उनकी दानशीलता प्रसिद्ध हो जाती है। इस लोकमें तो वे प्रतिष्ठा प्राप्त करते ही हैं, परलोकमें भी उनका कल्याण होता है। जो कृपणतावश इस लोकमें दान नहीं देते, जिन-पूजा इत्यादिमें भी मुक्तहस्त होकर धन-व्यय नहीं करते, अपितु जगत की परमोत्तम सुख-सम्पत्तिको स्वयं ही भोगना चाहते हैं, वे महालोभी और अज्ञानी हैं। पाप-कार्यके प्रभावसे चिरकाल वे निम्नगतिमें भटक चुकने के बाद तिर्यञ्चगति में जाने के लिये कृपण (कंजूस) होकर उत्पन्न होते हैं। इस पाप-कार्यके प्रतिकूल जो लोग अर्हन्त, गणधर आदि मुनि एवं अन्यान्य धर्मात्माओंके उत्तम गुणों की प्राप्तिके लिये सदैव उनका चिन्तवन किया करते हैं, वे सम्पूर्ण

दोषोंसे दूर रहते हुए श्रेष्ठ गुणवान् हो जाते हैं और विद्वन्मण्डलीमें उनका आदर सम्मान होता है। जो लोग स्वभाववश मूढ़ होनेके कारण गुणी पुरुषोंके श्रेष्ठ गुणोंको ग्रहण न करके, दोषोंको ही ग्रहण करते हैं, गुणरहित कुदेव इत्यादिके फल-हीन गुणोंका स्मरण करते रहते हैं, और मिथ्यामार्गी, आडम्बरयुक्त, पाखण्डियोंके दोषों को कुछ भी नहीं समझ पाते, वे इस संसारमें निर्गंध फूलके समान गुणहीन हैं। जो धर्मजिज्ञासु होकर धर्म-प्राप्तिके लिये, मिथ्यादृष्टी देवोंकी एवं केवल वेषधारी अज्ञानी साधुओं की सेवा-भक्तिमें तत्पर रहते हैं, तथा श्रीजिनेन्द्र, श्रेष्ठ योगी एवं धर्मात्मा पुरुषों की सेवा कदापि नहीं करते, वे अपने पापके फलसे पशुओंके समान पराधीन होकर इधर-उधर दूसरों की दासता करते-फिरते हैं। इसके विपरीत जो सम्पूर्ण मिथ्यामतों को छोड़ कर मानसिक, वाचनिक एवं कायिक शुद्धिपूर्वक अर्हन्त एवं गणधर आदि मुनियों की पूजा-स्तुति-नमस्कार किया करते हैं, वे पुण्योदयसे इस संसारमें सम्पूर्ण अतुलित-भोग-सम्पदाओंके स्वामी होते हैं। जो दयाहीन, व्रत इत्यादि न करके, अपने पुत्र-पौत्रादि की वंशवृद्धिके लिये अन्य जीवोंके पुत्रोंका वध कर डालते हैं तथा इसी प्रकारके और भी बहुत मिथ्यात्व-क्रियाओंको कर डालते हैं, उनके मिथ्यात्व-कर्मके प्रभावसे अल्पायु पुत्र उत्पन्न होते हैं और उन मिथ्यात्वी पापियोंके पुत्रोंका विनाश बहुत शीघ्र हो जाया करता है। जो चण्डी, क्षेत्रपाल, गौरी, भवानी इत्यादि मिथ्यात्वी देवोंकी सेवा-अर्चा, पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे करते हैं और सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाले अर्हन्त प्रभुकी सेवा नहीं करते, वे मिथ्यात्व-कर्मके उदयसे जन्म-जन्ममें सन्तानहीना बन्ध्या स्त्रियोंको प्राप्त करते हैं। जो दूसरे पुरुषोंके पुत्रोंको भी अपना ही पुत्र समझ कर कदापि नहीं मारते, बल्कि प्यार करते हैं; मिथ्यात्वको शत्रुके समान जान कर छोड़ दिये हैं एवं अहिंसा आदि व्रतों का सेवन करते हैं, अभीष्ट प्राप्तिके लिये जिनेन्द्र, सिद्धान्त एवं योगियोंकी पूजा करते हैं, उनके शुभ-कर्म के उदय से अलौकिक रूप-लावण्यवाले एवं दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होते हैं। जो प्राणी तप, नियम, उत्तम ध्यान, काय-क्लेश आदि धर्म-कार्योंको कठिन समझ कर दीक्षा लेनेमें अपने को असमर्थ समझ

वे इस लोकमें पापोदयके कारण सम्पूर्ण कार्योंमें असमर्थ (कायर) होकर उत्पन्न होते हैं।
कर डरते हैं, वे इस लोकमें पापोदयके कारण सम्पूर्ण कार्योंमें असमर्थ (कायर) होकर उत्पन्न होते हैं।
तथा जो लोग साहसपूर्वक तप, ध्यान, अध्ययन, योग एवं कायोत्सर्ग इत्यादि महा कठिन धर्म-कार्योंके
अनुष्ठानमें धीर-चित्त होकर तत्पर रहते हैं, तथा अपनी शक्तिके अनुसार कर्म-रूपी शत्रुओंको नष्ट कर
डालने के लिये अनेक कष्टों एवं परीषहों को सह्य कर लेते हैं, वे धैर्यधारी पुरुष पुण्योदय के प्रभावसे
सकल कार्यों को कर डालने की क्षमता रखते हैं।

जो जड़मति जीव जिनेन्द्रदेव, गणधर, जैन-शास्त्र, निर्ग्रन्थ मुनि, श्रावक एवं धर्मात्माओंकी निन्दा
करने में दत्तचित्त रहते हैं, तथा पापी, मिथ्या-देव, मिथ्या-शास्त्र एवं मिथ्या-साधुओं की प्रशंसा किया
करते हैं, वे अनेक दोषोंसे युक्त होते हैं और अपयश-कर्मके उदयसे त्रैलोक्यमें निन्दनीय होते हैं। जो
लोग दिगम्बर, गुरु, ज्ञानी, गुणी, सज्जन एवं सुशील पुरुषों की सेवा, भक्ति एवं पूजा अन्तःकरण की
शुद्धिके द्वारा सदैव किया करते हैं तथा सम्पूर्ण व्रतोंका आचरण करते हुए अपने मन, वचन एवं काय से
शील की रक्षामें तत्पर रहते हैं, वे धर्म-फलसे स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त करके शीलवान होकर उत्पन्न
होते हैं। जो लोग दुःशील, दुष्ट, कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु एवं पाप-परायण पुरुषों की सेवा, पूजा एवं
नमस्कार किया करते हैं, व्रत-विधिसे हीन हैं, सदैव विषय-सुखोंकी ही कामना किया करते हैं, वे अशुभ-
कर्मके उदयसे पाप-परायण एवं दुःशील होते हैं। इसके विपरीत जो लोग उत्तम गुणों की प्राप्तिके लिये
प्रयत्नशील होकर गुणाकर एवं ज्ञानवान् गुरु, जैन यति तथा सम्यक्दृष्टी पुरुषोंके सत्संगमें सदैव तत्पर
रहते हैं, जन्म-जन्ममें स्वर्ग एवं मोक्षको प्राप्त करानेवाले गुणी महात्माओंका सत्संग उन्हें मिला करता है;
और जो लोग श्रेष्ठ सज्जनों का अनादर एवं उपेक्षा कर दुर्गुणोंमें आकर मिथ्यातियोंके दुःसंगमें फंसे
रहते हैं, वे नीचगति को प्राप्त होते हैं, तथा दुर्जन-संसर्गके कारण बराबर अधोगति (कुसंगति) में पड़े
रहते हैं। जो लोग तीक्ष्ण एवं सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा सदैव तत्व-अतत्व, शास्त्र-कुशास्त्र, देव-गुरु-तपस्वी,
धर्म-अधर्म, दान-कुदान का विश्लेषण एवं विचार किया करते हैं, उनके हृदयमें सूक्ष्म विचार की एक

श्रेष्ठ शक्ति वर्तमान रहती है। वे परलोकमें भी देवोंकी परीक्षा करने में प्रवृत्त होकर सफलता पा लेते हैं। जो जीव ऐसा विश्लेषण नहीं करते, और दुर्बुद्धिके कारण संसारके सभी देव-गुरुओंको आदरणीय, श्रद्धास्पद, अनिन्द्य, वन्दनीय एवं धर्म-मोक्षदायक समझ कर सभी धर्म एवं देवोंका आश्रय लेकर सभी का अनुसरण करनेके प्रयासमें तत्पर रहते हैं, वे अत्यन्त निन्दनीय हैं और जन्म-जन्ममें मूढ़ होते हैं। जो आर्य नित्यप्रति तीर्थङ्कर, गुरु, संघ, उच्च-पदवी प्राप्त जीवोंकी भक्तिपूर्वक सेवा करते हैं, स्तुति करते हैं, और नमस्कार करते हैं तथा अपनी प्रशंसा न करके गुणियोंके दोषोंको छिपा कर उनकी श्रेष्ठताको ही प्रकट किया करते हैं, वे उच्च 'गोत्र-कर्मके' उदयसे परलोकमें सर्वोत्तम गोत्र को प्राप्त करते हैं। तथा जो लोग इसके प्रतिकूल आत्म-प्रशंसा एवं गुणी पुरुषोंको निन्दामें लगे रहते हैं और कुगुरु, कुधर्म एवं नीच देवकी सेवा, धर्म-प्राप्तिकी अभिलाषासे किया करते हैं, वे नीच-कर्मके उदयसे नीच-गोत्रको प्राप्त करते हैं। जिन दुर्बुद्धियोंका झुकाव मिथ्या-मार्गमें है और जो एकान्त-रूप निन्द्य-मार्गमें स्थित होकर कुगुरु, कुदेव एवं कुधर्मकी सेवामें जुटे रहते हैं, उन्हें पूर्व-जन्मके कुसंस्कारसे ही, परलोकके कल्याणको नष्ट कर देनेवाले मिथ्यामतकी ओर प्रीति उत्पन्न हो जाती है। जो दिव्यदृष्टिसे जिनेन्द्र, शास्त्र, गुरु एवं धर्मकी सूक्ष्म परीक्षा कर चुकनेके बाद उनके अपूर्व गुणों पर मुग्ध हो जाते हैं तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी सेवामें तत्पर रहते हैं और हेय मार्ग पर चलनेवाले अन्य पुरुषोंकी स्वप्नमें भी इच्छा नहीं करते, वे वास्तविक जिन-धर्म के अनुरागी हैं और वे परलोक में भी मोक्ष-पथ पर ही अग्रसर होते जाते हैं। जो लोग स्वर्ग एवं मोक्षकी अनन्य अभिलाषासे परिग्रहहीन होकर व्यत्सर्ग तथा मौन-व्रत-रूप 'योगगुप्ति' का यथाशक्ति अनुसरण किया करते हैं, तथा तप इत्यादि श्रेष्ठ धर्म-कार्योंमें अपनी शक्तिकी वास्तविक स्थितिका सदुपयोग करते हैं, वे कठिन तपस्याके उग्र कष्टोंको सहन करनेमें पूर्ण समर्थ, दृढ़ एवं सुन्दर शरीरको प्राप्त करते हैं। जो तपस्यामें समक्ष एवं शक्तिशाली होकर भी केवल काय-सुखमें आसक्त रहते हुए उसका दुरुपयोग करते हैं, और अपने बल एवं शक्ति को धर्म तथा व्युत्सर्ग तपमें नहीं लगाते, वे

कोटि-कोटि गृह-व्यापारों से पाप ही कमाया करते हैं और तप-कर्म में असमर्थ उनका शरीर नितान्त निन्दनीय होता है। इस प्रकार श्रीजिनेन्द्रदेव महावीर प्रभुने उपस्थित समस्त प्राणियोंके सामने दिव्य, गम्भीर एवं मधुर वाणी से गणधर गौतम स्वामी के प्रश्नों का युक्तियुक्त, वास्तविक एवं सार्थक उत्तर प्रदान किया। उन अर्हन्त देव श्रीमहावीर प्रभु की मैं श्रद्धा-भक्तिपूर्वक स्तुति करता हूं।

अष्टादश प्रकरण

मुक्ति प्रदायक ज्ञानमय समोशरण आसीन।
करें धर्म-उपदेश को कर्म-बन्ध से हीन॥

पूर्व अधिकार में गणधरदेव गौतम स्वामी के कई प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देकर श्रीमहावीर प्रभु ने कहा—गौतम! तुम बहुत बुद्धिमान् मालूम पड़ते हो, इसलिये अब मैं तुम्हें मुक्ति-मार्गको कहता हूँ, अन्यान्य प्राणियोंके साथ तुम भी सावधानीपूर्वक सुनो। मेरे बताये रास्ते पर चलनेसे मनुष्योंको निश्चयरूपेण मोक्ष प्राप्त हो जाता है। जो शङ्का इत्यादि दोषोंसे हीन है और निःशङ्कादि गुणोंसे युक्त तत्वार्थों का श्रद्धान है, वह व्यवहार-सम्यक्दर्शन है और मोक्ष का एक अङ्ग है।

इस संसारमें अर्हंतसे बढ़ कर कोई उत्कृष्ट देव नहीं, निर्ग्रन्थसे बढ़ कर महत्वशाली गुरु नहीं, अहिंसा आदि पञ्च व्रतोंसे उत्तम अन्य कोई व्रत नहीं, जिनमतसे श्रेष्ठ कोई मत नहीं, सबके हृदयको प्रकाशित करनेवाला ग्यारह अङ्ग व चौदह पूर्वसे बढ़ कर दूसरा कोई शास्त्र-ज्ञान नहीं, सम्यक्दर्शन आदि रत्नत्रयसे बढ़ कर दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं और पांच परमेष्ठियोंसे बढ़ कर भव्य-जीवोंके लिये दूसरा कोई कल्याणकारी एवं हितकारी नहीं हो सकता। इसी तरह उत्तम पात्र-दान से श्रेष्ठ अन्य प्रकार का कोई भी दान मोक्षका कारण नहीं है। केवलज्ञानको देनेवाले आत्म-ध्यानसे बढ़ कर दूसरा कोई भी उत्कृष्ट ध्यान नहीं है। साधु, महात्मा एवं ज्ञानी धर्मात्माओं की प्रीति ही धर्म एवं सुख को

प्रदान करनेवाली है, अन्य किसी की प्रीतिसे धर्म-सुख नहीं प्राप्त हो सकता। बारह प्रकारके तपोंके फलसे ही कर्मोंका नाश होता है, अन्य किसी तपसे ऐसा नहीं होता। स्वर्ग एवं मोक्षको देनेवाला पञ्च नमस्कार महामन्त्र ही है, इसके अतिरिक्त ऐसा प्रभावशाली कोई अन्य मन्त्र नहीं है। इस लोक और परलोकमें कर्म एवं इन्द्रियोंके समान भीषण दुःख देनेवाला और कोई दूसरा नहीं है। ऐ गौतम! तू इन सबको सम्यक्-दर्शन का मूल कारण जान ले। यह ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र-दर्शन का प्रधान कारण है, मोक्ष-रूपी महल का सोपान (सीढ़ी) है और व्रत इत्यादिका मूल स्थान है। इस सम्यक्-दर्शनके बिना सब ज्ञान अज्ञान है, चारित्र कुचारित्र है एवं सम्पूर्ण तप निष्फल हो जाता है। इस बात को दृढ़तासे समझ कर निःशङ्कादि गुणों के द्वारा शङ्का, मूढ़ता इत्यादि मलावरणों को एकदम हटा कर चन्द्रमा के समान अति स्वच्छ सम्यक्त्व को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये तथा इन्हें प्राप्त कर लेने पर अविचल भावसे दृढ़ रहना चाहिये। सज्जन पुरुषों को तत्वार्थों अर्थात् पदार्थों का ज्ञान वैपरीत्यसे हीन यथार्थतया प्राप्त करना चाहिये। इसी को व्यवहार-सम्यक्-ज्ञान कहते हैं। इस उत्तम ज्ञानके ही द्वारा धर्म-अधर्म, हित-अहित एवं बन्ध-मोक्ष का यथार्थ बोध होता है और देव, धर्म एवं गुरु की भी गुण-परीक्षा इसी ज्ञानके द्वारा होती है। जो ज्ञानसे हीन हैं, वे अन्धे के समान हैं और वे प्राणी हेय-उपादेय, गुण-दोष, कृत्य-अकृत्य, तत्व-अतत्व इत्यादि की यथार्थ विवेचन में एकदम असमर्थ होते हैं। इसलिये स्वर्ग एवं मोक्ष-प्राप्ति की अभिलाषा रखनेवालों को चाहिये कि यत्नपूर्वक प्रतिदिन जैन-शास्त्रों का अभ्यास किया करें। हिंसादि पांच प्रकारके पापों का सर्वदा एवं सर्वतोभावेन त्याग, तथा तीन गुप्ति एवं पांच समितिके पालनको ही 'व्यवहार-चारित्र' कहते हैं। यह भोग एवं मोक्षका देनेवाला है। इसे सम्पूर्ण कर्मास्रवों का अवरोधक (रोकनेवाला), प्रत्येक फलों का देनेवाला एवं सर्वोत्कृष्ट समझा गया है। कर्मोंके संवरके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। उत्तम चारित्रके बिना कोटि-कोटि काय-क्लेशों के द्वारा किया गया तप भी व्यर्थ ही है। इसके बिना कर्मों का संवर नहीं हो सकता, संवरके बिना

मुक्ति नहीं हो सकती और उस मोक्षके बिना भला, अक्षय परम सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? दूसरोंकी तो बात ही कौन चलाये, स्वयं त्रैलोक्यपूज्य एवं देवबन्ध तीर्थङ्कर प्रभु चारित्रके बिना मुक्ति-रूपिणी स्त्रीके मुखारविन्दका दर्शन नहीं कर सकते। जिस तरह दन्तके बिना बृहत्काय हाथीकी शोभा नष्ट हो जाती है, उसी तरह चारित्रके बिना मुनि भी शोभा नहीं पा सकते। बहुत दिनों तक दीक्षा-विधि पालनेवाले हैं, सबमें श्रेष्ठ हैं, और अनेक शास्त्रों के ज्ञाता हैं, तो क्या हुआ ? चारित्रके बिना वे नगण्य ही हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषों को चन्द्रमाके समान अति स्वच्छ चारित्र को धारण करना चाहिये तथा उपसर्ग एवं परीषहों से दुःखी होकर चारित्र का परित्याग स्वप्न में भी कदापि नहीं करना चाहिये। क्योंकि, ये व्यवहार रत्नत्रयके साधक हैं, भव्य-जीवोंके लिये सर्वार्थ-सिद्धि तक महान् सुखों के देनेवाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अनुपमेय हैं, लोकवन्ध हैं और भव्य-जीवोंके परम हितैषी हैं।

जो असंख्येय गुणों का समुद्र है, आत्मा के स्वरूप का श्रद्धान है और कल्पनाहीन है—वह 'निश्चय-सम्यक्त्व' है। परमात्माके अन्तरङ्ग (भीतर में) जो ज्ञान हैं और जो संवेदन (अपने ही आप) ज्ञानसे जाननेके योग्य है, वह 'निश्चय-ज्ञान' है। वाह्य (बाहरके) और आभ्यन्तर (भीतरके) सम्पूर्ण विकल्पोंको छोड़ कर अपने आत्माके वास्तविक स्वरूपमें जो स्मरण करना है, उसीको 'निश्चय-चारित्र' कहा जाता है। ये निश्चय-रूपी तीनों रत्न सम्पूर्ण वाह्य चिन्ताओं से हीन हैं, विकल्प-रहित हैं, और ऐसा होनेके ही कारण भव्य-जीवोंको निःसन्देहरूपेण मोक्ष देनेवाले हैं। व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय मिल कर दो प्रकार के विशाल मोक्ष-मार्ग हैं और मोक्ष-रूपी महासम्पति को देनेवाले हैं। मोक्षाभिलाषी भव्य-जीवों को चाहिये कि मोह-रूपी फन्द (फांसी) को तोड़ कर सदैव इन दोनों रत्नत्रयोंका स्थिर भावसे अनुष्ठान करते रहें। इस संसारके जितने भी भव्य-जीव मोक्षको प्राप्त करने की चेष्टामें क्रियाशील हैं, वे इन दोनों रत्नत्रयोंका पालन किये बिना सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों काल में इन्हीं दोनों रत्नत्रयों के द्वारा मोक्ष मिला है, मिलेगा और

मिल रहा है। इसके अतिरिक्त कोई और अन्य उपाय हो नहीं सकता। धर्म दो प्रकार का है—श्रावक-धर्म और मुनि-धर्म। श्रावक-धर्म तो कोई कठिन नहीं—सुगम है; किन्तु मुनि-धर्म अत्यन्त कठोर है। श्रावक-धर्मको ग्यारह प्रतिमाएँ (श्रेणियां) होती हैं। जो द्यूत (जुआ) आदि सात प्रकारके व्यसनों से हीन है, आठ मूल गुणों से युक्त हैं और अति स्वच्छ सम्यक्‌दर्शन से परिपूर्ण है, उसको 'दर्शन-प्रतिमा' कहते हैं और यही पहली है। इसके बाद दूसरी 'व्रत-प्रतिमा' है। पांच अणुव्रत, तीन प्रकारके गुण-व्रत एवं चार प्रकार का शिक्षा-व्रत—इस तरह बारह व्रत हैं। जिस व्रतमें मन, वचन एवं कायके द्वारा कृतकारितानुमोदन और प्रयत्नपूर्वक त्रस जीवों की रक्षा की जाय वह 'अहिंसा' नामका पहला अणुव्रत है। यह अहिंसा अणुव्रत सम्पूर्ण जीवों की रक्षा और सम्पूर्ण व्रतोंमें मूल है, श्रेष्ठ गुणों का आकर है, एवं धर्मका आदि कारण—मूल बीज है। स्वयं जिनेन्द्र प्रभुने यह बताया है। जिस व्रतमें असत्य एवं निन्दनीय वचनों का घृणापूर्वक परित्याग है, एवं हितकारक, सार-रूपी धर्मके आकर सत्य वचनों को कहा जाता है, उसको 'सत्य' अणुव्रत कहते हैं और यह दूसरा है। सत्य वचन बोलने से संसारमें स्वच्छ कीर्तिका विस्तार होता है। सरस्वती, कला, विवेक एवं चातुर्य की अभिवृद्धि होती है। यदि कदाचित दूसरे का धन, बिना जाने ही कहीं गिर गया है, भूल से छूट गया है, ग्राम के किसी गुप्त स्थानमें रखा है, तो ऐसे धनको ग्रहण नहीं करना 'अचौर्य' नामका अणुव्रत है और यही तीसरा है। जो लोग दूसरेके धनों को चुरा लिया करते हैं, वे पाप-कर्मके उदयसे इसी लोक में बध-बन्धादि दुःखों को प्राप्त करते हैं और दूसरे जन्मोंमें भी नरक आदिकी यन्त्रणाओंको भोगते हैं। जिस व्रतमें अपनी स्त्रीके अतिरिक्त समस्त स्त्रियों को सर्पिणी की तरह त्याज्य समझ कर उनसे अलग रहा जाता है तथा अपनी विवाहिता स्त्रीसे ही सन्तुष्ट रहा जाता है, उसे 'ब्रह्मचर्य' नाम का अणुव्रत कहते हैं और यह चौथा है। खेत, गृह, धन, धान्य, दासी, दास, पशु, आसन-शय्या, वस्त्र और पात्र—ये दस बाह्य परिग्रह हैं। इन परिग्रहों की संख्या नियमित करना तथा लोभ और तृष्णा को त्यागने के लिये जिस व्रत का

विधान है, उसको 'परिग्रह-परिमाण' नामक अणुव्रत कहते हैं और यह पांचवां है। इस परिग्रह-परिमाण-के करने से आशा और लोभ का नाश होता है; सन्तोष, धर्म और सुख-सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं। दसों दिशाओंमें आने-जानेके लिये जो योजनादि मार्ग-परिमाण या मर्यादा स्थिर की जाती है, वह 'दिग्व्रत' नाम का प्रथम गुणव्रत है। तथापि अनेक कार्यों के अकारण ही आरम्भ करने को बन्द कर देना 'अनर्थ-दण्डविरत' नाम का दूसरा गुणव्रत कहा गया है। इस अनर्थ-दण्डव्रतके पांच भेद हैं—पापोपदेश, हिंसा-दान, अप-ध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्य्या। जो इन्द्रिय-रूपी पांच शत्रुओं को जीतने के लिये भोग्योपभोग्य वस्तुओं का परिमाण निश्चित किया जाता है, वह 'भोगोपभोग परिमाण' नाम का तीसरा गुणव्रत कहा जाता है। पापनाशपूर्वक व्रत-परिपालनके लिये, पाप-भीरु व्रतियों के लिये सूक्ष्म जीववाले अदरख इत्यादि कन्द त्याज्य हैं। इसी तरह कीड़ाके खाये फलों को, फूलों को और सम्पूर्ण अभक्ष्य वस्तुओं को विष और मलादि वस्तुओंसे व्याप्त समझ कर छोड़ देना चाहिये।

घर, टोला, पड़ोस, खेत, मुहल्ला और बाजार इत्यादि स्थानोंमें आने-जाने के नित्यशः परिमाण को निश्चित कर लेना 'देशावकाशिक' शिक्षाव्रत है। बुरे ध्यान, तथा बुरी लेश्याओंका परित्याग करके प्रतिदिन तीनों समयमें जो सामायिक-जाप किया जाता है, उसे 'सामायिक' शिक्षाव्रत कहते हैं। अष्टमी और चतुर्दशी (चौदश) के दिन अन्य सब कार्यों को छोड़ कर नियमपूर्वक जो व्रत उपवास किया जाता है, उसको 'प्रोषधोपवास' शिक्षाव्रत कहते हैं। नित्यप्रति भक्तिपूर्वक मुनियों को जो चार प्रकार का आहार-दान विधिके साथ दिया जाता है, उसको 'अतिथिसंविभाग' नामक शिक्षाव्रत कहते हैं।

इस प्रकार मन, वचन और कायकी शुद्धि हो जाने पर, अतीचार यानी दोषोंसे रहित हो जाते हैं और जब इन पूर्वोक्त पांच महाव्रतोंके पालनमें तत्पर रहते हैं, तब उनके द्वितीय 'व्रत-प्रतिमा' होती है। जो लोग अणुव्रत को धारण किया करते हैं, उनको मृत्यु-समयमें आहार और कषायादि को छोड़ कर उन्नत पद पाने की इच्छासे मुनि-चारित्र धारण कर लेना चाहिये। श्रद्धा और विश्वासपूर्वक सल्लेखना

व्रत का पालन करना चाहिये। इसके बाद तीसरी प्रतिमा का नाम 'सामायिक-प्रतिमा' है और चतुर्थ प्रतिमा का नाम 'प्रोषधोपवास-प्रतिमा' है। फल, बीज, पत्ते, जल इत्यादि प्रायः सभी वस्तुएँ जीवसे युक्त हैं। दया-धर्म पालन करने के लिये इसका परित्याग करना 'सचित्त-त्याग-प्रतिमा' नामकी पांचवी प्रतिमा है। मुक्तिके लिये रात्रि समयमें चारों प्रकारके आहारोंका परित्याग कर देना और दिनके समय मैथुनका परित्याग कर देनेको षष्ठम् प्रतिमा कहते हैं। जो इन पूर्वोक्त छः प्रतिमाओंका पालन करते हैं और मन, वचन तथा काय की शुद्धि कर लेते हैं, ऐसे जीवों को मुनीश्वरोंने 'जघन्य श्रावक' कहा है और ये श्रावक स्वर्गमें जाते हैं। जो कि स्त्री-जाति मात्र को अपनी माता समझ कर अहर्निश ब्रह्म-स्वरूप आत्मा में ही लीन रहते हैं, वह सप्तम 'ब्रह्मचर्य-प्रतिमा' है। पाप-भीरु पुरुषों के द्वारा अत्यन्त निन्दनीय और अशुभ व्यापार, ग्रहण आदि का परित्याग कर देना अत्यन्त उत्तम 'आरम्भ-परित्याग' नाम की अष्टम प्रतिमा कही गयी है। केवलमात्र वस्त्रों को छोड़ कर पाप-कर्म को आरम्भ करनेवाले अन्य समस्त परिग्रहोंका जो त्याग मानसिक, वाचनिक और कायिक शुद्धिपूर्वक किया जाता है, उसको 'परिग्रह-परित्याग' नामक नवमी प्रतिमा कही गयी है। जो विरक्त जीव इन नवों प्रतिमाओंका पालन किया करता है, वह देवपूज्य श्रावक कहलाता है। जो गृह-कार्य इत्यादिमें, अपने आहारमें, धनोपार्जन में मन्त्रणा-गुप्तिसे अपना मत नहीं प्रकट करते, उसके दसवीं 'अनुमति-त्याग' नामकी प्रतिमा होती है। जो दोषयुक्त अन्नाहारको, अभक्ष्य वस्तुओं की तरह त्याग देते हैं और भिक्षा-भोजन ही स्वीकार कर लेते हैं, वह एकादश 'उद्दिष्ट-त्याग नामकी प्रतिमा कही गयी है। इन उपर्युक्त ग्यारह प्रतिमाओं का विविध उपायों द्वारा प्रतिदिन जो सेवन करते हैं, वे त्रिलोकीके पूज्य और 'उत्कृष्ट श्रावक' कहे गये हैं। और जो श्रावकोंके प्रतिमा-रूप धर्मों का ध्यान सदैव रखते हैं, वे स्वर्गके उत्तम सोलह सुखों को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार महावीर प्रभुने अनुरागी जीवोंके हृदयमें श्रावक-धर्मके उपदेशके द्वारा महान् हर्ष उत्पन्न किया; पश्चात् वे विरक्त मुनियों की प्रसन्नताके लिये मुनि-धर्मका उपदेश करनेमें प्रवृत्त हुए।

अहिंसा आदि पांच महाव्रत; इर्यादि पांच समितियां; पंचेन्द्रिय-विजय अर्थात् विषयों की ओर अपनी इन्द्रियों को न जाने देना; केश-लोंच, सामायिक इत्यादि षट् आवश्यक-कर्म; नग्न-मुद्रा, स्नान-परित्याग, भूमि-शयन, दन्तधावन-परिवर्जन, एक समय भोजन, रागहीन, खड़े ही खड़े भोजन करना इत्यादि अट्ठाईस मूल-गुणका होना ही मुनि-धर्म है। इन सम्पूर्ण मूल-गुणोंका सदैव पालन करते रहना चाहिये। प्राण-विसर्जन का समय भी यदि उपस्थित हो जाय, तो भी इन मूल-गुणों का परित्याग कदापि नहीं करना चाहिये। क्योंकि, इनके द्वारा तीनों लोककी सुख-सम्पदाएँ प्राप्त हो जाती हैं। मुनियोंके उत्तम गुणोंमें परीषहों का जीतना, आतापन आदि अनेक तप, बहुत उपवास, मौन-धारण इत्यादि की गणना की गयी है। योगियोंको चाहिये कि प्रथम तो वे उत्तमतापूर्वक निर्दोष होकर मूल-गुणोंकी पालना करें और बादमें उत्तर-गुणों की। योगियोंके धर्मके लक्षण दश हैं—उत्तम क्षमा, मारदव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य—ये धर्मोंके उत्पत्ति-स्थान हैं। भव्य-जीवोंके लिये उत्तर-गुणों द्वारा एवं पूर्वोक्त दशलक्षण धर्म-रूप मूल-गुणोंके द्वारा वर्त्तमान भवमें ही मोक्षको प्रदान करनेवाला परमोत्तम धर्म की प्राप्ति होती है। इसीके द्वारा सभी मुनीश्वर सर्वार्थ-सिद्धि एवं तीर्थङ्कर की सुख-सम्पत्ति को चिरकाल भोग कर अन्तमें मोक्ष-पदवीको प्राप्त करते हैं। भव्य-जीवोंके लिये इस संसारमें धर्मके समान न कोई दूसरा भाई है, न स्वामी है, न हितैषी है, न पाप-नाशक; सर्वतोभावेन सभीका कल्याण करनेवाला यह धर्म ही है। इसके बाद श्रीमहावीर प्रभुने कहा कि इस आर्यावर्त भरतक्षेत्र (भारतवर्ष में उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी नामक दो प्रकारके काल कहे गये हैं। ऐरावतक्षेत्रमें भी ऐसी ही व्यवस्था है। उत्सर्पिणी नामक कालमें रूप, बल, आयु, देह एवं सुखकी सदैव वृद्धि हुआ करती है। 'उत्सर्पिणी' शब्द वास्तविक अर्थसे भी तो यही प्रकट होता है। यह उत्सर्पिणी काल बढ़ानेवाला है और यह दस कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। अवसर्पिणी काल में रूप, बल एवं आयु इत्यादि का नाश होता है; इसलि सम्भवतः इसका पर्यायवाची नाम 'अवसर्पिणी' रखा गया है। इनके पृथक् छः भेद हैं। अवसर्पिणी का पहला

काल सुखमा है, और वह चार कोड़ाकोड़ी सागरका है। इस काल की आरम्भावस्थामें ही आर्य-पुरुषों का उदय हुआ था। वे सूर्यके समान परम तेजस्वी एवं स्वर्णके समान वर्णवाले होते हैं। इनकी आयु तीन पल्य की एवं शरीर की ऊँचाई तीस कोस की होती है। तीन दिन समयके बीत जाने पर उनका अलौकिक आहार बदरी-फल (बेर) के बराबर हो जाता है। उन्हें निहार यानी मलमूत्रकी बाधा एकदम नहीं होती। उस समय इनकी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति दस प्रकारके कल्पवृक्षोंके द्वारा हुआ करती है। मद्याङ्ग, तूर्याङ्ग, विभूषाङ्ग, मालाङ्ग, ज्योतिराङ्ग, वीणाङ्ग, गृहाङ्ग, भोजनाङ्ग, वस्त्राङ्ग एवं भाजनाङ्ग— ये कल्पवृक्ष की दस जातियां होती हैं। ये सब वृक्ष उत्तम पात्र-दानके प्रभाव एवं फलसे पुण्य-परायण पुरुषों की आन्तरिक तथा वाह्य अभिलाषाओं को सदैव पूर्ण करने के लिये कटिवद्ध रहते हैं और सुख-सम्पदाओं को प्रदान कर आनन्दित रखते हैं। श्रेष्ठ जीव पुरुष एवं स्त्री के रूप में युगल (जोड़ी) उत्पन्न होकर चिरकाल सुख-भोगोंको भोग कर उत्तम परिणामके प्रभावसे स्वर्गमें जन्म ग्रहण करते हैं। इसी कालकी 'भूमिका' नामकी भोगभूमि है, जो सम्पूर्ण सुखों को देनेवाली कही गयी है। वहां पर क्रूर स्वभाववाले पंचेन्द्री तथा दो इन्द्रियादिवाले विकलत्रय नहीं होते। इसके बाद सुखमा नामके दूसरे कालका आरम्भ होता है। उसकी आयु तीन कोड़ाकोड़ी सागर की है। इस समयमें मध्यम भोगभूमि की रचना होती है और मनुष्योंकी आयु दो पल्यकी होती है। उनका शरीर दो कोस ऊँचा होता है एवं आकृति तथा वर्ण पूर्ण चन्द्रके समान आकर्षक होता है। ये लोग दो दिनके अन्तरसे बहेड़ेके फल के बराबर अनुपम आहार आत्मतृप्तिके लिये ग्रहण करते हैं। इनकी सुख-सामग्री भी भोग-भूमिवालों के ही समान रहती है।

इन दोनोंके बाद तीसरे सुखमा-दुःखमा नामके समय का आरम्भ होता है। इसका परिमाण दो कोड़ाकोड़ी सागरका है। इसमें जघन्य भोग-भूमिकी रचना होती है। मनुष्यका आयुष्य-काल एक पल्य, शरीरकी ऊंचाई एक कोस एवं आभा प्रियंगु वृक्षके समान होती है। इन लोगों का आहार-काल एक

दिनके बाद है और आंवलेके बराबर आहारका परिमाण है। इन्हें भी कल्पवृक्षोंसे ही विविध सुख-सामग्रियां प्राप्त हुआ करती हैं। इसके अनन्तर दुःखमा-सुखमा काल का प्रवर्तन होता है और कर्म-भूमि आरम्भ होती है। इसमें शलाका अर्थात् पदवी धारण करनेवाले पुरुषों की उत्पत्ति होती है। इसका परिमाण ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका है। मनुष्योंका आयु-परिमाण एक करोड़ वर्ष पूर्व है। शरीर की ऊँचाई पांच सौ धनुष की है तथा देहवर्ण पांच प्रकारका होता है। ये दिनमें एक बार श्रेष्ठ भोजन को ग्रहण करते हैं; तिरेसठ शलका पुरुष ऐसे ही समय में उत्पन्न होते हैं।

त्रैलोक्याधिपति एवं इन्द्र आदि जिन चौबीस तीर्थङ्करों को नतमस्तक होकर नमस्कार किया करते हैं, उनके नाम निम्नलिखित हैं—ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अरह, मल्लि, मुनि-सुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्वनाथ एवं श्रीवर्द्धमान महावीर। ये धर्मके प्रवर्तक हैं और संसार के स्वामी हैं। बारह चक्रवर्ती हैं, जिनके नाम निम्नलिखित हैं—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेन, जयकुमार एवं ब्रह्मदत्त। नौ बलभद्र हैं, जिनके नाम ये हैं—विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नान्दो, नन्दिमित्र, पद्म (रामचन्द्र) और बलदेव। नौ नारायण हैं, जिनके नाम ये हैं—त्रिपृष्ट, द्विपृष्ट, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण एवं श्रीकृष्ण। ये सबके सब तीनों खण्डोंके स्वामी, धीर-वीर एवं स्वभावतः रौद्र-परिणामी होते हैं। इन उपर्युक्त नौ नारायणोंके अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निशुम्भ, कैटिभारि, मधुसूदन, बलिहन्ता, रावण, जरासन्ध—ये नौ प्रति-नारायण हैं। ये भी सब नारायण के ही समान सम्पत्तिशाली एवं अर्द्धचक्री होकर नियम से नारायणके शत्रु होते हैं। इन्हींको तिरेसठ-शलाका पुरुष कहा गया है। इन पूजनीय महात्माओं को मनुष्य, देव एवं विद्याधर प्रभृति सभी वन्दना किया करते हैं। श्रीजिनेश महावीर प्रभुने इनके जन्म-वृत्तान्तोंसे लेकर अन्त काल तक सबकी पृथक्-पृथक् पुराण मोक्ष-प्राप्तिके निमित्त विस्तारपूर्वक कहा है।

उन पुराणोंमें इनकी सम्पत्ति, आयु, बल, वैभव एवं सुखका विस्तृत वर्णन है। गणधर देव तथा अन्यान्य उपस्थित भव्य-जीव-समूहोंके सामने श्रीमहावीर प्रभुने इन सब बातों को कहा।

इसके बाद पांचवां दुःखमकाल नानाविध दुःखों से ओत-प्रोत है। इसका परिमाण इक्कीस हजार वर्षका है। इस कालके आरम्भमें एकसौ बीस वर्षकी आयुवाले, तथा सात हाथ ऊँचे शरीर को धारण करनेवाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इनकी बुद्धि मन्द होती है, शरीर रूखा होता है, सुख से हीन होते हैं, बहुत बार भोजन करनेवाले होते हैं, और कुटिल परिणामवाले होते हैं। इनका शरीर, आयु, बुद्धि एवं बल इत्यादि दिनोंदिन न्यून होता चला जाता है। तब दुःखमा-दुःखमा नाम का काल आरम्भ होता है। इसकी अवधि भी इक्कीस हजार वर्षकी ही है। यह धर्म इत्यादिसे हीन; अत्यन्त घोर दुःखों को देनेवाला है। उस समय मनुष्य केवल दो हाथ ऊँचे और बीस वर्ष की अवस्थावाले होते हैं। उनका वर्ण धुंए के समान काला एवं देखने में महाकुरूप होता है। प्रायः नग्नावस्था में ही ये रहते हैं और इच्छानुसार भोजन किया करते हैं। जब इस दुःखमा-दुःखमा का अन्तिम काल आ जाता है, तब इन मनुष्यों की ऊँचाई एक हाथकी रह जाती है और पशुओंके समान वृत्तिवाले होकर इधर-उधर फिरा करते हैं। इनकी आयु अधिकसे अधिक १६ वर्षकी होती है। ये सब अत्यन्त निन्दनीय होते हैं और बुरी गतिको प्राप्त करते हैं। जिस तरह कि अवसर्पिणी काल क्रमशः धीरे-धीरे हीन होता चला जाता है, उसी तरह उत्सर्पिणी उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहता है। इतना कह चुकने के बाद श्रीजिनेन्द्र महावीर प्रभुने 'लोकका' वर्णन करना आरम्भ किया।

इस लोकका अधःस्थल (निचला भाग) बेंतके आसन (मोढ़े) के समान है; बीचमें झालर-सा लगा हुआ है और ऊपरी भाग में मृदङ्ग के आकार का बना हुआ है। इसीमें जीव इत्यादि छः द्रव्य भरे पड़े हैं। इसके साथ ही प्रभुने द्वीप इत्यादिका विशेष आकार तथा स्वर्ग और नरक का भी वर्णन कर चुकने के बाद कहा कि, तीनों लोकमें जो भी कुछ भूत, भविष्य और वर्तमान काल में होनेवाले

शुभ-अशुभ पदार्थ हैं तथा इनसे पृथक् जो अलोकाकाश है; वे सभी केवल-ज्ञानके ही द्वारा वास्तविक-
रूपमें जाने जा सकते हैं। श्रीजिनेन्द्र महावीर प्रभुने भव्य-जीवोंकी भलाईके लिये तथा धर्म और तीर्थ
की प्रवृत्ति के लिये द्वादशांग-रूप वाणी के द्वारा सब तथ्यों का वर्णन किया। जिस प्रकार चन्द्रमा को
'सुधास्रवी' कहते हैं और बराबर अमृत झरता रहता है, उसी प्रकार श्रीजिनेन्द्र महावीर प्रभुके मुखचन्द्र
से निकलनेवाले ज्ञानोपदेश-रूपी अमृतको कर्ण-पात्रोंसे पीकर (सुन कर) श्रीगौतम स्वामीने मिथ्यात्व-
रूपी भयानक विषको उगल दिया और काललब्धि (उत्तम भवितव्यता) वश सम्यक्दर्शनसे युक्त होकर
संसार, शरीर और भोग इत्यादिसे विरक्त हो गये। वे अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगे—
मैंने अतीव मूर्खतावश आज पर्यन्त सम्पूर्ण पाप-कार्यों को उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त निन्दनीय और
अशुभ मिथ्या-मार्ग का व्यर्थ ही सेवन किया। जिस प्रकार भ्रम में पड़ कर कोई मनुष्य विषधारी
सर्प को माला समझ कर गलेमें धारण करने के लिये उठा लेता है, उसी प्रकार मैं भी भ्रममें ही पड़ा
रह गया। धर्मके धोखेमें मिथ्यात्व-रूपी महापापको ग्रहण कर लिया। धूर्तोंके द्वारा बनाये गये अज्ञान-
मिथ्यात्व-मार्गमें फँस कर, महामूर्ख लोग महाभङ्कर और घोर नरक में दुःसह यन्त्रणाओं को भोगनेके
लिये जोरोंसे गिराये जाते हैं और वहां पर इनकी भीषण दुर्गति होती है। मदिराको पीकर जो एकदम
मदोन्मत्त हो गया है, वह मल-मूत्रादिका किस प्रकार ध्यान रख सकता है? जो सम्यक्दर्शनसे हीन हैं,
वे मतवालों की तरह ही अशुभ-मार्गमें जा गिरते हैं। अन्धा पुरुष यदि मार्गमें चलता है, तो वह कुएं
में गिरनेसे कैसे बच सकता है? मिथ्यात्व से जिनकी आँखें अन्धी हो गयी हैं, वे नरक-रूपी कुएं में
अवश्य ही गिर पड़ते हैं। यह मिथ्यात्व-मार्ग अत्यन्त हेय है; यह दुष्टों को नरक में पहुँचा देने का
साथी है; और इसका आदर भी जड़मति जीव ही किया करते हैं। इस मिथ्यात्व को सम्यक्दर्शन,
ज्ञान, चारित्र आदि धार्मिक राजाओं का उग्र शत्रु समझना चाहिये। इसे जीव-भक्षक महाविषधारी
और विशाल अजगर सर्पसे कम कदापि नहीं समझना चाहिये। यह सम्पूर्ण पापों का उत्पत्तिस्थान

(खानि) है। जिस प्रकार कि बैलों के सींगसे दूध का मिलना, पानी के मथने से घी का निकलना, दुर्व्यसनोंसे प्रशंसा प्राप्त करना, कृपणतासे प्रसिद्ध होना और नीच-कर्मसे धनोपार्जन करना असम्भव है; उसी प्रकार मिथ्यात्वके द्वारा अज्ञानी पुरुषों को शुभ वस्तु, श्रेष्ठ सुख और उत्तम गति कदापि नहीं मिल सकती। धर्महीन मिथ्यादृष्टि जीव, मिथ्यात्व आचरणके कारण भयङ्कर दुःख और दुर्गति-रूप नरकमें ही पड़ते हैं। इसलिये हे प्राणियो, स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धि प्राप्त करने के लिये, बुद्धिमानों को चाहिये कि, वे अपने मिथ्यात्व-रूपी महाशत्रुओं को सम्यक्दर्शन-रूपी तीक्ष्ण तलवारके द्वारा शीघ्र ही नष्ट कर डालें।"

"आज मेरा जन्म सफल हो गया और अब मैं धन्य हूँ! अत्यन्त अधिक पुण्योंके उदयसे ही हमें जगद्गुरु श्रीजिनेन्द्रदेवके समान महाज्ञानी गुरु प्राप्त हुए। इनके अनुपम उपदेश में जो कहा गया है, वही सत्य, सरल और श्रेष्ठ मोक्षका मार्ग है। इसीसे सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति हो सकती है। मेरे हृदय में जो दर्शन-मोह यानी मिथ्यात्व-रूपी निविड़तम अन्धकार व्याप्त था, वह प्रभुके उपदेश-रूपी तेजस्वी किरणोंसे शीघ्र ही नष्ट हो गया और अब वहां उज्ज्वल प्रकाश-सा जान पड़ रहा है"—ऐसा सोच कर वह विद्वद्वर विप्र गौतम, धर्म एवं धर्मके उत्तमोत्तम फलोंको सोचने लगा। वह आनन्दके कारण उछलने लगा। उसने विरक्त होकर निश्चय किया—"मोह इत्यादि शत्रु-सैन्यके साथ मिथ्यात्व-रूपी महाशत्रुकी सन्तति-शाखाका मूलोच्छेदन करने के लिये हमें जिन-दीक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिये। इसीसे मोक्ष की प्राप्ति होगी और अक्षय सुख मिलेगा।" इसके बाद बाहर के दस और भीतर के चौदह परिग्रहों का परित्याग कर उन्होंने मन, वचन और काय की शुद्धि की, और अपने अन्य दोनों भाइयों के साथ श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र की दिगम्बर (नग्न) मुद्रा धारण कर ली। बाद में पांचसौ शिष्यों को उन्होंने तत्व-स्वरूपका उपदेश दिया; जिसे सुन कर बहुतोंके हृदयका अन्धकार दूर हो गया और पूर्वोक्त दोनों प्रकारके परिग्रहों का परित्याग कर मुनि-चरित्र को ग्रहण कर लिया। साथ ही वहां पर उपस्थित राज-

कन्याएँ और अन्य सुशीला स्त्रियां भी उपदेश को सुन कर प्रभावित हुईं और अभीष्ट-सिद्धि के लिये प्रसन्नतापूर्वक उसी समय अर्जिकाएँ हो गयीं। कितने ही शुभ-परिणामी नर-नारियोंने श्रीजिनेन्द्रदेवके उपदेशके अनुसार श्रावकके व्रतों को ग्रहण कर लिया। सिंह, सर्प इत्यादि हिंसक पशुओंने भी उस उपदेशामृतके प्रभावसे अपने-अपने हिंसक स्वभावको छोड़ कर श्रावकोंके व्रतोंको स्वीकार कर लिया। चारों ज्ञातिके देव और देवियां, तथा मनुष्य एवं पशुओंने, प्रभुके वचनामृतको पीकर अपने मिथ्यात्व-रूपी हलाहल को दूर कर दिया और मोक्ष-प्राप्तिके लिये सौभाग्यवश प्राप्त सम्यक्दर्शन-रूपी बहुमूल्य रत्नहारको अपने हृदयमें सौख्यपूर्वक धारण किया। जो कोई व्रतादिके पालनमें असमर्थ थे, वे आत्म-कल्याणकी भावनासे दान, पूजा और प्रतिष्ठा इत्यादिका आचरण करने लगे। जिन लोगोंने भक्तिवश तप और व्रत इत्यादि को ग्रहण तो कर लिया लेकिन अन्तमें आतपनादि कठिन कार्यों को नहीं कर सके, वे मन, वचन और काय की शुद्धिमें प्रवृत्त होकर कर्म-रूपी शत्रुओंके नाश-कार्यमें प्रवृत्त हो गये। इसके बाद सौधर्मेन्द्रने भक्तिपूर्वक गणधर देव गौतम की अलौकिक पूजनीय द्रव्योंसे पूजा की, उनके सुन्दर चरणारविन्दको नमस्कार किया और स्तुतिमें उनके गुण-गौरवका गान करते हुए सम्पूर्ण उपस्थित सज्जन पुरुषोंके सामने ही आपका नाम 'इन्द्रभूति स्वामी' घोषित किया और तभी से यह दूसरा नाम भी प्रचलित हुआ है।

श्री गौतम गणधर को आश्चर्यजनक परिणाम-शुद्धिके द्वारा उसी समय सातों ऋद्धियां प्रकट हुईं; उनकी मानसिक शुद्धिके ही कारण शीघ्र ऐसा हो सका। हे प्राणियो! इस संसारमें अपने मनको परम पवित्र रखनेसे ही सज्जनोंको अभीष्ट-सिद्धि हो सकती है। यदि सर्वतोभावेन मनकी शुद्धि हो जाय, तो क्षणमात्र में ही केवल-ज्ञान-रूपी अत्यन्त दुर्लभ महा ऐश्वर्य प्राप्त हो सकता है। श्रावण कृष्ण एकम (प्रतिपदा) के दिन प्रातःकाल श्रीमहावीर प्रभुके तत्वोपदेश के द्वारा मनकी शुद्धि हो जानेके कारण इन इन्द्रभूति गणधर के हृदयमें सब अङ्गपूर्वके पद अर्थ-रूपमें बदल गये। ज्ञानावरणके नष्ट प्रायः हो जाने

पर दिनके अन्तिम प्रहरमें, बुद्धिमें सब अङ्गपूर्व प्रकट होनेसे, मति आदि चार ज्ञानों को पाकर अपनी अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा इन्द्रभूतिने भव्य-जीवों की कल्याण-कामनाके हेतु सम्पूर्ण शास्त्र की रचना की और उसके बाद रात्रिके अन्तिम प्रहरके समय भविष्य में धार्मिक प्रवृत्तिके प्रचार की इच्छासे पद्-वाक्य-रूप द्रव्यों का निर्माण किया।

धर्मके प्रभाव एवं फलसे श्रीगौतम गणधर स्वामीने द्वादशांग शास्त्रों की रचना करने के बाद सब मुनियोंमें श्रेष्ठ, श्रद्धेय और पूजनीय हुए; इसलिये संसारके बुद्धिमान पुरुषोंको चाहिये कि, वे अपनी अभीष्ट प्राप्तिके लिये मनको पवित्र करके उत्तम धर्म का आश्रय करें।

ऊनविंश प्रकरण

ज्ञान-ज्योति से मोह को, दूर करें जो नाथ।
भव्य-कमल विकसित करें, करके मुझे सनाथ॥

अथानन्तर उपदेशके बाद जब दिव्यवाणीको विश्राम मिल गया और जीवोंका कोलाहल शान्त-सा हो गया, तब गुणवान और बुद्धिमान सौधर्म इन्द्र श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपनी अभीष्ट-प्राप्ति की इच्छासे श्रीमहावीर प्रभु की स्तुति करने लगे। भगवान महावीर स्वामी तीनों लोक के भव्य-जीवों के मध्य में विराजमान थे और सम्पूर्ण प्राणियों को सावधान करनेमें प्रवृत्त थे। इन्द्रने रानियों की उपकार-साधन की इच्छासे और अन्यत्र भी धर्मोपदेश करनेकी प्रेरणा करते हुए जगद्वन्द्य महावीर प्रभुकी स्तुति करना आरम्भ किया। "हे देव! मैं अपने मानसिक, वाचनिक और कायिक शुद्धिके लिये स्तुति कर रहा हूँ। आप अनन्त गुणोंके सागर हैं, और तीनों लोकके स्वामियोंके द्वारा परम पूजनीय माने गये हैं। वे आपकी सेवा और स्तुति करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। आपकी स्तुति करने से भव-जीवों के उत्कृष्ट पाप-मल दूर हो जाते हैं और मन के विशुद्ध हो जाने पर, संसार की सम्पूर्ण सुख-सम्पदाएँ प्राप्त हो

जाती हैं। फिर कौन ऐसा है, जो अभ्युत्थान चाहता हुआ भी आपकी सेवा स्तुति न करे? जो विशिष्ट फल पाने की इच्छा करते हैं, वे सभी आपकी स्तुति करने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। स्तुतिके चार अङ्ग हैं—१ स्तुति, २ स्तोता (स्तुति करनेवाला), ३ स्तुत्य जिसकी स्तुति की जाय, और ४ फल। जिस वाणी के द्वारा गुण-सागर श्रीअर्हन्तदेव के वास्तविक गुणों का प्रशंसा की जाय, उसे विचारवान पुरुषोंने 'स्तुति' कहा है। जो अनन्तदर्शन और अनन्तज्ञान इत्यादि विविध उत्तमोत्तम गुणोंसे युक्त हैं, वीतराग और त्रैलोक्यके नाथ हैं, वे श्रीजिनेन्द्रदेव ही सभी सज्जन महापुरुषों के द्वारा परम स्तुत्य माने गये हैं। प्रभु की स्तुति करने का साक्षात् फल तो परम पुण्य की प्राप्ति है; परन्तु अन्तमें अब सम्पूर्ण गुणोंकी भी प्राप्ति हो जाती है; जो प्रभुमें विद्यमान हैं। मैं सम्पूर्ण सामग्रियोंको पाकर आपकी स्तुति में प्रवृत्त हुआ हूं। आप अपनी कल्याणमयी प्रसन्न दृष्टिसे हमें पवित्र करने की कृपा करें। हे प्रभु! आज आपने अपने वचन-रूपी किरणोंसे भव्यों के आन्तरिक मिथ्यात्व-रूपी उस महान्धकार को भी दूर कर दिया, जिसे कि सूर्यकी किरणें भी नहीं छू पातीं। हे नाथ! जब आपने वचन-रूपी तेज तलवार से मोह-रूपी महाशत्रुको मारा, तब अपनी सेनाके साथ वह भाग खड़ा हुआ और जड़ मन एवं इन्द्रियों के आश्रममें जा छिपा। हे देव! जब आपका वचन-रूपी वज्र कामदेव पर गिरा, तब अन्यान्य इन्द्रिय-रूपी चोरोंके साथ वह भी मरणासन्न अवस्थामें पड़ा हुआ है। हे ईश! जब आपके केवल-ज्ञान-रूपी पूर्ण-चन्द्रमाका उदय हुआ, तब उल्लासके कारण धर्म-रूपी समुद्र बढ़ गया। इस धर्म-सागरमें सम्यग्दर्शनादि महारत्न भरे हुए हैं और यत्नशील बुद्धिमान पुरुषों को ही प्राप्त होते हैं। हे भगवन्! आज आपके धर्मोपदेश-रूपी अस्त्रसे, सम्पूर्ण जीवों को सन्ताप देकर दुःखी करनेवाला भव्योंका, पाप-रूपी महाशत्रु नष्ट हो गया। कितने ही भव्य आपसे दर्शन एवं चारित्र इत्यादि परमोत्तम सम्पत्तियोंको पाकर अक्षय सुखकी प्राप्तिके लिये उत्तम मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं; कितने ही आपसे रत्नत्रय एवं तप-रूपी बाणों को पाकर चिरकालानुबन्धी कर्म-शत्रुको मारने के लिये सन्नद्ध हैं; और मोक्ष प्राप्ति की अत्यन्त उत्कट

कामनासे उग्र प्रयत्न करने में प्रवृत्त हैं। हे नाथ ! आप नित्यप्रति त्रैलोक्यके भव्यों को सम्यक्दर्शन, ज्ञान, एवं चारित्र-धर्म-रूपी बहुमूल्य एवं अत्यन्त उत्तम रत्न को प्रदान करनेवाले हैं। इन रत्नोंके द्वारा सभी सुख-सम्पत्तियां एवं सर्वश्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त कर लिया जाता है। इसलिये हे देव ! आपके समान कोई भी इस संसारमें न तो धनवान् है और न कोई ऐसा महादानी ही है। यह समस्त संसार मोहनिद्रामें एकदम बेसुध होकर पड़ा हुआ था, परन्तु आज आपके वचन-रूपी बाजे के गम्भीर नादसे जाग्रत यानी सजग हो गया। आपके अनुग्रहसे कितने ही भव्य-जीव सर्वार्थ-सिद्धि, स्वर्ग एवं मोक्षको प्राप्त होंगे। आपके इस उपदेशामृत को सुन कर देव, मनुष्य एवं पशु—सभी कर्म-समूह को एकदम नष्ट कर देनेके लिये तुल गये हैं और आपके बिहारके कारण आर्यखण्ड-निवासी ज्ञानवान् भव्य-जीव भी सम्पूर्ण तात्विक रहस्यों को जान कर पाप-कार्योंके नाशमें प्रवृत्त होंगे।

हे प्रभु ! आपके पुनीत बिहार (धार्मिक भ्रमण) के कारण अनेकों भव्य-जीव तप-रूपी तलवारके द्वारा सांसारिक स्थिति को छिन्न-भिन्न करके सुख-समुद्र मोक्ष को प्राप्त होंगे। अनेकों योगी आपके उत्तम धर्मोपदेशसे चारित्रपालनमें तत्पर होकर अहमिन्द्र-पदको प्राप्त कर लेनेमें समर्थ होंगे और अनेकों सोलह स्वर्गमें जायेंगे। हे भगवन् ! संसारके कितने ही मोह एवं पाप-परायण जीव आपके उपदेशसे उत्तम पथ पर आरूढ़ हो जायेंगे और फिर मोह-रूपी शत्रुका नाश करनेमें प्रवृत्त होंगे। भव्य-जीवों को मोक्षके परम रमणीक द्वीपमें ले जानेवाले चतुर व्यवसायी आप ही हैं। इन्द्रिय-कषाय-रूपी चोरों को पकड़ कर अत्यन्त कठोर दण्ड देनेवाले महाबलवान योद्धा भी आप ही हैं। हे प्रभो ! आप भव्य-ज़ीवों पर दया करके मोक्ष-मार्गमें प्रवृत्ति-प्रचार के लिये धर्म-साधक बिहार कार्य का प्रारम्भ करें, जो भव्य-जीव-रूपी धान्य मिथ्यात्व-रूपी दुष्काल (अकाल) के कारण एकदम सूखसे गये हैं, उन्हें धर्म-रूपी अमृत-जलके सिंचनसे आप पुनः हरा-भरा कर दीजिये। जगत को दुःख देनेवाले एवं दुर्जय मोह-रूपी शत्रु को मारनेके लिये स्वर्ग-मोक्षदायक आपका धर्मोपदेश-रूपी बाण प्राप्त होगा और समस्त पुण्यात्मा

जीवोंको निश्चयरूपेण सफलता मिलेगी। मिथ्याज्ञान-रूपी महान अन्धकारको नष्ट कर देनेवाला यह उत्तम धर्म-चक्र भी शोभायमान है। इस धर्म-चक्र को देवों ने चारों ओर घेर रखा है। यह आपकी गौरवपूर्ण विजयको बतानेवाला है। मिथ्या-मार्ग को हटा कर सत्य-मार्गके प्रतिपादनके लिये काल भी आपके सम्मुख उपस्थित है। मैं अब और अधिक क्या कहूँ ? बस, इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अब आप शीघ्र ही विहार करके आर्यखण्ड-निवासी भव्य-जीवोंका कल्याण करें और उन्हें पवित्र बनायें। मिथ्या-मार्ग-रूपी महान अन्धकार को दूर करके स्वर्ग एवं मोक्ष का अति प्रशस्त पथ दिखलानेवाला आपके अतिरिक्त कदाचित् कोई दूसरा नहीं है। भव्यों का उपकार करनेवाले एकमात्र आपही तो हैं। इसलिये हे स्वामिन् ! आपको पुनः पुनः नमस्कार है। आप गुणोंके रत्नाकर हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त-दर्शन, एवं अनन्त-सुखशाली आप हैं। आप अनन्त हैं, बल-स्वरूप हैं, दिव्यमूर्ति हैं, महालक्ष्मी से विभूषित हैं और विरक्त हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। आप यद्यपि असंख्य देवियोंसे घिरे हुए हैं, तथापि पूर्ण ब्रह्मचारी हैं। उदय-प्राप्त ज्ञानशाली आप हैं, मोह-शत्रु-नाशक हैं; इसलिये आपको नमस्कार है। शान्त-रूपसे ही कर्म-शत्रु को परास्त करनेवाले, सम्पूर्ण जगतके स्वामी एवं मुक्तिरूपिणी सुन्दरी स्त्रीके प्रियतम पति आप ही हैं। आपको पुनः पुनः नमस्कार है। हे देव, सन्मति महावीर ! मैं अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये आपको नतमस्तक होकर कोटिशः प्रणाम करता हूं। हे स्वामिन् ! हमें और किसी अन्य वस्तुकी अभिलाषा नहीं हैं; बस जन्म-जन्ममें आपकी श्रेष्ठ भक्तिकी कामना है, वही आप हमें स्तुति, भक्ति, सेवा एवं नमस्कारके फलस्वरूप प्रदान करने का अनुग्रह करें ! तीनों लोक में अत्यन्त उत्तम सुख एवं मनोकामना को पूर्ण करनेवाले सम्यक्-दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी प्राप्ति हो— यही आपके चरणारविन्द की भक्ति करके मैं पाना चाहता हूं।

यद्यपि जगतगुरु श्रीमहावीर तीर्थङ्कर संसारके समुद्बोधनमें रत थे, तथापि पूर्वोक्त प्रकारसे इन्द्र के द्वारा स्तुति की जाने पर उन्होंने सब भव्यों को मिथ्या-मार्गसे दूर हटा कर निर्भ्रान्त मोक्ष-मार्ग पर

लानेके लिये बिहार करनेका निश्चय किया। जब प्रभु बिहार करनेके लिये उद्यत हुए, तब बारह प्रकार के जीव-समूहोंने उन्हें घेर रखा था, देववृन्द चमर हिला कर सेवा कर रहे थे, सिर पर तीन परमोत्तम छत्र शोभायमान हो रहे थे और उनके पास महासम्पदाएँ एकत्रित थीं। करोड़ों वाद्य की ध्वनिके साथ प्रभुने बिहार करना प्रारम्भ किया। अनेकों ध्वजा-पताकायें एवं छत्र इत्यादि से सारा आकाश-मण्डल ढँक-सा गया। देववृन्द चारों ओर से जय-ध्वनि करने लगा। हे ईश! आप सम्पूर्ण भव्य-जीवों के महाशत्रु मोहको जीतें और जयवन्त कहलायें। प्रभो! आपकी वृद्धि हो और आनन्द को प्राप्त करें! इसके बाद प्रभु विहार करने लगे और सब सुर-असुर इत्यादि के मध्यमें तेजस्वी सूर्य के समान शोभायमान हुए। प्रभुके विहार स्थानसे लेकर सौ योजन पर्यन्त सम्पूर्ण दिशाओं में अत्यन्त सुकाल था। सातों प्रकारकी आपदायें भव्योंको कहीं छायामात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होती थी। अर्हन्त प्रभु अनेकों देश, पर्वत, नगर एवं नदी इत्यादिकोंको पार करते हुए आकाश-मार्गसे ही आगे बढ़ने लगे। प्रभुके शान्त परिणाम के प्रभाव के कारण हरिण, मृग इत्यादि अन्य जीवों को दुष्ट सिंहादि हिंसक पशुओं से कुछ भी भय न था। प्रभु नोकर्म-वर्गणाके आहारसे ही पुष्ट थे, सुखी एवं विरक्त थे। कर्मों के नाश हो जाने के कारण कवलाहार (ग्रास-भोजन) प्रायः बन्द हो चुका था। अनन्त चतुष्टयके साथ इन्द्रादि प्रभु को घेरे हुए थे।। प्रभुका असाता-कर्म-उदय अत्यन्त मन्द था; इसीलिये मनुष्योंके द्वारा किये गये उपसर्ग का एकदम अभाव था। त्रिजगद्गुरु श्रीमहावीर प्रभुके अतिशयके कारण चारों दिशाओंमें चार मुख थे, वे सभी को अपने सम्मुख ही पाते थे। सभी जीव अत्यन्त निकट थे और उन्हें किसी प्रकारका कोई भय नहीं था। घातिया-कर्मोंके नाश हो जाने के बाद प्रभुने केवल-ज्ञान प्राप्त कर लिया। वे सम्पूर्ण विद्याओंके स्वामी थे और उनके नेत्र भी तेजस्वी थे। प्रभुके दिव्य शरीर की न कहीं छाया (परछाईं) पड़ी, न आँखों के पलक ही बन्द हुए और न कभी नख एवं केशों की वृद्धि हुई। घातिया-कर्म-रूपी शत्रुओंके नाश हो जाने पर उस विभुके दस दिव्य अतिशय स्वतः प्रकट हो गये। सब अङ्गोंसे अर्थ-स्वरूप

अर्धमागधी भाषा निकली। यही प्रभु की दिव्य भाषा थी। यह सभी लोगों को आनन्द देनेवाली, समग्र सन्देह को मिटानेवाली, दो प्रकारके धर्मको एवं सम्पूर्ण पदार्थोंको कहनेवाली हुई। इस सद्गुरु के परम आश्चर्योत्पादक प्रभावसे स्वभावतः जाति-विरोधी सर्प एवं नेवले इत्यादि जीव परस्परके बैर-भावको मिटा कर परम मित्र की तरह एक ही स्थान पर रहने लगे और सब वृक्षोंमें एक साथ सम्पूर्ण ऋतुओंके फल-फूल एक ही साथ फलने लग गये। वे इस विचित्र परिवर्तनसे प्रभुके परमोत्तम दिव्य तपके प्रभाव को ही व्यक्त कर रहे थे। धर्मके सम्राट् प्रभुका जहां सभामण्डप होता था, वहां पृथ्वी चारों ओरसे आतशीके समान पारदर्शी एवं प्रभापूर्ण दीख पड़ती थी। जब प्रभु जगतके जीवों को उद्बोधित करने के लिये चलते थे, तब सबको सुख पहुँचा कर सेवा करने की इच्छा से वायु शीतल, मन्द एवं सुगन्धयुक्त होकर चलने लगता था। अतुल आनन्द को देनेवाली प्रभुके जय-जयकार की ध्वनिसे वह मुखरित था और शोक-सन्तप्त जीवोंको उसे सुन कर अपार आनन्द प्राप्त होता था। प्रभु के सभामण्डपके आगे चार कोश तक की पृथ्वी को वायुकुमारदेव स्वच्छ एवं तृण-कण्टकादिसे हीन कर दिया करते थे। इसी प्रकार स्तनितकुमारदेव बिजली की चमकसे युक्त अत्यन्त सुगन्धित जलकी वर्षा से चारों ओर सिंचन कर देते थे और देववृन्द प्रभु के पैर रखने के स्थान पर रत्न जड़े हुए प्रकाशमान सुवर्ण के बनाये हुए पीले पखुड़ियोंवाले सात-सात कमल बना दिया करते थे। प्रभु के पाद-पद्म उसी स्वर्ण-कमल पर ही पड़ते थे। सबको तृप्ति देनेवाले शालि इत्यादि अन्न, वनस्पति, धान्य आदि अधिक मात्रामें एवं पुष्ट कणों से परिपूर्ण होकर एकदम झुक जाते थे तथा अन्यान्य वृक्ष भी सम्पूर्ण ऋतुओंके फलसे युक्त होकर विनयावनत पुरुषके समान नीचेकी ओर लटक जाते थे और उनकी शोभा बढ़ जाया करती थी।

जिस प्रकार सम्पूर्ण पापोंके दूर हो जाने से हृदय निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार जहां प्रभु का सभामण्डप था, वहां सम्पूर्ण दिशाएँ आकाशके समान एकदम स्वच्छ हो जाया करती थीं; मानो उनके

भी पापपुञ्ज धुल गये हों। इन्द्रकी आज्ञासे चारों जातिके देव, प्रभुकी यात्रामें सम्मिलित होनेके लिये परस्पर एक दूसरे को बुलाया करते थे। उन महामहिमाशाली प्रभु के आगे-आगे प्रभापूर्ण रत्नों से सुशोभित सहस्रों आरोंवाला धर्म-चक्र चल रहा था। वह अपनी प्रखर ज्योति से महान अन्धकार के हृदयको विदीर्ण करता हुआ बढ़ रहा था और देवमण्डली उसे घेरे हुए थी। दर्पण आदि आठ मङ्गल-द्रव्यों को देव अपने साथ लिये हुए थे। यह सब महान् चौदह अतिशय भक्तिके द्वारा देवोंने किया। दिव्य चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य, चार अनन्त चतुष्टय तथा अन्य अपरिमेय उत्तमोत्तम गुणोंसे संयुक्त प्रभु अनेकानेक देश, वन, पर्वत, नगर और ग्रामोंमें बिहार करते हुए, राजगृही नाम की नगरी के बाहर विपुलाचल पर्वत पर पहुँचे। वे अर्हन्त महावीर प्रभु धर्मोपदेश-रूपी अमृत से अनेकानेक भव्य-जीवोंको सन्तुष्ट करनेवाले थे, उन्हें वस्तु-स्वरूप का वास्तविक रहस्य बता कर मोक्षके परिष्कृत पथ पर ले जानेवाले थे, मिथ्या-ज्ञान-रूपी अत्यन्त घने अन्धकारसे आच्छन्न, भयोत्पादक-मार्गको अपने वन-रूपी प्रकाशसे आलोकमय करनेवाले थे; रत्नत्रय-स्वरूप मोक्षके मार्ग को प्रगट करनेवाले और कल्पवृक्ष की तरह सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र तप और दीक्षारूपी आकांक्षित चिन्तामणि रत्नोंके दाता थे तथा सम्पूर्ण संघ और देववृन्दसे परिवेष्टित थे।

इसके बाद जब राजगृही नगरीके अधिपति महाराज श्रेणिकने बनमालीके मुखसे प्रभुके शुभागमन का समाचार सुना, तब वह शीघ्र ही भक्तिके वशीभूत होकर स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव और महासम्पदा को अपने साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक उस विपुलाचल पर्वत पर पहुँचा जहां कि प्रभु आये हुए थे। वहां जाकर उसने प्रभु की तीन परिक्रमा दी और मन, वचन, एवं काय से पवित्र होकर श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और जल इत्यादि अष्ट-द्रव्यों से जिनेन्द्र प्रभुके चरणारविन्द की पूजा की और भक्ति-विह्वल होकर स्तुति करने लगा—हे नाथ! आज हम धन्य हुए, हमारा जीवन सफल हुआ और मनुष्य-जन्म चरितार्थ हुआ। भला, जगद्गुरुको पा लेना कितने सौभाग्य की बात है! आपके कोमल चरणारविन्द

के शुभ दर्शनसे हमारे नेत्र और आपको नमस्कार करनेसे हमारा मस्तक कृतार्थ हो गया। आपकी पूजा करने से हाथ, यात्रा करनेसे पैर, स्तुति करनेसे वाणी पवित्र और सफल हो गयी। आपके अनुपम अद्भुत और अलौकिक गुणों का चिन्तवन करने से मन पवित्र हो गया तथा सेवा करने से यह शरीर कृतकृत्य हो गया। हमारे पाप-रूपी महाशत्रुको नष्ट करने के लिये ही सम्भवतः आपका यहां शुभागमन हुआ है? हे प्रभो! आपके जैसा विशाल जलयान (जहाज) के सामने तो यह क्षुद्र संसार-रूपी सागर एक साधारण गड्ढे के समान जान पड़ता है। अब मैं एकदम निर्भय हो गया। इस प्रकार त्रैलोक्य स्वामी श्रीजिनेन्द्र प्रभु की स्तुति और गद्गद् चित्तसे पुनः पुनः उन्हें नमस्कार कर वह अत्यन्त हर्षित हुआ और सत्य-धर्म का उपदेश सुनने के लिये मनुष्योंके कोष्ठ में जाकर जिज्ञासु-भावसे बैठ गया। बैठ चुकने के बाद महाराज श्रेणिकने यति-धर्म, गृहस्थ-धर्म, सम्पूर्ण तत्व, तीर्थङ्करोंके पुराण, पाप-पुण्य का पृथक्-पृथक् फल, श्रेष्ठ-धर्म के क्षमा इत्यादि लक्षण और व्रतोंके विषयमें अत्यन्त महत्वपूर्ण उपदेश श्रद्धापूर्वक जगद्गुरुके मुखारविन्द से निकली हुई गम्भीर ध्वनिमें सुना। इसके बाद उसने श्रीगौतम गणधर को नमस्कार करके पूछा—देव! दयापूर्वक मेरे पिछले जन्मके वृत्तान्त को आप कहें। इस प्रकार महाराज श्रेणिकके प्रश्न को सुन कर परोपकार-व्रती श्रीगौतम गणधरने राजासे कहा—हे बुद्धिमान्! तू अपने तीन जन्मके पूर्व-वृत्तान्त को ध्यान लगा कर सुन—

विशाल जम्बूद्वीपके विख्यात विन्ध्य पर्वत पर, कुटव नामके एक ग्राममें, खदिरसार नामका एक भद्र-परिणामी भील रहा करता था। वह बहुत बुद्धिमान था। एक दिन पुण्यके उदयसे सब जीवोंके कल्याण-कार्यमें तत्पर, समाधिगुप्त नामके मुनि को उसने देखा और नतमस्तक होकर प्रणाम किया। मुनि महाराजने भी धर्म-लाभके लिये शुभ आशीर्वाद दिया। धर्म-लाभका आशीर्वाद सुन कर भीलने पूछा—महाराज, धर्म क्या है? उसका कार्य और कारण क्या है? और उससे लाभ क्या होता है? उन सभी बातोंको आप स्पष्टतया हमें समझा दीजिये। उसके प्रश्न को सुन कर मुनीश्वरने कहा—हे भव्य!

मधु, मांस और मदिरा प्रभृतिका परित्याग करना ही अहिंसा-रूप धर्म है। धर्म करनेसे उत्तम पुण्य की प्राप्ति होती है। और पुण्यसे महान् स्वर्ग-मोक्षादि सुखोंकी प्राप्ति होती है। यही धर्म करनेका उत्तम फल है। मुनीश्वरके उत्तरको सुन कर भीलने कहा—महाराज! मैं तो अभी पूर्ण-रूपसे मांस, मदिरा इत्यादिके त्याग देनेमें एकदम असमर्थ हूँ। उसकी बातको सुन कर मुनीश्वरने कहा—अच्छा, तू पहले यह तो बता कि कभी कौएका मांस खाया है या नहीं? भीलने कहा—मैंने तो कौए का मांस कभी नहीं खाया है। यह सुन कर मुनीश्वरने कहा—यदि अबतक तूने कौएका मांस नहीं खाया, तो अबसे कौएका मांस न खानेका एक नियम-सा कर ले। नियमके बिना किसी कार्यमें सफलता नहीं मिलती, पुण्य-प्राप्ति की बातको तो सोचना ही व्यर्थ है। मुनीश्वर की बात को सुन कर भील प्रसन्न हुआ। और यतीश्वरसे व्रत लेकर उन्हें प्रणाम किया एवं उनसे आज्ञा लेकर अपने घरको चला गया। अशुभ पापोदयसे उसे एक समय कोई असाध्य रोग हो गया और वैद्य ने उस रोग को दूर करने के लिये औषधि-स्वरूप कौएका मांस खानेको कहा। भीलको अबतक मांस-भक्षणसे अरुचि और घृणा उत्पन्न हो गयी थी। वैद्योंको बतायी चिकित्साको सुन कर भीलने अपने परिवारवालोंसे कहा कि जो करोड़ों जन्मोंके दुर्लभ व्रत को अपने प्राणों की रक्षाके लिये छोड़ देता है, वह मूर्ख है और उससे धर्मात्मा पुरुषों का कोई लाभ नहीं होता। शरीर तो प्रत्येक जन्ममें मिल जाता है; परन्तु शुभ-व्रताचरण का अवसर तो पुण्यशालीको कभी-कभी ही प्राप्त होता है। व्रत-भंग कर देनेकी अपेक्षा प्राणोंका परित्याग कर देना ही उत्तम है। इस प्रकार शुभ परिणामोंसे प्राण-परित्याग कर देने पर स्वर्ग प्राप्त होता है और व्रत-भंग कर देने से घोर नरकमें जानेके लिये वाध्य होना पड़ता है। भीलके इस नियमको जब सारसपुरके रहनेवाले शूर-वीर भीलने सुना, जो कि उस भीलका एक मित्र था, तब वह खदिरा नाम के बीमार भीलसे मिलने के लिये उसके नगर की तरफ चला। मार्गमें एक घोर वन पड़ता था। उस वनमें जाने पर भीलने देखा कि एक देवी बड़के वृक्षके नीचे खड़ी रो रही है। यह देख कर भीलने

पूछा—तू कौन है ! और इस तरह रोने का कारण क्या है ? इस प्रश्न को सुन कर देवी ने भील से कहा—"महाशय मैं इस वनकी यक्षिणी हूँ और मानसिक व्यथाके कारण यहीं रहती हूं। खदिर नाम का एक भील जो कि तुम्हारा मित्र है और जिससे मिलने के लिये तुम जा रहे हो, इस समय मरणासन्न है। वह शुभ पुण्योदयसे काक-मांसका परित्याग कर चुका है, इसी कारण पुण्योदयसे वह मर कर दूसरे जन्ममें मेरा पति होगा। तू उसे मांस खानेके लिये आग्रह करने व्यर्थ ही जा रहा है। मांस खिला कर तुम अपने मित्र को असह्य दुःख भोगने के लिये क्या घोर नरकमें भेजना चाहते हो ? तुम्हारे इसी कार्य की आशंकासे हमें हार्दिक परिताप हो रहा है और इसी कारणसे मैं रो रही हूँ।" उस देवीकी बातको सुन कर खदिर भीलके मित्रने कहा—देवी ! तू शोक करना छोड़ दे, अब मैं उसके नियम को तोड़ने का प्रयत्न कदापि नहीं करूँगा। उसकी बात सुन कर देवी सन्तुष्ट हो गयी और वह आगे बढ़ा। जब वह अपने मित्र के पास पहुँच कर उसे रुग्न-शय्या पर पड़ा देखा, तब उसके परिणामों की परीक्षा लेनेके अभिप्रायसे उसने कहा—मित्र, जब कौएके मांस को खा लेने से तुम्हारा रोग दूर हो सकता है, तब तुम्हें खा लेना चाहिये; क्योंकि यदि जीवन रहेगा तो बहुतसे पुण्य-कार्यों को कर सकोगे। मित्र की इस बात को सुन कर भीलने उत्तर में कहा—मित्र ! इस समय अत्यन्त निन्दनीय नरकमें भेजनेवाली बात को तुम कहोगे—ऐसी आशा नहीं थी। तुम्हारी बात तो धर्म का नाश करनेवाली है। मेरी इस अन्तिम अवस्थाके समय तुम कुछ धार्मिक शब्दों का उच्चारण करो—जिससे कि परलोकमें मेरे आत्मा को सुख प्राप्त हो सके। भीलके इस दृढ़-निश्चय को देख कर वह प्रसन्न हुआ और वनकी यक्षिणीवाली बातको कहा। इस कथाको कहने का अभिप्राय यह था कि वह अपने काक-मांस-त्याग-रूपी व्रत का फल जान जाय। इस बात को सुन लेने के बाद भीलके हृदय में विशेष-रूपसे धर्मके फल में श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने संवेग को प्राप्त होकर मांस इत्यादि का एकदम परित्याग कर दिया और अणुव्रतमें तत्पर हो गया। आयुके अन्त कालमें समाधिपूर्वक अपने प्राणोंका

परित्याग करके वह खदिर नामवाला भील व्रत के प्रभाव से अत्यन्त ऋद्धिवाले सौधर्म-स्वर्ग में जाकर उत्तम सुखों का भोगनेवाला देव हुआ। उधर भीलका मित्र शूर-वीर जब अपने ग्रामको लौट रहा था तब बीच मार्गमें पुनः उस देवीसे उसकी भेंट हो गयी। देवीसे उसने पूछा कि क्या मेरा मित्र अभी तक तुम्हारा पति होकर नहीं आया? देवी ने उत्तर दिया—मेरा पति तो नहीं हुआ, किन्तु सम्पूर्ण व्रतोंसे उत्पन्न पुण्यके उदयसे वह अत्यन्त ऋद्धिशाली और गुणवान् देव होकर सौधर्म स्वर्गमें हमारी व्यन्तर जातिसे पृथक् कल्पवासी देव हो गया है। वहीं पर वह स्वर्ग की अतुल सम्पत्ति को पाकर जिनेन्द्रदेव की पूजामें तत्पर है और अनेकानेक सुन्दरी देवियोंके साथ स्वर्ग-सुख को भोग रहा है। देवीके मुखसे अपने मित्रके सम्बन्धमें इन बातोंको सुन कर वह सोचने लगा कि व्रत का फल कितना शीघ्र प्राप्त हो जाता है। जिस व्रतके प्रभावसे परलोकमें परमोत्तम सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं, उस व्रतके बिना एक क्षण समय भी किसी को व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहिये। इस प्रकार विचार करके वह शूर-वीर भी तत्क्षण ही समाधिगुप्त मुनिके पास गया और उन्हें प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थ के पालने योग्य व्रतों को ग्रहण कर लिया।

उसी खदिरसार नामक भील का जीव स्वर्गमें देव होकर दो सागर आयु पर्यन्त वहाँके अलौकिक सुखों को भोगा और अन्त में पुण्य-फल से स्वर्ग से चय कर भव्यों की श्रेणी में तथा मोक्ष-मार्ग का ज्ञाता होकर राजा उपश्रेणिक एवं इन्द्राणी रानीके गर्भसे राजा श्रेणिकके रूपमें उत्पन्न हुआ है।

इस आत्म-वृत्तान्तको सुन कर श्रेणिक राजाका मन श्रीजिनेन्द्र प्रभु, देव एवं गुरु इत्यादिमें अत्यधिक श्रद्धालु हो गया। उसने मुनि को पुनः पुनः प्रणाम करके फिर दुबारा प्रश्न किया—देव, मेरी श्रद्धा धार्मिक कार्योंमें बहुत विशेष है; किन्तु अल्पमात्र में भी हमें कोई व्रत प्राप्त क्यों नहीं हुआ? मुनिने उत्तर दिया—हे बुद्धिमान्, प्रथम तुमने अत्यन्त मिथ्यात्व परिणामों से, हिंसादि पांच महापाप; अधिक आरम्भ एवं परिग्रह, अति विषयभोग तथा धर्महीन बौद्ध-गुरुकी भक्तिसे इस जन्ममें नरकायु का बन्ध

कर लिया है; यही कारण है कि तुम्हारे अल्पमात्रामें भी कोई व्रत ग्रहण नहीं होता है। जिनके पास देवायु है, वे भव्य-जीव दो प्रकारके व्रतको ग्रहण कर लेते हैं। मोक्ष-रूपी राज-प्रासादका प्रथम सोपान (सीढ़ी) सम्यक्त्व है और वह दस प्रकार का है। आज्ञा, मार्ग, उपदेश, रुचि; बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाढ़ एवं परमावगाढ़—ये दसों सम्यक्त्वके नाम हैं। सर्वज्ञ की जिस आज्ञा के प्रभावसे छः द्रव्योंमें अभिरुचि उत्पन्न होती है, वही 'आज्ञा' नाम का उत्तम सम्यक्त्व है। परिग्रहोंसे हीन, वस्त्रोंसे रहित एवं कर-पात्र ही मुनि का स्वरूप हो जाता है, और यह मुनि-स्वरूप मोक्ष का मार्ग है। इस मोक्ष-मार्गमें जिस सम्यक्त्वसे श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे 'मार्गदर्शन' कहते हैं। जो तिरेसठ शलाका (पदवी-धारक) महापुरुषोंके पुराणोंको सुन शीघ्र ही धर्म-विनिश्चय किया जाता है, उसे 'उपदेश-दर्शन' कहते हैं। आचाराङ्ग नामक प्रथम अङ्गमें कहे गये क्रियाओं को सुन कर ज्ञानी पुरुषों की जो उस ओर रुचि उत्पन्न हो जाती है, उसे 'रुचि-सम्यक्त्व' कहा जाता है। बीज-रूप पदके ग्रहण करने एवं उसके अर्थके सुननेसे जो रुचि उत्पन्न होती है, उसे 'बीज-दर्शन' कहा जाता है। संक्षेप-रूपमें पदार्थोंके स्वरूप-कथनसे ही जो श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है, वही 'संक्षेप-दर्शन' है। प्रमाणनयके विस्तार से पदार्थों के स्वरूपको विस्तारपूर्वक कहे जाने पर जो कुछ निश्चय किया जाता है, उसे 'विस्तार-सम्यक्त्व' कहा जाता है। द्वादशाङ्ग-रूपी समुद्रमें प्रविष्ट होकर वचन-विस्तार पर विशेष ध्यान नहीं देते हुए केवल उनके सारभूत अर्थमात्रको ग्रहण करने की रुचि या स्वभाव होता है, वह 'अर्थ-सम्यक्त्व' है। अङ्ग एवं अङ्गवाह्य श्रुत का चिन्तन करने से जो विशिष्ट रुचि होती है, वह 'अवगाढ़-दर्शन' बारहवें गुणस्थान को प्राप्त योगी पुरुषों को होता है। तथा केवलज्ञान के द्वारा ज्ञान होने पर सम्पूर्ण पदार्थों का जो श्रद्धान है, वही सर्वश्रेष्ठ 'परमावगाढ़' सम्यक्त्व है। जिनेन्द्रदेवके द्वारा कहे हुए ये ही दस सम्यक्त्व यथार्थतः सम्यक्त्व हैं। इन दसोंके भी भेदोपभेद हैं। हे राजा! तू दर्शन-विशुद्धि आदि पृथक्-पृथक् या सम्पूर्ण एकत्रित सोलह कारणोंसे जगद्गुरुके पास जाकर जगत्को आश्चर्यचकित कर देनेवाला तीर्थङ्करके नाम एवं कर्म

का बन्ध करेगा; परन्तु पूर्व कर्मके प्रभाव एवं फलसे परलोक में 'रत्नप्रभा' नरक-भूमिमें जायगा—यह निश्चय है। वहां पर कर्मों का फल भोग कर आयुके नाश हो जाने पर वहां से निकलेगा। आगामी उत्सर्पिणी कालके चतुर्थ कालारम्भमें तू 'महापद्म नामका तीर्थङ्कर होगा। यह निश्चय है कि तू सज्जनोंका कल्याणकारक एवं धर्म-तीर्थ-प्रवर्त्तक प्रथम तीर्थङ्कर होगा। हे भव्य ! तू निकटतम भव्य है; अब तुझे संसारसे डरनेका कोई विशेष महत्वपूर्ण कारण नहीं है। संसारमें जितने पुनः पुनः भटकनेवाले जीव हैं, वे सभी अनेकों बार घोर एवं घोरतम नरकोंमें गमनागमन किये हैं।

रत्नप्रभा नाम के नरक में अपने जाने की बात सुन कर महाराज श्रेणिक के हृदय में परिताप एवं ग्लानि हुई। बादमें नमस्कार करके उन्होंने फिर गणधर देवसे प्रश्न किया—हे प्रभो ! मेरे नगर को सब लोग उत्तम पुण्य-स्थान कहा करते हैं; तो यह बतलाइये कि केवलमात्र मैं ही नरकमें जाऊँगा या वहांके रहनेवाले और लोग भी नरकगामी होंगे ? इस प्रश्न को सुन कर श्रीगौतम गणधर स्वामीने राजाके ऊपर अनुग्रह करके कहा—राजन्, तू अपने शोक को दूर करनेवाले सत्य वचन को सुन—

इसी राजगृही में स्थिति-बन्ध एवं नीच-कर्म के द्वारा मनुष्य-आयु बांध कर नीच कुल में उत्पन्न कालशौकरिक नामका एक चाण्डाल रहता है। उसको इस समय अपने पूर्व सात भवों का स्मरण हो आया है। इसी कारण वह अब इस तरहका विचार करने लग गया है कि यदि जीवका सम्बन्ध पाप-पुण्यसे होता है, तो बिना पुण्यके उसे मनुष्य-जन्म कैसे प्राप्त होता ? इसलिये पाप-पुण्यका कोई भी महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। जो कुछ है इस संसारमें, केवल विषय-सुख ही है और उसीसे कल्याण हो सकता है। ऐसा सोच कर वह पापात्मा निःशंक हो गया है और हिंसा इत्यादि को करके मांसादिके आहारमें आसक्त रहता है। इसके फलस्वरूप बहुत आरम्भ एवं परिग्रहके कारण उसके नरकायु संचित हो गई है और अपनी आयुके अन्तमें वह पापोदयसे निश्चितरूपेण सातवें नरकमें जायगा। इसी तरह की एक दूसरी ब्राह्मण की लड़की है, जिसे लोग 'शुभ' नामसे पुकारते हैं। वह एकदम रागान्ध है,

वेद-कर्मके फलसे शील एवं उसके श्रेष्ठ-गुणों को जानते हुए भी वह दुःशीला एवं विवेक-भ्रष्टा है। उद्धत इन्द्रियोंके वशमें होकर वह लंपट हो गई है और उसकी भी नरकायु संचित हो गई है। वह कोपकारिणी है; इसलिये रौद्र-ध्यानसे मरेगी और पापोदय से नाना दुःख-पूर्ण निन्द्य छट्ठे नरक की 'तमप्रभा' नाम की पृथ्वीमें जन्म-धारण करेगी। जब गणधर स्वामी ने राजा श्रेणिक को यह वृत्तान्त सुना दिया, तब राजाने पुनः विनयावनत होकर अपने पुत्र अभयकुमारके पूर्व जन्म-वृत्तान्त को पूछा। इस पर गणधर स्वामीने अनुग्रहपूर्वक अभयकुमारके भी पूर्व जन्म-वृत्तान्त को कहना आरम्भ किया—

इसी भरत-क्षेत्र (भारतवर्ष) में सुन्दर नाम का एक ब्राह्मणकुमार था। वह लोक-मूढ़ता इत्यादि तीन मूढ़ताओंके साथ मिथ्या-दृष्टि वेदके अध्ययन एवं अभ्यासमें तत्पर रहा करता था। इसी निमित्तसे वह एक दिन अर्हद्दास जैनीके साथ मार्गमें कहीं जा रहा था—बीच में एक पीपल वृक्षके नीचे बहुतसे इकट्ठे पत्थरोंको देख कर उनको उसने अपना देव समझ लिया और प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया। उस मिथ्यात्वी की इस दुश्चेष्टाको देख कर 'अर्हद्दास' को हँसी आ गयी, फिर उन्होंने ब्राह्मण-कुमार को ज्ञान प्रदान करने की शुभ इच्छासे पीपलके ऊपर पाद-प्रहार किया और पीपल टूट गया। वहीं पर पड़ी हुई कपिरोस नामकी एक लता थी, जिसे देख कर अर्हद्दासने कहा—यह मेरा देव है, और उसने उसे प्रणाम किया। वह ब्राह्मण-कुमार अर्हद्दास के कपट-व्यवहार को नहीं समझ सका और पूर्व ईर्ष्या के कारण उस लताको हाथोंसे उखाड़ डाला। लताके छूते ही ब्राह्म-कुमारके सर्वाङ्गमें जोरोंसे खुजली चलने लगी और वह डर गया। उसने अर्हद्दास से कहा—'मित्र! वास्तव में यह तुम्हारा देव है।' उसकी इस बात को सुन कर श्रावक अर्हद्दासने उस मिथ्यात्वीको सत्य बात समझा देनेके अभिप्रायसे कहा—भले आदमी, ये सब वृक्ष हैं, किसीका कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। पाप-कर्मके उदयसे इन्हें एकेन्द्री जन्म धारण करना पड़ा है, इन्हें देव समझना भूल है। तीर्थङ्करके अतिरिक्त और कोई देव नहीं हो सकता! तीर्थङ्कर श्रीअर्हन्त प्रभु ही सम्पूर्ण भव्य-जीवों को भोग एवं मोक्ष के प्रदाता हैं। तीनों

लोक उन्हींको प्रणाम करता है और वे ही त्रैलोक्य-वन्द्य हैं। इनको छोड़ कर दूसरा कोई मिथ्यात्वी देव वन्दनीय नहीं हो सकता। उस जैनीके इन वचनों को सुन कर उस विप्रकुमार की देव-मूढ़ता दूर हो गयी। अथानन्तर वे आगे बढ़े और दोनों गङ्गा नदीके किनारे जा पहुँचे। गङ्गा को देख कर उस मिथ्यात्वी विप्रकुमारने कहा—इसका जल परम पवित्र है और दूसरों को पवित्र करने की इसमें असीम शक्ति है। ऐसा कह कर उसने गङ्गा-जलमें श्रद्धापूर्वक स्नान किया और निकलने के बाद पुनः नमस्कार किया। उसको ऐसा करते देख कर अर्हद्दास ने अपना उच्छिष्ट (जूठा) अन्न एवं गङ्गा-जल उस ब्राह्मण-कुमारको खाने-पीनेके लिये दिया। विप्रने कहा—क्या मैं तुम्हारा उच्छिष्ट खाऊँ? उसके उत्तर को सुन कर अर्हद्दासने तर्क की दृष्टि से कहा—विप्र, तुम्हें मेरा उच्छिष्ट अन्न-जल तो अग्राह्य जान पड़ता है, फिर जब गधे इत्यादि नाना प्रकारके निन्द्य जीव पानी पीकर उसे उच्छिष्ट कर देते हैं, तो उस गङ्गा-जलको तुम परम पवित्र कैसे कह रहे हो? वह स्वयं किस प्रकार पवित्र है और दूसरोंको कैसे शुद्ध कर सकता है? जलको तीर्थ समझना भ्रम है—स्नान करनेसे मनुष्यों की शुद्धि नहीं हो सकती, बल्कि जीवोंको हिंसाका पाप ही होता है। यह शरीर स्वभावतः सदैव अपवित्र है और इससे विपरीत जीव सदा-सर्वदा स्वच्छ एवं परम निर्मल है। यदि मिथ्यात्वसे मलिन सब प्राणी, स्नान करने से शुद्ध हो जांय, तो सदैव स्नान करते रहनेवाले मत्स्य (मछली) आदि जल-जीवोंको नमस्कार करना चाहिये, उनपर करुणा-दृष्टि क्यों रखी जाती है? इसलिये तुम्हें जानना चाहिये कि केवल अर्हन्त ही तीर्थ हैं। उन्हींके वचनामृतसे सबके आन्तरिक पाप-रूपी मल दूर हो सकते हैं और वे ही शुद्धि प्रदान करने में समर्थ हैं। इस प्रकार उस अर्हद्दासने विप्रकुमार की तीर्थ-मूढ़ता को भी दूर कर दिया। फिर आगे जाने पर पञ्चाग्निमें बैठे हुए एक पुरुषको देख कर विप्रकुमारने कहा—इस प्रकारके तपस्वी हमारे धर्म में बहुत होते हैं। उसकी गर्वोक्ति को सुन कर अर्हद्दासने अनेक अलौकिक शास्त्र-वचनोंसे प्रथम तो उस तपस्वी को ही मद-रहित किया, फिर स्पष्टतया उस ब्राह्मण-कुमार से कहा कि ये छोटे तपस्वी

क्या तप करेंगे ? इस धरातल पर तो महान् देव अर्हन्त ही सर्वज्ञ हैं, निर्ग्रन्थ ही गुरु हैं, और
दयालुतापूर्ण धर्म ही परमोत्तम है। जिनेन्द्र प्रभुके द्वारा कहा गया दीपकके समान प्रकाशमान जैन-
शास्त्र ही सत्य है। जैन-मत वन्दनीय है और पापहीन तप सबकी शरण हैं। इन्हीं की उत्तमता को
स्वीकार करना चाहिये। इसलिये मेरे मित्र, तुम भी मिथ्या-दर्शन, मिथ्या-धर्म-रूपी कुप्रथा को शत्रुके
समान दूर ही से छोड़ दो और आत्म-कल्याणके लिये सम्यग्दर्शनको ग्रहण करो। इस प्रकार वार्तालाप
करते हुए दोनों मित्र जब और आगे बढ़ गये, तब पापोदयसे भयङ्कर वनमें जा पहुँचे और मार्ग-दिशा
को भूल गये। उस जनहीन वनमें उनके जीवन-धारण करनेका कोई आधार नहीं था; निदान, वे दोनों
शरीर एवं आहारसे ममता छोड़ कर मोक्ष-प्राप्तिके लिये सन्यासी हो गये। उन दोनोंने धैर्यपूर्वक भूख,
प्यास इत्यादि परिषहों को सहा और समाधि-रूप शुभ ध्यानसे शरीर को छोड़ दिया। इसके बाद
अन्तिम आचरण के प्रभाव से उत्पन्न पुण्यके फल से दोनों ही सौधर्म-स्वर्ग में गये और वहां महान्
ऋद्धिधारी और देववन्द्य देव हुए। चिरकाल दोनोंने स्वर्ग-सुखों को भोगा और अन्त में पुण्योदय के
प्रभावसे उसी ब्राह्मण-कुमार का जीव तुम्हारा पुत्र सुन्दर होकर उत्पन्न हुआ है। यह तप के प्रभाव से
कर्मों का नाश करके शीघ्र ही मोक्षको प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार उन दोनों की पूर्वकथाको सुन कर
कितने ही लोगोंने विरक्त होकर संयम (यति-धर्म) को स्वीकार कर लिया और कितने ही गृहस्थ-धर्म
एवं सम्यक्त्वमें तत्पर हो गये। महाराजा श्रेणिक भी अपने पुत्रके साथ धर्म-शास्त्र-रूपी अमृतका पान
करने के उपरान्त श्री महावीर जिनेन्द्र प्रभुको और अन्य गणधरों को नमस्कार करके अपने नगर को
वापस लौट आये।

इसके बाद जिनेन्द्र प्रभुके समवशरणमें बहुतसे महापुरुष रहते हैं, उनका विवरण भी जान लेना
आवश्यक है। इन्द्रभूति (गौतम), वायुभूति, अग्निभूत, सुधर्म, मौर्य, मौंड, पुत्र, मैत्रेय, अकम्पन
धवल और प्रभास—ये ग्यारह गणधर देववन्द्य हैं और चार ज्ञानके धारक हैं। प्रभुके चतुर्दश चौदह

पूर्वोंको स्मरण रखनेवाले तीन सौ मुनि होते हैं। चारित्र धारण करनेमें तत्पर शिक्षक मुनि नौ हजार नौ सौ हैं। तथा अवधिज्ञानी तेरह सौ होते हैं। साथ ही सामान्य-केवली सात सौ और विक्रिया-ऋद्धिके धारी नौ सौ मुनि और होते हैं। ये सभी संयमी होते हैं तथा रत्नत्रयसे अलंकृत रहते हैं। इन सबकी सम्मिलित संख्या चौदह हजार की है। ये सभी जिनेन्द्र प्रभुके समवशरणमें वर्त्तमान रहा करते हैं। चन्दना इत्यादि छत्तीस हजार अर्जिकाएँ भी उस समवशरण-सभा में उपस्थित रहती हैं और तप एवं मूलगुणों से युक्त होकर प्रभु के चरणारविन्द को अहर्निश नमस्कार करने में तत्पर रहती हैं। इसके अतिरिक्त दर्शन-ज्ञान और उत्तम व्रतोंसे युक्त एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएं प्रभु के पदारविन्द की पूजामें तत्पर रहती हैं। असंख्य देव-देवी-समूह प्रभु की अलौकिक स्तुति और पूजा इत्यादि अनेक महोत्सवों की रचना किया करते हैं। सिंह, सर्प इत्यादि तिर्यञ्च जीव भी संसारसे डर कर तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक शान्तचित्त होकर श्रीमहावीर प्रभु की शरण में आ जाते हैं। इस प्रकार समवशरणमें वे विशेष भक्त बारह प्रकारके जीव-समूहोंसे एकदम घिरे हुए हैं। त्रैलोक्याधिपति एवं जगद्गुरु श्रीमहावीर प्रभुने शनैः शनैः बिहार करते हुए अनेक देशों और नगरोंमें रहनेवाले भक्त एवं श्रद्धालु भव्य-जीवोंको धर्मोपदेशके द्वारा ज्ञान प्रदान किया। तथा मोक्ष-मार्गके निविड़तम अज्ञानान्धकार को अपने वचन-रूपी किरणोंसे परास्त कर उसे आलोकमय कर दिया। इस प्रकार तीस वर्ष पर्यन्त बिहार करते हुए अनेक सुन्दर फल-पुष्पोंसे सुशोभित पावापुरी के उपवन में वे पहुँचे। उस उद्यान में आकर मन, वचन, काय एवं दिव्य वाणी को योग द्वारा रोक कर वे क्रियाहीन हो गये। छः दिन योग-निरोध किया और मोक्ष-प्राप्तिके लिये अघातिया कर्मोंको नष्ट कर देनेवाला 'प्रतिमायोग' धारण किया। इसके बाद प्रभुने देवगति, पांच शरीर, पांच संघात, पांच बन्धन, तीन अङ्गोपाङ्ग, छ संस्थान, छः संहनन, पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श, देव गत्यानुपूर्व्य, अगुरु-लघु, उपघात-परघात, उच्छ्वास, दोनों बिहायोगतियां, अपर्याप्ति प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, सुस्वर,

आदेय, अयशस्कीर्ति, असाता वेदनीय, नीच-गोत्र और निर्माण—मुक्तिरोधक इन बहत्तर कर्म-प्रकृतियों
को शत्रु समझ कर, अपनी अतुलनीय शक्तिसे महायोद्धा की तरह 'अयोगी' नामक चौदहवें गुणस्थान
में प्राप्त चौथे शुक्ल-ध्यान-रूपी तलवार द्वारा चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम दो समय के प्रथम काल में
उन्हें मार डाला। इसके बाद आदेय, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, पांच-इन्द्रिय जाति, मनुष्यायुपर्याप्ति,
त्रस, वादर, सुभग, यशकीर्ति, सातावेदनीय, उच्चगोत्र, तीर्थङ्कर तथा नाम—इन तेरह कर्म-प्रकृतियोंको
चौदहवें गुणस्थानके अन्तिम समय में शुक्ल-ध्यान के प्रभाव से श्रीमहावीर प्रभु ने नाश कर दिया। इस
प्रकार प्रभु ने सम्पूर्ण कर्म-रूपी शत्रुओं का और औदारिक आदि तीन प्रकार शरीरों का नाश कर,
स्वभावतः उर्द्धगति होनेके कारण, एकदम निर्मल होकर मोक्ष-स्थानको प्राप्त हो गये। कार्तिक कृष्णा
अमावस्या तिथि, स्वाति नक्षत्र एवं प्रातःकालके समयमें प्रभुको मोक्ष प्राप्त हुआ था।

श्रीमहावीर प्रभु ने जब मूर्तिहीन होकर एवं आठ गुणों से युक्त होकर सिद्धपद को पाया, तब वे
निर्बाध थे, कर्महीन थे, अनन्त थे, उत्कट इन्द्रियादि सुखों से परे थे, पर-द्रव्य से हीन थे तथा नित्य
दुःखोंसे नितान्त ही रहित थे। उन्हें अनुपम आत्म-सुख प्राप्त हुआ। मनुष्य एवं संसारके अन्य सम्पूर्ण
प्राणी निश्चिन्त होकर जितने प्रकार के सुख को वर्त्तमान में भोग रहे हैं, भूतकाल में भोगा है, तथा
भविष्यमें भोगेंगे—इन त्रैकालिक सुखोंको यदि एक स्थान पर एकत्रित किया जाय, तो जितना सम्पूर्ण
सुख होगा, उससे भी अनन्तगुणा अधिक एवं सर्वोत्कृष्ट सुखको प्रभुने भोगा और भविष्यमें अनन्त-
काल पर्यन्त भोगते रहेंगे। इस सिद्ध महापुरुषको मैं सतत नमस्कार करता हूँ। उनके मोक्ष प्राप्त हो
जानेसे देव एवं इन्द्राणियोंके साथ चारों जातिके देव प्रभु की मोक्ष प्राप्ति को जान कर, अपने पृथक्-
पृथक् चिह्नोंसे युक्त होकर आये तथा नृत्य, गीत एवं ऐश्वर्यपूर्ण महोत्सव मना कर प्रभु की पूजा की।
जिस उपवनमें प्रभुको निर्वाण प्राप्त हुआ था, वहां पर आकर उत्सवमें श्रद्धांजलि अर्पित करनेसे सभी
का कल्याण हुआ। इसके बाद इन्द्र ने निर्वाण-साधक प्रभु के शरीर को अत्यन्त रत्नोज्ज्वल एवं स्वर्ण-

निर्मित पालकीमें रखा। अनन्तर प्रभुके शरीरमें अनेक सुगन्धित द्रव्योंको लगाया, उनकी पूजा की और माथा टेक कर भक्तिपूर्वक पुनः पुनः उन्हें प्रणाम किया। फिर अग्निकुमारदेव के मुकुट में अग्निकण उत्पन्न हुआ और उसी दिव्याग्नि से प्रभु का शरीर जलाया गया। प्रभु के शरीर की सुगन्धि सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गयी। अन्तमें इन्द्रके साथ सभी देवोंने प्रभु की चिता-भस्म को अपने-अपने हाथों में लेकर शीघ्र मोक्ष-प्राप्ति की कामनाएँ प्रकट कीं। उस चिता-भस्म को क्रमशः मस्तक, बांह नेत्र एवं सम्पूर्ण शरीरमें सब लोगोंने लगाया और मोक्ष-प्राप्तिके लिये प्रभुकी पर्याप्त प्रशंसा की। इन्द्र इत्यादि ने उस पवित्र तप-भूमिमें धर्मकी प्रवृत्ति को धारण किया तथा मोक्ष-भूमि की कल्पना की।

इसके बाद श्रीगौतम गणधरके भी शुक्ल-ध्यान के द्वारा घातिया-कर्म-रूपी महाशत्रुओं का नाश हो गया और उन्हें भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया। अन्य गणधरों से युक्त होकर इन्द्रादि देवों ने उनकी पूजा-प्रतिष्ठा की। इन्द्रभूति (गौतम) स्वामी परम विभूतियों से युक्त थे; अतः परम पूजनीय थे। उत्तम चारित्रके प्रभावसे मनुष्य देवगति इत्यादिमें अनुपम सांसारिक सुखोंको भोग कर, अन्तमें मनुष्य, विद्याधर एवं देव-स्वामियों के द्वारा पूजनीय होता है, तीर्थङ्कर-पदवी को प्राप्त होता है और कर्मों का नाश कर उत्तम मोक्ष-प्रासाद को प्राप्त कर लेता है; इसी प्रकार श्री इन्द्रभूति गौतम गणधर स्वामी ने भी सहज ही मोक्ष-महल को प्राप्त कर लिया। अब मैं श्रीजिनेन्द्र प्रभु महावीर स्वामी की पुनः पुनः स्तुति एवं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

विंश प्रकरण

श्रीजिनेन्द्र महावीर प्रभु गुणोंके रत्नाकर हैं, वीर पुरुषोंके द्वारा पूजित हैं, वीर पुरुषोंके आश्रय एवं आधार एकमात्र महावीर ही हैं, इन्हींके द्वारा मोक्ष-रूपी परम सुख प्राप्त हो सकता है। पापोंको सर्वतो-भावेन पराजित करने के लिये एवं जीतने के लिये महावीर प्रभु ही शूराग्रणी महायोद्धा हैं, उनका बल

अपरिमेय है। अर्हन्त महावीर प्रभुको नित्यशः एवं कोटिशः प्रणाम करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि मेरा चञ्चल चित्त उन्हींके चरणारविन्दोंमें लगा रहे। हे महावीर प्रभु, दयापूर्वक आप हमें भी अपने ही तुल्य वीर बनावें। इस प्रकार अन्य प्रकारसे अनेक बार प्रार्थना कर चुकनेके बाद, ग्रन्थकार कवि कहते हैं—मैं चरित्र-रचनाके हेतु भक्तिवश नतमस्तक होकर महावीर प्रभुके चरण-कमलोंको प्रणाम किया है, भक्तिपूर्वक अपनी वाणी महावीर प्रभुके उत्तमोत्तम गुणों की प्रशंसा एवं स्तुति की है। अपने भावोंके द्वारा श्रद्धावश होकर प्रभु की अनेकशः पूजा की है। श्रीमहावीर प्रभु मोक्षके हेतुभूत सम्यक्दर्शनादि तीन रत्न एवं उनसे उत्पन्न और भी अन्यान्य सम्पूर्ण शुभ साधन, सम्यक्दर्शनादि रत्नत्रय से समुत्पन्न संयम को, मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषासे धारण कर लिया था। वे महावीर प्रभु हमें भी इस लोक एवं परलोकमें मुक्तिके सम्पूर्ण कारणों को प्रदान कर अनुग्रहीत करें! जिन्होंने अपने परमोत्तम ध्यान-रूपी अति तीक्ष्ण दृष्टिसे कर्म-रूपी महाशत्रुओंका संहार कर सहजमें ही मोक्ष-पदवीको पा लिया, वे अर्हंत जिनेन्द्र प्रभु हमें भी इन्द्रिय-रूपी चोरोंसे बचायें तथा कर्म-रूपी महाशत्रुओं का शीघ्र नाश कर दें, जिससे कि मैं भी मोक्षका अधिकारी हो जाऊँ। महावीर प्रभुने त्रैलोक्य-प्रशंसित, अनन्त एवं निर्मल केवलज्ञानादि उत्तम गुणोंको पा लिया। उन उत्तम गुणोंको वे हमें भी प्रदान करें। प्रभुने मुक्ति-रूपी कुमारी को विधिपूर्वक स्वीकृत कर लिया; हमें भी सुख-शान्ति पाने के लिये निर्मल एवं अनन्त मुक्ति प्रदान करें। ग्रन्थकार कवि पुनः आत्म-निवेदन करते हुए कहते हैं—इस पवित्र ग्रन्थ को मैंने कीर्ति-पूजा-प्रतिष्ठा इत्यादिके लालचमें पड़ कर नहीं बनाया, और अभिमानवश कवित्व-चातुरी दिखाने के लिये भी नहीं बनाया; प्रत्युत यह तो केवल धर्मबुद्धिसे बनाया गया है, जिसमें भव्य-जीवोंका उपकार हो और मेरे कर्मों का नाश हो जाय। प्रभुके अनेकानेक उत्तम गुणों को मालामें गूंथ कर इस परम पवित्र चरित्रको सकलकीर्ति गणीने रचा है। प्रभुकी गुण-कथा का गान होनेके कारण यह दोष-रहित है। फिर भी यदि प्रमाद एवं अज्ञानसे कहीं अशुद्धि रह गयी हो, अथवा मैंने कहीं असम्बन्ध कह

दिया हो, तो पाठक उदारतापूर्वक मुझे क्षमा करेंगे तथा इसे शुद्ध कर पढ़ने की कृपा करेंगे। मुझ अल्पज्ञानी की असम्बन्धता, अक्षर, सन्धि एवं मात्रादि दोषोंको क्षमा करेंगे, इस परम पवित्र ग्रन्थको जो पढ़ेंगे या पढ़ायेंगे तथा सम्पूर्ण भारतवर्षमें प्रचार करने के अभिप्राय से स्वयं लिख कर या लिखवा कर प्रकाशित करेंगे, वे पुण्यात्मा कहलायेंगे और ज्ञान-दानके प्रभावसे संसारके सर्वोत्तम सुखोंको भोग कर अन्तमें केवल-ज्ञान को पायेंगे।

जो महावीर प्रभु गुणों के रत्नाकर हैं, धर्म-रूपी रत्न के उत्पत्ति-स्थान हैं, भव्य-जीवों के एकमात्र शरण हैं, इन्द्र इत्यादि देवोंके द्वारा पूजित हैं, तथा स्वर्ग एवं मोक्षके मूलकारण हैं, उन प्रभुका यह उत्तम एवं पवित्र चरित्र, जबतक कि इस धरातल परसे कालका अन्त न हो जाय, तबतक आर्यखण्डमें सभी स्थानों में इसका प्रचार हो, प्रसिद्धि हो, और संस्थित रहे—यही मेरी मनोकामना है। प्रभु ने स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाले निर्दोष अहिंसामय उत्तम धर्म का उपदेश, मुनि-श्रावक भेद से किया है, वह परम सुखदायक धर्म जबतक पृथ्वी पर सूर्य-चन्द्र है, तबतक निश्चयरूपेण रहेगा। पवित्र धर्म के उपदेष्टा एवं व्याख्याता श्रीमहावीर प्रभु को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ, वे मेरे विश्व-भ्रमण का अन्त शीघ्र कर दें। विशेष विस्तारसे न कह कर, इतना ही कह देना पर्याप्त है, कि मेरे द्वारा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक संस्तुत श्रीमहावीर प्रभु, अपने ही समान अद्भुत, अनुपम, एवं सर्वोत्तम गुणोंको सुख एवं मुक्ति प्राप्ति के लिये हमें प्रदान करें। इस चरित्र में ग्रन्थ संख्या के अनुसार कुल तीन हजार पैंतीस श्लोकों का अनुवाद है, शुभमस्तु—